तृतीय संस्करण का आमुख

सस्कृत व्याकरण के इस नये संस्करण का सम्पादन करते हुए मुझे पूर्व सस्करणो मे जो कतिपय मुद्रण दोष मिले उन्हे मैंने यहा नही आने दिया है और पुस्तक को छात्रोपयोगी बनाने के लिये आवश्यक परिवतन भी कर दिये है, जैसे कि प्रत्येक पृष्ठ के शिखर-कोण मे अध्याय और अनुच्छेद के साकेतिक अक भी दे दिये हैं।

इस कृति के अनुच्छेदो मे सस्कृत व्याकरण के प्राय सभी नियम आजाते हैं। इनमे से कई अनुच्छेद प्रारभिक शिक्षा के लिये अनुपयुक्त होने के कारण वर्ज्य है, वे उत्तरकालीन अध्ययन के लिये ही उपादेय हो सकते हैं। प्रारम्भिक पाठ्यक्रम के लिये निम्न सूची मे दिये गये अनुच्छेद ही उपयोगी है। इन अनुच्छेदो के सकलन से सस्कृत व्याकरण की प्रारम्भिक पाठ्य पुस्तक का निर्माण हो जाता है।

१ १-७, ८-१२, १३ २ १६-२२, २७, ३०-३४, ३६ अ आ, ३७, ३८, ४०, ४२-४४, ४५, (१), (२), ५२, ५५, ६५, ६७ ३ ७०, ७१, ७३, ७४, ७७, ८५, ८७, ९०, (१), ९७, १००, १०१, (ई) (पृ० ६०), १०३, (१), (२) १०९-१११, १२० ४ · १२१-१२८, १३१, १३२ (केवल वर्त० परस्मै० पृ० ८६, ८८), १३५, १३६, १३८, (१) (केवल √तुद्, परस्मै०), १४१ (क) (केवल परस्मै०), १४३ (१) (केवल परस्मै०) १४७ (केवल परस्मै०), १४८ (केवल अदात्), १५१ (केवल परस्मै०), १५४ (केवल वर्त० का०), १५६, १६०, (१), (२), १६२, १६३, १६७, १६८, १६९, १७२, १७५

जब छात्र इन अनुच्छेदो को पढ लेगा तब उसे सस्कृत पाठमाला के पाठ समझने की योग्यता हो जायेगी। इन पाठो मे कुछ नये व्याकरण रूप भी गे जिनकी व्याख्या उन अनुच्छेदो मे की गई है जो उसने छोड रखे थे। अब वह उन अनुच्छेदो का भी अध्ययन करेगा। इस प्रकार तथा शब्द कोष

की सहायता से वह एक ही महीने मे, **नलोपाख्यान**, प्रथम सर्ग के प्रत्येक शब्द को समझ सकेगा और उसे किसी भी सरल सस्कृत रचना को समझने के लिये पर्याप्त जानकारी हो जायेगी।

सन् १८११ मे इस कृति का द्वितीय सस्करण प्रकाशित होने के उपरान्त सन् १९१६ मे मेरी अन्य कृति "छात्रोपयोगी वैदिक व्याकरण" (**Vedic Grammar for students**) का प्रकाशन हुआ। तब मेरी प्रस्तुत कृति मे तृतीय परिशिष्ट (वैदिक व्याकरण की मुख्य विशेषताएँ) अनावश्यक-सा प्रतीत होने लगा। तो भी मैंने उसे हटाया नही, क्योकि वह वैदिक व्याकरण का एक सक्षेप है और प्रारम्भिक छात्रो के लिये उस विषय को सरलता से समझने मे परम उपयोगी है।

आर्थर ए० मैकडानल

२० बार्दवैल रोड,
आक्सफोर्ड
नवबर, १९२६

द्वितीय संस्करण का आमुख

मैक्समूलर का सस्कृत व्याकरण (द्वि० स०, सन् १८७०), जिसका मैंने (सन् १८८६ मे) सक्षेपण किया था, मेरी प्रस्तुत कृति का मूल रूप था। छात्रावस्था मे तथा शिक्षक पद के कार्यकाल मे मुझे प्रारभिक व्याकरण शास्त्र के अनावश्यक एव अनुपादेय तत्त्वो का अनुभव हो गया था। अतएव मैने मैक्समूलर के सस्कृत व्याकरण का सक्षेपण किया था। वह सक्षेपण, अशत, मेरी इस धारणा का भी परिणाम था कि सस्कृत व्याकरण की उपलब्ध रचनाये पाणिनि की पद्धति से प्रभावित होने के कारण अनावश्यक ही सस्कृत भाषा को दुरूह कर देती है। सस्कृत व्याकरण शास्त्र के सक्षिप्त इतिहास से, जोकि प्रस्तुत कृति के आरभ मे दिया गया है, पर्याप्त रूप से पता चलेगा कि भारतीय व्याकरण शिक्षा-पद्धति पाश्चात्य शिक्षा की व्यावहारिक पद्धति के अनुरूप नही बैठती।

सन् १९०१ मे प्रस्तुत व्याकरण का प्रथम सस्करण प्रकाशित हुआ जो कि मेरे प्रारभिक (अर्थात् १८८६ के सक्षिप्त) व्याकरण का सर्वथा नया रूप था। यद्यपि यह सस्करण पूर्णरूपेण परिवर्धित था तो भी इसमे कई त्रुटियाँ आ गई थी क्योकि इस सस्करण मे मैंने सिद्धान्तत उन सभी नियमो को छोड दिया था जो वैदिक साहित्य की भाषा मे चरितार्थ होते थे और जिनका समावेश हिन्दू व्याकरण शास्त्रो मे हुआ था। मेरा उद्देश्य था कि सस्कृत व्याकरण मे उन्ही व्याकरण रूपो की व्याख्या की जाय जो वैदिकोत्तरकालीन सस्कृत साहित्य मे प्रयुक्त हुए है। मेरा विचार था कि इस प्रकार, सस्कृत व्याकरण शास्त्र के छात्र अनुपयोगी विषयवस्तु के बोझ से बच जायेगे। इसलिये मैंने वैदिक शब्दो का प्रतीक रूप मे भी प्रयोग नही किया, यद्यपि प्रस्तुत व्याकरण की पूर्णता के लिये मैंने ऐसे कई शब्दो के सुबन्त रूप भी दिये जो वैदिक शब्दो से मिलते-जुलते थे। इस कृति का उद्देश्य प्रयोग-समूह एव नियमावली मात्र प्रस्तुत करना अथवा परीक्षा प्रश्नोत्तरी तय्यार करना नही था किन्तु

छात्रो के लिये पूर्ण व्याकरण सामग्री जुटाना था ताकि वे किसी भी सस्कृत रचना को सही रूप मे, सरलता से समझ सके ।

प्रस्तुत कृति प्रथम सस्करण का पूर्णरूपेण सशोधित सस्करण है जो मेरे दशवर्षीय अध्यापन का फल है, तथा जो मेरे उन छात्रो के सुझावो का भी परिणाम है जिन्होने मेरे प्रथम सस्करण का प्रयोग किया था। जो सुधार इसमे हुए हैं वे मुख्यतया परिवर्धन है जिन्होने चौबीस पृष्ठो से पुस्तक के आकार को बढा दिया है ।

प्रस्तुत सस्करण मे मैंने तीन नये खड जोड दिये है (पृ० १४२-१५२) । पहला खण्ड (अनुच्छेद १८२) कृदन्त और तद्धित रूपो का है जिसमे कृत् और तद्धित प्रत्ययो का विवरण दिया है जिससे छात्र को सस्कृत शब्दो की रचना का पूर्ण ज्ञान हो सकता है जो कि प्रथम सस्करण से सम्भव नही था । दूसरे खण्ड मे इन प्रत्ययो से सस्कृत सज्ञाशब्दो के लिंग निर्धारक नियमो का सर्वेक्षण किया गया है (अनु० १८३) । तीसरे खण्ड मे सधातुक समास की रचना का विवरण किया गया है (अनु० १८४) । परिवर्धन के विशेष उल्लेखनीय स्थल है सन्धिप्रकरण मे दन्त्य नासिक्य के नियम । इन नियमो के अन्तर्गत न् के परिवर्तनो का पूर्ण विवरण दिया है । शब्दरूपो मे कतिपय नये सुबन्तो का परिचय भी है जैसे ग्रावन् (अनु० ९०, ४) । कुछ अन्य कठिन प्रयोग भी दिये हैं जैसे कि √दह् के स् लुङ् मे रूप (अनु० १४४, ५)। यद्यपि इस धातु के रूप आत्मनेपद मे नही मिलते तो भी इसके आत्मनेपद-रूप उन आत्मनेपदी धातुओ के प्रतीक रूप मे दे दिये हैं जो तदनुरूप स्वरसहति-वैषम्य को प्रकट करती है। अन्य सुधारो का प्रयोजन है व्याकरण शास्त्र की प्रयोगविधि का सरलीकरण, जैसे कि धातुसूची (परिशिष्ट १) मे विविध रूपो के परिचायक सकेत-चिह्न जोड दिये है जिनके बिना प्रारभिक छात्रो के लिये उन रूपो को समझना कठिन हो जाता । इसके अतिरिक्त, सस्कृत शब्दसूची को अधिकतर पूर्ण और व्याख्यात्मक कर दिया है (दे० उदाहरणार्थ प्राकृत शब्द) । निश्चित ही अन्य उपयोगी सुधार है—आरभ मे विस्तृत विषयसूची के स्थान पर विषयवस्तु का सक्षिप्त साराश और अन्त मे सामान्य शब्दसूची। मेरी यह निश्चित धारणा है कि ये सभी विषय-वस्तु एव आकारसबधी परिवर्धन और परिवर्तन प्रस्तुत व्याकरण के प्रयोगात्मक महत्त्व को विशेषरूप से बढायेंगे ।

प्रस्तुत सस्करण मे, जैसे कि प्रथम सस्करण मे, सर्वत्र लिप्यन्तरण-पद्धति का प्रयोग किया गया हे । इसके अपवाद है धातुसूची (परिशिष्ट १) और वाक्य-रचना के उदाहरण (अनु० १८०, १६०-२१८) । सम्पूर्ण पुस्तक मे लिप्यन्तरण-पद्धति का समरूप प्रयोग हुआ हे और यही पद्धति प्राय पश्चिम मे प्रचलित है । इस पद्धति मे **ऋ** का उच्चारण फ्रेंच शब्द *chambre* मे र् व्यजन के समान है जो अर् अथवा र वर्ण की स्वराघातहीन अपश्रुति को द्योतित करता है ।

प्रस्तुत सस्करण मे जो सुधार हुए है उनका श्रेय मेरे पुराने शिष्यो अथवा मेरे मित्रो को है जिन्होने इस दिशा मे अपने महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये । वे है प्रोफेसर ई जे राप्सन, डा० जेम्स मॉरिसन, श्री एम एल पुरी, बी ए (एक्सटेर कालेज), श्री होरस हाट, एम ए कान्ट्रोलर यूनीवर्सिटी प्रेस, और विशेषतया टी ई मोइर, आई सी एस, बाथम कालेज, एफ डब्ल्यू टॉमस, लायब्रेरियन इडिया आफिस । यूनीवर्सिटी प्रेस के ओरियटल रीडर श्री जे सी पेम्ब्रे आनरेरी एम ए ने अपने सहज अवधान से इस सस्करण के प्रूफो का सशोधन किया है जैसे कि चौसठ वर्ष पूव, १८४७ मे उन्होने, अपने पिता के सहयोग से, प्रो० एच् एच् विलसन की कृति 'सस्कृत व्याकरण' के प्रूफो का सशोधन किया था। सन् १६०० से लेकर आजतक जो मेरी पुस्तकें प्रकाशित हुई उनके तथा प्रस्तुत कृति के प्रूफ पढने के लिये मै डा० ए बी कीथ का आभारी हूँ । इस प्रसग मे मैं उन्हे **वैदिक व्याकरण** के प्रूफ पढने के लिये, और जब मै सितम्बर १६०७ से अप्रेल १६०८ तक भारत मे रहा, मेरी अनुपस्थिति मे मेरे वैदिक व्याकरण के मुद्रण का पर्यवेक्षण करने हेतु भी धन्यवाद देता हूँ ।

१०७, बनस्बरी रोड, आर्थर ए मैकडानल

जुलाई, १६११

भूमिका

संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का संक्षिप्त इतिहास

पवित्र वैदिक सहिताओ को पूर्णतया सुरक्षित रखने की धार्मिक भावना ने ही भारत वर्ष मे व्याकरण पढने की सर्वप्रथम प्रेरणा की थी। उस समय यह मान्यता थी कि वैदिक सहिताओ के प्रत्येक वर्ण के शुद्ध उच्चारण से ही पूर्ण इष्टसिद्धि होगी। इस प्रकार सस्कृत भाषा की बडी परिष्कृतता से प्रभावित होकर प्राचीन भारतीय वैयाकरण पञ्चम शताब्दी ई० पू० मे ऐसे वैज्ञानिक परिणामो पर पहुँचे, जिसकी समानता प्राचीन जगत् का कोई देश नही कर सका। उदाहरणरूप मे यह उनकी प्रमुख देन है कि उन्होने सर्वप्रथम यह पता लगाया कि शब्द अधिकाशत एक ओर धातु पर निर्भर हैं और दूसरी ओर प्रत्यय पर। जब प्रत्यय धातु से समस्त होते है तो धातु का अर्थ अनेक प्रकार से परिवर्तित हो जाता है।

आजकल जो सबसे प्राचीन व्याकरण सुरक्षित है, वह है **पाणिनि** का व्याकरण। यह व्याकरण के पूर्णतया विकसित रूप को प्रकट करता है। पाणिनि इस व्याकरण-परम्परा के अन्तिम लेखक हैं। इस लम्बी प्राचीन-परम्परा के कम से कम ६४ वैयाकरणो का नाम उल्लिखित है। पाणिनि के व्याकरण की सर्वोत्कृष्टता और व्यापकता के कारण सभी प्राचीन व्याकरण पूर्णतया नष्ट हो गए है।

पाणिनि—यास्क (सभवत ५०० ई० पू० के लगभग) से काफी बाद मे हुए हैं। पाणिनि ने यास्क का उल्लेख किया है। पाणिनि और यास्क के बीच मे भी कई बडे वैयाकरण हो चुके हैं। दूसरी ओर पाणिनि अपने भाष्यकार पतजलि से बहुत प्राचीन है, जिसका समय सभवत ई० पू० द्वितीय शताब्दी का उत्तरार्ध है। इन दोनो वैयाकरणो के बीच मे एक महावैयाकरण कात्यायन भी हैं। पाणिनि ने स्वय **'यवनानी'** शब्द का प्रयोग किया है, जिसकी व्याख्या कात्यायन ने 'यवनो की लिपि' की है, अर्थात् यूनानियो या Iaones

की लिपि। यह सर्वथा सभव प्रतीत नही होता है कि ३२७ ई० पू० मे हुए सिकन्दर के आक्रमण से पहले भारतीय यूनानियो की लिपि से परिचित थे। किन्तु इस आक्रमण के तुरन्त बाद भारत की पश्चिमोत्तर सीमा (सीमान्त प्रदेश) के निवासियो को इस भाषा का ज्ञान हुआ होगा और पाणिनि भी सीमान्त के निवासी होने के कारण उससे परिचित हुए होगे। यवन (यूनानी) शब्द से उनकी लिपि का अर्थ बताने के लिए प्रत्ययान्त शब्द यवनानी (यवनो की लिपि) बनाने से पूर्व यह आवश्यक है कि सीमान्त प्रदेश के लोगो का उनसे सपर्क स्थापित हो चुका हो। अत पाणिनि का समय ३०० ई० पू० से पहले रखना अत्यन्त कठिन है।

पाणिनि के व्याकरण **'अष्टाध्यायी'** मे लगभग ४ हजार सूत्र है, जो आठ अध्यायो मे विभक्त है। यह व्याकरण अत्यन्त सूक्ष्म शैली अर्थात् सूत्ररूप मे बनाया गया है, अत प्रत्येक सूत्र मे २ या ३ पद मिलते है। यदि सारा व्याकरण देवनागरी लिपि मे मध्यमश्रेणी के मोटे टाइप मे लगातार छापा जाए वह इस प्रकार के लगभग ३५ पृष्ठो मे पूरा छप जाएगा। फिर भी यह व्याकरण सस्कृत भाषा का सर्वांगपूर्ण व्याकरण उपस्थित करता है। ऐसा पूर्ण व्याकरण विश्व मे कही भी उपलब्ध नही है। यह विश्व का सबसे छोटा और सबसे पूर्ण व्याकरण है।

पाणिनि ने लौकिक सस्कृत के परिष्कार को ध्यान मे रखकर सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। साथ ही पाणिनि ने यह भी प्रयत्न किया है कि लौकिक सस्कृत-व्याकरण के साथ ही वैदिक व्याकरण को भी उसमे सगृहीत किया जाए। वैदिक ग्रन्थो की भाषा पाणिनि के समय तक दुर्बोध हो चुकी थी। यद्यपि पाणिनि ने वैदिक व्याकरण के सैकडो सूत्र दिए है, परन्तु वह व्याकरण अपूर्ण है। समष्टिरूप से विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि पाणिनि ने वैदिक व्याकरण का जो अश दिया है, उसमे बहुत कमी रह गई है, क्योकि उसमे बहुत सी महत्त्वपूर्ण बाते छूट गई है और छोटी-छोटी बाते उल्लिखित की गई है। वैदिक व्याकरण वाले अश मे पाणिनि निश्चितरूप से अपने विषय पर पूर्णाधिकार करने मे असमर्थ रहे है। वेद मे व्याकरण-सबन्धी असीम छूट है, विशेषरूप से तिङन्त और सुबन्त रूपो मे तिङ् और सुप् प्रत्ययो का परस्पर परिवर्तन या उनका लोप होना।

पाणिनि का व्याकरण **'शब्दानुशासन'** (अर्थात् शब्द विषयक प्रबन्ध ग्रथ) है। इसका मौलिक सिद्धान्त है कि सभी सज्ञा शब्द धातुज है। शब्दो को किस प्रकार छोटे से छोटे रूप मे विभक्त किया जा सकता हे, इसके छिए पाणिनि ने धातु, प्रत्यय तथा सुप् और तिङ् मे विभाजन प्रस्तुत किया है, साथ ही पाणिनि ने यह भी बताया है कि किस प्रकार कृदन्त शब्द और धातुज शब्द धातुओ से प्रत्यय लगा कर बनाए जाते है और तद्धित शब्द प्रातिपदिको (बने हुए सार्थक शब्द) से तद्धित प्रत्यय लगाकर बनाए जाते है। पाणिनि ने यह भी बताया है कि प्रत्ययो के लगने से और समास होने से शब्दो के अर्थ और प्रयोग मे क्या अन्तर हो जाता है। पाणिनि की यह विशेषता है कि वह प्रत्ययो के द्वारा ही शब्दो की रचना मानता है। इस प्रकार यदि किसी धातु का सज्ञा शब्द के रूप मे प्रयोग किया जाता है, जैसे भिद् (काटना) धातु का सज्ञा शब्द भिद् (काटने वाला), तो पाणिनि ने इसके लिए एक अत्यन्त कृत्रिम प्रत्यय क्विप् (०) प्रस्तुत किया है, जिसका कुछ भी शेष नही रहता है। इस प्रकार क्विप् एक काल्पनिक प्रत्यय है।

यास्क ने उल्लेख किया है कि **शाकटायन** ने यह मत प्रस्तुत किया था कि 'सभी शब्द धातुज है'। किन्तु **गार्ग्य** ने इस मत के औचित्य पर आपत्ति की है कि जो शब्द इस नियम के आधार पर सरलता से नही बन सकते है, उनके विषय मे वह नियम लागू नही होना चाहिए। बलात् इस प्रकार शब्द-निर्माण उचित नही है। गार्ग्य का कथन है कि जैसे अश्व (घोडा) शब्द अश् (चलना) धातु से बना है। यदि अश्व शब्द को अश् धातु से बना हुआ मानेगे तो जो कोई भी सडकपर चलता है, उसे 'अश्व' कहा जाएगा। इतना ही नही अपि तु सडक पर चलने वाले हर एक पदार्थ का नाम 'अश्व' पडना चाहिए, क्योकि अपने कार्य के आधार पर प्रत्येक वस्तु का नाम पडेगा। पहले भाव (क्रिया) होता है, बाद मे वस्तु, अत क्रियामूलक नाम पडने चाहिएँ।

गार्ग्य की आपत्तियो को दूर करने के लिए पाणिनि ने ऐसे शब्दो को, जिनके निर्माण मे रूप की दृष्टि से या अर्थ की दृष्टि से कुछ विशेष कठिनाई पडती थी, पृथक् कर दिया। जैसे—अश्व (घोडा), गो (गाय) और पुरुष (मनुष्य)। पाणिनि के समय से पहले ऐसे कृदन्त शब्दो की एक विशेष सूची बन चुकी थी, जिनमे धातु के बाद कुछ विशेष कृत् प्रत्यय लगाकर ये शब्द

बलात् बनाए जाते थे। इन प्रत्ययो को उणादि प्रत्यय कहते थे, क्योकि इनका पहला प्रत्यय उ (उण्) था। यह उ ही मूलरूप मे उण् प्रत्यय है। इस प्रकार से बने हुए शब्दो को **उणादि** कहते है (उण् प्रत्यय से प्रारम्भ होने वाला)। पाणिनि ऐसे शब्दो को रूढ शब्द मानते है और इनकी रचना पर उन्होने ध्यान नही दिया।

पाणिनि के समय मे जो उणादि-सूची थी, वह कुछ सशोधित रूप मे आज भी विद्यमान है। **उज्ज्वलदत्त** (समय लगभग १३ वी शताब्दी ई०) की टीका से युक्त उणादि सूत्र इस समय उपलब्ध हैं। उणादिसूत्र जो वर्तमान रूप मे है, इनमे कुछ बाद के शब्द भी आगए है, जैसे—दीनार (लेटिन—Denarius) शब्द। यह शब्द भारतवर्ष मे १००ई० से अधिक पहले किसी भी स्थिति मे प्रचलित नही हो सकता था।

पाणिनि के व्याकरण का मुख्य उद्देश्य शब्द व्युत्पत्ति है, अत उन्होने ध्वनि-विज्ञान का विशद विवेचन नही किया है, अपि तु शब्द-रचना या समस्त पदो मे जितने ध्वनि-नियमो की आवश्यकता थी, उतना ही अश दिया है। अतएव पाणिनि ने ध्वनि-परिवर्तन के सामान्य नियम नही दिए है, अपि तु उनका विवेचन उणादि सूत्रो के तुल्य वास्तविकता पर निर्भर न होकर, सभावनाओ पर निर्भर है और ये प्राय. ठीक है। अधिकाश स्थलो पर ये नियम तुलनात्मक भाषा-विज्ञान से पुष्ट होते है। पाणिनि ने वस्तुत कई ध्वनि-नियमो का आविष्कार किया था। इनमे से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण नियम गुण और वृद्धि के है, जिनके द्वारा निर्बल अग वाले स्वर सबल अग वाले स्वरो मे परिवर्तित होते हैं (नि० १७), जिसको ग्रिम (Grimm) ने अपश्रुति (ablaut) कहा है और जिसको तुलनात्मक भाषाविज्ञान ने सिद्ध किया है कि वह मूल भारोपीय (Indo-European) भाषाओ मे प्रचलित था। अन्य महत्त्वपूर्ण ध्वनि-नियमो का अविष्कार वेदो की विभिन्न शाखाओ से सबद्ध मौलिक प्रातिशाख्य-ग्रन्थो के लेखको ने, जो पाणिनि से पूर्ववर्ती है, किया है।

पाणिनि ने प्रकृति-प्रत्ययो मे और वाक्यो मे स्वर-सचार का वर्णन किया है, परन्तु हम लोगो के अनुसार वाक्य-विचार (Syntax) नही दिया है। इसका कारण सभवत यह है कि सस्कृत मे वाक्यरचना अत्यन्त सरल है।

पाणिनि की **'अष्टाध्यायी'** का सामान्य विषय-क्रम निम्नलिखित है —

अध्याय १ मे व्याकरण के परिभाषिक शब्द और व्याख्या के नियम है, **अध्याय २** मे समास और कारक के नियम है, **अध्याय ३** मे कृत्य और कृत् प्रत्ययो का वर्णन है कि धातु से किस प्रकार कृत् प्रत्यय लगते है, **अध्याय ४ और ५** मे तद्धित प्रत्ययो का वर्णन है कि किस प्रकार तद्धित-प्रत्ययान्त शब्द बनते हैं, **अध्याय ६ और ७** मे स्वर-नियम तथा शब्द-रचना से सबद्ध सन्धि-नियम है, **अध्याय ८** मे वाक्य-रचना से सबद्ध नियम है। इस सामान्य-क्रम मे बार-बार एकाकी नियमो या अनेक नियमो के द्वारा क्रम-भग हुआ है। ये नियम सभवत लेखक ने अपने बाद के विस्तृत अध्ययन के आधार पर जोडे है, अथवा ये नियम मूलरूप मे दूसरे स्थान पर थे, जिन्हे अक्षरलाघव की दृष्टि से मूल स्थान से हटाकर वर्तमान स्थान पर रखा गया है।

सूत्र-निर्माण मे पाणिनि ने अपना यह लक्ष्य रखा है कि सूत्रो को जितना कार्य-बोधक और सामान्य बनाया जा सके उतना बनाया जाए। इस कार्य मे कही-कही वे इतना आगे बढ गए है कि केवल एक उदाहरण के लिए एक सामान्य नियम बनाया गया है और दूसरी ओर एक प्रकरण से सबद्ध कितनी ही बाते जो उस शीर्षक के अन्दर देनी चाहिएँ थी, उनका सग्रह छोड दिया गया है।

पाणिनि के व्याकरण की मुख्य विशेषता अत्यधिक शब्द लाघव है, इसके लिए पाणिनि ने कतिपय उपाय अपनाए है, जैसे—क्रियापद को लुप्त रखना, कारको का विशेष परिभाषिक अर्थ मे प्रयोग, अधिकार सूत्रो की रचना, जो बाद मे आने वाले सबद्ध सभी नियमो के साथ जुडेगे। इन उपायो का फल यह हुआ है कि कभी कभी केवल एक शब्द के द्वारा ही पूरे नियम का वर्णन हुआ है। इस प्रकार 'धातु' शब्द के पचमी के रूप 'धातो' का केवल इतना ही अर्थ नही है कि 'धातु से ये प्रत्यय होते है', अपि तु अधिकार-सूत्र होने के कारण बाद के लगभग ५४० सूत्रो मे इसकी अनुवृत्ति (प्रभाव) होती है।

अक्षर लाघव का सिद्धान्त पारिभाषिक शब्दो के निर्माण मे और अधिक विशेष रूप से द्रष्टव्य है। पाणिनि के वे पारिभाषिक शब्द जो वस्तुत शब्द है, चाहे वे किसी विशेष कार्य को सूचित करते हो, जैसे—समास (सम्+आस, समस्त पद), या वे किसी उदाहरण रूप वर्ग को सूचित करते हो, जैसे—द्विगु (समास का एक भेद, सख्यापूर्वक कर्मधारयसमास, शब्दार्थ—दो गाय),

प्राचीन आचार्यों से ही प्राय लिए गए है। किन्तु पाणिनि के अधिकाश पारिभषिक शब्द बीजगणित के सकेतो के तुल्य ऐच्छिक रूप से अपनाए गए कुछ वर्ण या वर्ण-समूह हैं। इनमे से बहुत थोडे ऐसे है जो वास्तविक शब्द के सक्षिप्त रूप है, जैसे—'इति' से इत् (इत्सज्ञा वाले वर्ण, सकेत सूचक अनुबन्ध शब्द)। इनमे से अधिकाश परिभाषिक शब्द ऐसे है, जो विशेष चिन्तन के बाद बनाए गए है और ऐसे वर्णों को लेकर बनाए गए हैं, जिनका प्रयोग भाषा मे बहुत कम होता है। इस प्रकार काल-बोधनार्थ 'ल' वर्ण लिया गया। इसके साथ मूधन्य ट् लगाने से लट् का अर्थ वर्तमान काल हो जाता है और ङ् लगाने से लङ् का अर्थ भूतकाल हो जाता है। इस प्रकार लट्, लिट्, लुट्, लेट् और लोट् का क्रमश अर्थ होता है—वर्तमान, परोक्षभूत, भविष्यत्, सभावना अर्थ और आज्ञा अर्थ तथा लङ्, लुङ्, लिङ् का अर्थ होता है—अनद्यतन भूत, भूत और आज्ञा या चाहिए अर्थ।

पाणिनि का व्याकरण वैज्ञानिक सिद्धान्तो पर सकलित वर्णमाला (अर्थात् अइउण् आदि १४ **माहेश्वरसूत्र**) से प्रारम्भ होता है। कुछ वर्णों के बाद इत् या अनुबन्ध वर्ण लगाए गए है। इन इत् वर्णों की सहायता से अनेक प्रत्याहार (सक्षिप्त शब्द) बनाए जाते है, जो सक्षेप मे अनेक वर्णों के सूचक होते हैं। अ-इ-उ-ण्, ऋ लृक्, ए-ओ-ङ्, ऐ-औ-च्, इन चार माहेश्वर सूत्रो मे अच् (स्वर) सगृहीत है। चारो सूत्रो के अन्त मे इत् वर्ण है, इनकी सहायता से अक् के द्वारा सामान्य स्वर कहे जा सकते है तथा अच् के द्वारा सामान्य और मिश्रित दोनो प्रकार के स्वर कहे जा सकते है। सस्कृत का अन्तिम वर्ण ह् है, इसे ह-ल् सूत्र से बताया गया है, अत अल् (अ से लेकर ह तक) के द्वारा पूरी सस्कृत वर्णमाला बताई जाती है (जैसे अग्रेज़ी के हिसाब से इसे a-z कहा जाए)। प्रत्ययो धातुओ और शब्दो के बाद भी इत् वर्ण लगाए जाते है, जो यह सूचित करते हैं कि इनमे कुछ विशेष नियम लगेगे। साथ ही ऐसा करने से शब्द-लाघव होता है और प्रत्याहार आदि याद करने मे सुविधा होती है।

पाणिनि की अष्टाध्यायी के साथ दो परिशिष्ट है, जिनका उसने उल्लेख किया है। एक 'धातुपाठ' है, इसमे भ्वादिगण आदि के क्रम से धातुएँ सगृहीत हैं। किस धातु के रूप किम पद मे चलेंगे, इसका सकेत उदात्त आदि स्वरो और ङ् ञ् आदि अनुबन्ध वर्णों के द्वारा सूचित किया जाता है। धातुपाठ के

विषय मे विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इस धातुपाठ मे लगभग २००० धातुएँ है (इसमे कुछ धातुएँ एक ही धातु के रूपान्तर है), किन्तु अभीतक उपलब्ध साहित्य मे लगभग ८०० धातुएँ ही प्राप्त हुई हैं। साथ ही इसमे वेदो मे प्राप्त होने वाली लगभग ५० धातुओ का उल्लेख नही है। दूसरा परिशिष्ट **'गणपाठ'** (अर्थात् एक प्रकार के शब्दो का सग्रह) है। पाणिनि ने एक प्रकार के शब्दो मे लगने वाले नियमो के लिए उस गण का प्रथम शब्द देकर 'आदि' (इत्यादि) शब्द लगा दिया है। इस गणपाठ मे कुछ शब्द ऐसे है, जो केवल वेदो मे ही आए है। धातुपाठ की अपेक्षा गणपाठ घटिया ढग से सुरक्षित मिलता है। ११४० ई० के लेखक **वधमान** द्वारा विरचित **'गण-रत्न महोदधि'** (गण रूपी रत्नो का महासमुद्र) मे ये गण श्लोक-बद्ध रूप मे सकलित है।

बहुत प्राचीन समय से ही पाणिनि का ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाने लगा। यह ग्रन्थ कम से कम २ हजार वर्ष तक सस्कृतभाषा का आदर्श ग्रन्थ और सस्कृत-व्याकरण का आधार माना जाता रहा है। इस ग्रन्थ मे शब्द-लाघव के लिए सभी अन्य बातो की बलि दी गई है और स्थान स्थान पर अस्पष्टता के कारण इसकी व्याख्या के लिए अन्य व्याख्या-ग्रन्थो की आवश्यकता पडी। साथ ही व्याकरण सबन्धी प्रगति के कारण यह भी आवश्यकता हुई कि इन नियमो को शुद्ध किया जाए और नियमो मे परिवर्धन भी किया जाए। इस प्रकार के जो काय हुए उनमे सबसे प्राचीन कार्य परिभाषाओ (व्याख्या के नियमो) की रचना है। इनके लेखक अज्ञात है। इन परिभाषाओ के विषय मे माना जाता है कि पाणिनि इन परिभाषाओ को मानते थे और पाणिनि के परवर्ती वैयाकरण कात्यायन ने इन पारिभाषाओ का उल्लेख किया है। **नागोजिभट्ट** ने १८वी शती मे अपने ग्रन्थ **'परिभाषेन्दुशेखर'** मे इस प्रकार की परिभाषाओ का सकलन किया है।

इसके पश्चात् **कात्यायन** ने पाणिनि के १२४५ सूत्रो (अर्थात् लगभग $\frac{१}{३}$ अष्टाध्यायी के सूत्रो) पर अपने वार्त्तिक (टिप्पणी, वृत्ति अर्थात् व्याख्या से वार्तिक शब्द है) लिखे है। कात्यायन दक्षिण के निवासी थे और वे सभवत, तृतीय शताब्दी ई० पू० मे हुए थे। कात्यायन ने जहाँ पाणिनि की आलोचना मे उससे मतभेद प्रकट किया है, वहाँ पाणिनि की भूल-चूक समझनी चाहिए,

किन्तु ऐसी भूल-चूको के लिए यह तथ्य भी नही भूलना चाहिए कि कात्यायन परवर्ती है और वे पाणिनि के निवास स्थान से भारत के सुदूरवर्ती स्थान के वासी है। कात्यायन के पहले और बाद मे अनेक वैयाकरण हुए है, जिन्होने अष्टाध्यायी पर इस प्रकार के वार्त्तिक बनाए है। कात्यायन के बाद अनेक वैयाकरणो ने कारिका-ग्रन्थ (श्लोक बद्ध टिप्पणी) बनाए हैं।

पतजलि ने अपने विशाल भाष्य **'महाभाष्य'** मे इन सब आलोचनात्मक वार्त्तिको और कारिकाओ आदि का सग्रह किया है। साथ ही उन्होने अपनी भी व्याख्या दी है। पतजलि की व्याख्या प्रश्नोत्तर के रूप मे है और यह अष्टाध्यायी के १७१३ सूत्रो पर है। पहले कहा जा चुका है कि पतजलि के महाभाष्य का समय द्वितीय शताब्दी ई० पू० का उत्तरार्ध है। सातवी शताब्दी ई० मे महाभाष्य की टीका **भर्तृहरि** ने अपने ग्रन्थ **'वाक्यपदीय'** (वाक्यगत पदो का विश्लेषणात्मक प्रबन्ध) मे की है और इसका सबन्ध व्याकरण-दशन (व्याकरण का दार्शनिक पक्ष) से है। दूसरी टीका **कैयट** ने लिखी है, जो सभवत १३ वी शताब्दी ई० मे हुआ था।

अष्टाध्यायी पर ६५० ई० के लगभग दूसरी टीका **'काशिका वृत्ति'** (बनारसी टीका) लिखी गई। इसके प्रथम पाँच अध्यायो की टीका **जयादित्य** ने की है और अन्तिम तीन अध्यायो की टीका **वामन** ने की है। इसमे पाणिनि के सूत्रो का कुछ विकृत रूप है और कुछ त्रुटियाँ भी है, किन्तु इसकी विशेषता यह है कि इसमे लाघव, प्रवाह और सरलता है। यद्यपि यह टीका महाभाष्य से बहुत छोटी है, फिर भी इस अर्थ मे बहुमूल्य है कि यह अष्टाध्यायी के सभी सूत्रो की व्याख्या वाली सबसे प्राचीन टीका है। इसमे जो उदाहरण दिए गए है, वे प्राय सभी प्राचीन टीकाकारो के ग्रन्थो से लिए गए है। इस प्रकार का उद्धरण सामान्य-क्रम रहा है। यहाँ तक कि पतजलि ने भी ऐसे उदाहरणो को मूर्धाभिषिक्त (दीक्षित) बताया है।

१५ वी शताब्दी ई० में **रामचन्द्र** ने अपने ग्रन्थ **'प्रक्रियाकौमुदी'** (विधियो की चन्द्रिका)मे पाणिनीय व्याकरण को अधिक सुबोध और अधिक व्यावहारिक बनाने के लिए विषयानुसार नवीन ढग से विभक्त किया। इसी प्रकार के उद्देश्य से १७ वी शताब्दी ई० मे **भट्टोजि** ने **'सिद्धान्त-कौमुदी'** (निर्णीत-सिद्धान्तो की चन्द्रिका) की रचना की। इसमे पाणिनि के सूत्रो को अधिक

सुसगत और व्यवस्थित रूप मे रखा गया है, इसका ही सक्षिप्त सस्करण **वरदाचार्य** ने **'लघु- (सिद्धान्त) कौमुदी'** नाम से बनाया है, जो सस्कृत व्याकरण के प्रारम्भिक छात्रो के लिए भारत मे प्रयुक्त होता है। अभीतक भारतीय पण्डितो मे यह विश्वास बद्धमूल है कि पाणिनि के व्याकरण मे त्रुटि नही हो सकती है, अत पतजलि से लेकर बाद के सभी उपर्युक्त लेखको ने पाणिनि के सूत्रो की व्याख्या मे कतिपय असगत व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की है।

परकालीन वैयाकरण, जो पाणिनीय परम्परा से सबद्ध नही है, विशेष महत्त्वपूर्ण नही है। इनमे नई बाते प्राय नही के बराबर है और पाणिनि की अपेक्षा बहुत अपूर्ण है, क्योकि इनमे वैदिक-प्रक्रिया, स्वर-प्रक्रिया आदि पूरे अश छोड दिए गए है। इनमे नई बाते नही है, परन्तु इनका उद्देश्य है नई पद्धति को अपना कर विषय को अधिक सरल और सुबोधरूप मे प्रस्तुत करना। इन अ-पाणिनीय वैयाकरणो मे विशेष उल्लेखनीय ये है —**चन्द्र,**[1] इसका समय ६५० ई० के लगभग माना जाता है।[2] (२) **शाकटायन** (नकली), जो काशिका वृत्ति के बाद का है, (३) **हेमचन्द्र** (१२ वी शताब्दी ई०)। यह तीनो मे सबसे महत्त्वपूर्ण है। **शर्ववर्मन्** (अनिश्चित समय) के **'कातन्त्र'** मे प्राचीन पारिभाषिक शब्दावली, विशेषरूप मे प्रातिशाख्य ग्रन्थो की शब्दावली, से बहुत मिलती-जुलती है। यह परकालीन व्याकरणो से सबसे अधिक प्रभावशाली व्याकरण प्रतीत होता है। यह **कात्यायन** के प्रामाणिक **पालि-व्याकरण,** द्राविड और तिब्बती व्याकरणो का आधार-ग्रन्थ रहा है। **वोपदेव** का **मुग्धबोध** (अबोधो के लिए प्रकाशक) एक बहुत दुर्बोध ग्रन्थ है। इसका समय १३ वी शताब्दी ई० के बाद का है। यह बगाल मे आजतक प्रमुख सस्कृत-व्याकरण के रूप मे उपयोग मे आ रहा है। अन्त मे एक अज्ञात लेखक द्वारा लिखित **सरस्वतीसूत्र** (**सारस्वत-व्याकरण** के सूत्र) उल्लेखनीय है। यह शब्दलाघव और सरलता के लिए प्रसिद्ध है।

---

१ इसके ग्रन्थ 'चान्द्र-व्याकरण' का सम्पादन प्रो० Bruno Liebich (Leipziq, १९०२) ने किया है।

२ इसके लिए देखो—Vienna Oriental Journal(१३,३०८-१५), Winternitz, Geschichte der indischen Litterature (भाग २, पृ २५९)

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रन्थ है, जिनका सबन्ध व्याकरण के किसी विशेष विषय से है। ये ग्रन्थ सस्कृत-व्याकरण के ज्ञान की वृद्धि मे कुछ महत्त्व-पूर्ण योग देते है। इनमे **शान्तनव के फिट् सूत्र** है। ये महाभाष्य के बाद बने है, किन्तु उस समय तक बन चुके थे, जब तक प्राचीन स्वर-सचार की प्रक्रिया सजीवरूप मे ज्ञात थी। इसमे पाणिनि के तुल्य प्रकृति और प्रत्यय मे अलग-अलग स्वर सचार के नियम नही दिए है, अपितु बने हुए शब्दरूपो और सज्ञा-शब्दो मे स्वर के नियम दिए है कि कहाँ पर अन्तिम स्वर उदात्त होगा और कहाँ पर प्रथम स्वर उदात्त होगा। पाणिनि ने यद्यपि स्त्रीलिंग प्रत्ययो का उल्लेख किया है और लिंग-विषयक सामान्य नियमो की उपेक्षा नही की है, तथापि उन्होने प्रत्येक शब्द के लिग-निर्धारण का प्रयत्न नही किया है, इस-दृष्टि से लिंगानुशासन वाले ग्रन्थो का कुछ मूल्य हो सकता है। विशेषरूप से **हेमचन्द्र के लिङ्गानुशासन** मे लिग-विषयक बातो का सामान्यरूप से सामूहिक विवेचन हुआ है।

यूरोपीय विद्वानो मे सर्वप्रथम जर्मन मिशनरी **Heinrich Roth** ने सस्कृत-व्याकरण लिखा था। यह Augsburg का निवासी था और Jesuit College आगरा मे Superior था। आगरा मे ही १६६८ई० मे इसकी मृत्यु हुई थी। इसका ग्रन्थ आजतक प्रकाशित नही हुआ है, परन्तु अभी तक इसकी पाडुलिपि रोम मे सुरक्षित है। **Kircher** के China Illustrata (Amsterdam, १६६७, पृ० १६२-६३) मे रॉथ का एक लेख है। इसमे देवनागरी लिपि मे सस्कृत वर्णमाला के ५ चार्ट है (यह वस्तुत देवनागरी लिपि का सर्वप्रथम नमूना है, जो यूरोप मे छपी किसी भी पुस्तक मे उपलब्ध है)।

यूरोप मे छपी सर्वप्रथम सस्कृत-व्याकरण की पुस्तक **Paulinus a Sancto Bartholomaeo** द्वारा लिखित थी। यह लेटिन भाषा मे लिखी गई थी और १७९० मे रोम मे छपी थी। यह ग्रन्थ कुछ अशो मे जर्मन ईसाई मिशनरी **Hanxleden,** जिसकी मृत्यु १७३२ मे हुई थी, की छोडी हुई पाण्डु लिपि पर निर्भर था। सस्कृत का पहला वैज्ञानिक व्याकरण जो पूर्ण माना जा सकता है, **कोलब्रुक (Colebrooke)** द्वारा रचित था और १८०५ मे प्रकाशित हुआ था। इसके बाद १८०६ मे **कारे (Carey)** (द्वारा लिखित व्याकरण छपा। कोलब्रुक का व्याकरण पाणिनि पर निर्भर था और कारे

का व्याकरण वोपदेव पर आश्रित था। सस्कृत का प्रथम व्याकरण जो यूरोपीय सिद्धान्तो पर निर्भर था, वह **विल्किन्स** (Wilkins) (१८०८) का था, जिसने गत शताब्दी के प्रारम्भ मे यूरोप मे सस्कृत के अध्ययन पर सबमे अधिक प्रभाव डाला था। उसके परवर्ती लेखको मे विशेष उल्लेखनीय है—**बॉप** (Bopp), **बेन्फे** (Benfey) और **ह्विट्ने** (Whitney)। **बॉप** का सस्कृत व्याकरण सरलता के साथ ही साथ भाषावैज्ञानिक पद्धति अपनाने के कारण महत्त्वपूर्ण था। **बेन्फे** प्रथम व्यक्ति था, जिसने पाणिनीय व्याकरण के साथ ही वैदिक तथा रामायण और महाभारत की विशेषताओ का भी एकत्र समन्वय किया था। उसने सस्कृत रूपो की व्युत्पत्ति के लिए तुलनात्मक भाषाविज्ञान का उपयो किया था। अमेरिकन विद्वान् ह्विटने प्रथम व्यक्ति था, जिसने वैदिक व्याकरण का अधिक विस्तृत विवेचन करके सस्कृत का ऐतिहासिक व्याकरण प्रस्तुत किया और यह स्पष्ट किया कि किस प्रकार वैदिक भाषा से सस्कृत भाषा विकसित हुई है। सस्कृत का प्रथम व्याकरण, जो शुद्ध रूप से तुलनात्मक भाषाविज्ञान पर निभर हो, **प्रो० जे० वाकरनागल (Prof J Wackernagal)** द्वारा रचित प्रशसनीय कृति है। इसके प्रथम भाग, (१८९६) मे ध्वनि-विचार (Phonology) है और दूसरे भाग के प्रथम अश (१९०५) मे समास-विचार है। इन ग्रन्थ का इतना ही अश अभी तक प्रकाशित हुआ है।

हमारे देश मे १९ वी शताब्दी ई० के उत्तरार्ध मे जो सस्कृत-व्याकरण सबसे अधिक प्रचलित रहे हैं, वे **मोनियर विलियम्स** (**Monier-williams**) और **मैक्स मूलर** (**Max Muller**) के है। इन दोनो के व्याकरणो मे बहुत सी सामग्री भारतीय पद्धति से ली गई है, जिसका कोई व्यावहारिक उपयोग नही है, अपितु साहित्यिक सस्कृत सीखने वालो के लिए यह विघ्न रूप मे है। इस प्रकार की सारी सामग्री इस ग्रन्थ से निकाल दी गई है। इसका अभिप्राय यह नही है कि हमे भारतीय वैयाकरणो से कोई चिढ है, अपि तु हमारा उद्देश्य है कि व्याकरण की वही सामग्री प्रस्तुत की जाए जो आजतक के विद्वानो द्वारा वस्तुत भाषा मे प्रयुक्त हुई है और जिसके द्वारा व्याकरण को सरल और सुबोध बनाया जा सके। इसमे से वैदिक रूपो को भी निकाल दिया गया है, किन्तु यूरोपीय और भारतीय विद्यार्थी प्राचीन भाषा से कुछ

परिचित हो सके, इसके लिए परिशिष्ट ३ मे वैदिक व्याकरण की सक्षिप्त रूप-रेखा प्रस्तुत की गई है। इसके द्वारा वे वैदिक भाषा का अध्ययन प्रारम्भ कर सकते है। मेरा नवीन प्रकाशित ग्रन्थ **Vedic Grammar** (वैदिक व्याकरण) प्रारम्भिक छात्रो के लिए बहुत विस्तृत ग्रन्थ है। मैं चाहता हूँ कि इस 'सस्कृत-व्याकरण-प्रवेशिका' के तुल्य ही एक सरल वैदिक व्याकरण प्रस्तुत करूँ, जिसमे वाक्य-विचार भी हो। जिस प्रकार यह सस्कृत-व्याकरण प्रारम्भिक छात्रो के लिए लौकिक सस्कृत की सामान्य शिक्षा देता है, उसी प्रकार वह ग्रन्थ वैदिक भाषा के विषय मे सक्षिप्त रूपरेखा देकर सहायक सिद्ध होगा।

यद्यपि लौकिक सस्कृत मे स्वर-चिह्न नही लगाए जाते है, फिर भी मैंने भाषावैज्ञानिक महत्त्व के कारण वैदिक भाषा के आधार पर जहाँ तक स्वर-निर्णय सभव हुआ है, वहाँ तक इग्लिश् मे रूपान्तरित रूपो पर स्वरचिह्न देने का प्रयत्न किया है। परिशिष्ट ३ मे वैदिक स्वरो के विषय मे सक्षिप्त विवरण भी दिया गया है।

विषय-सूची

———

अध्याय १

वर्णमाला

१—**सस्कृत** (सम्+कृत, परिष्कृत) प्राचीन भारत की साहित्यिक भाषा का परवर्ती रूप है, जिसका वर्णन पाणिनि ने अपने व्याकरण मे किया है। ध्वनिविज्ञान की दृष्टि से यह पूववर्ती **वैदिक** भाषा से प्राय मिलती-जुलती है। शनै शनै यह वैदिक बोली से भिन्न हो गई। यह विकास प्रगतिशील न होकर ह्रासोन्मुख था। इसमे वैदिक भाषा के बहुत से प्राचीन रूप (शब्द रूप और धातुरूप) पूर्णतया लुप्त हो गए है, जैसे—पूरा लोट् लकार (Subjunctive Mood) तथा केवल तुमुन् (तुम्) प्रत्यय को छोडकर शेष सभी तुमुन् अर्थ वाले प्रत्यय। मुख्य परिवर्तन शब्दावली मे हुआ है। यद्यपि इसमे बहुत से प्राचीन शब्द और धातु लुप्त हो गए है, किन्तु उनके स्थान पर नए शब्दो और नए अर्थो की उपलब्धि से सस्कृत-शब्दकोश मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। वस्तुत वैदिक और सस्कृत भाषा मे बहुत-कुछ अशो मे उतना ही अन्तर है जितना होमरिक (Homeric) और एट्टिक (Attic) ग्रीक मे।

२—वैदिक सस्कृत से प्रचलित **प्राकृत** बोलियाँ उत्पन्न हुई है। प्राकृत शब्द प्रकृति (मूल भाषा, अर्थात् सस्कृत भाषा) शब्द से बना है जिसका अर्थ है—सस्कृत से उत्पन्न भाषा, परन्तु बाद मे इसका अर्थ जनसाधारण की भाषा या असभ्य जन की भाषा हो गया। प्राकृत का अर्थ असभ्य, अशिक्षित है। प्राकृत भाषाओ के प्राचीनतम रूप तृतीय शताब्दी ई० पू० (B C) के महाराज अशोक के शिलालेखो मे सुरक्षित मिलते है। एक शिलालेख मे इस प्राकृत का पालि नाम मिलता है। यही पालि भाषा दाक्षिणात्य बौद्धो की पवित्र साहित्यिक भाषा बनी है। शिलालेखो, स्तम्भ-लेखो, समस्त साहित्यिक

ग्रन्थो और कुछ अशो मे सस्कृत नाटको मे सुरक्षित इन प्राचीन प्राकृत भाषाओ से ही वतमान भारत की अधिकाश भाषाए (बोलिया), जैसे—पजाबी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, हिन्दी, बिहारी और बगला—निकली है। हिन्दी भाषा मे ही जब अरबी और फारसी शब्द विशेषरूप से मिल जाते है, तो उसे उर्दू या हिन्दुस्तानी कहते है। दक्षिण भारत की द्रविड परिवार की भाषाएँ तेलगु, तमिल, कन्नड और मलयालम् यद्यपि आय-परिवार की भाषाएँ नही है, तथापि इनमे सस्कृत शब्द भरे हुए है और इनके साहित्य मे सस्कृत भाषा की रचना-शैली की ही सवत्र प्रधानता है।

३—मेसोपोटामिया (Mesopotamia) से इधर फैलते हुए, सभवत ७०० ई० पू० के लगभग, सेमिटिक (Semitic) भाषा की वर्णमाला का एक रूप भारत के उत्तर-पश्चिम मे प्रारम्भ हुआ। इस लिपि को भारत मे सबसे पहले जो अपनाया गया, उसका ज्ञान हमे तृतीय शताब्दी ई० पू० के सिक्को और अभिलेखो से होता है। इनमे इस लिपि को ब्राह्मी (अर्थात् ब्रह्मा की लिपि) कहा गया है। यद्यपि यह बाएँ से दाएँ लिखी जाती है, तथापि इसमे स्पष्ट सकेत मिलते है कि यह किसी समय मे दाएँ से बाएँ लिखी जाती थी। इस ब्राह्मी लिपि से ही भारत की सभी परकालीन लिपियाँ निकली है। इनमे सबसे महत्त्वपूर्ण नागरी या देवनागरी लिपि है। नागरी का अभिप्राय है 'नगर-निवासियो की लिपि' या सभवत गुजरात के 'नागर ब्राह्मणो की लिपि'। देवनागरी शब्द बाद मे प्रयोग मे आया है, इसका अर्थ है—'देवताओ के नगरो की लिपि', किन्तु इस शब्द की उत्पत्ति का अभी तक निश्चित ज्ञान नही है। इस देवनागरी लिपि की वर्णमाला का यह विशेष रूप आठवी शताब्दी ईसवीय (A D) के मध्य के लगभग हुआ है। उत्तर भारत मे सस्कृत भाषा प्राय देवनागरी लिपि मे ही लिखी जाती है, परन्तु बगाल और उडीसा आदि प्रान्तो मे अपनी प्रान्तीय लिपियो—बगला और उडिया आदि—मे भी लिखी जाती है। दक्षिण भारत मे सस्कृत के लिए नियमित रूप से द्रविड परिवार की लिपियो का ही उपयोग किया जाता है।

४—देवनागरी वर्णमाला मे ४८ अक्षर होते है—१३ स्वर और ३५ व्यजन। इन ३५ व्यजनो मे अनुस्वार (ˉ) और विसग ( ) की भी गणना

है। ये अक्षर सस्कृत भाषा की सभी ध्वनियो को प्रस्तुत करते है। प्राचीन भारतीय वैयाकरणो ने निम्नलिखित सारणी के रूप मे दिए गए इस वर्णमाला के अक्षर-विन्यास को अपनाया है। इसका क्रम पूर्णतया वैज्ञानिक है, अतएव यूरोपीय विद्वानो ने अपने सस्कृत-कोशग्रन्थो मे इसी क्रम को अपनाया है।[1]

देवनागरी वर्णमाला

स्वर			स्वर		
शुद्धरूप	मात्रा	समवर्ण	शुद्धरूप	मात्रा	समवर्ण
अ	—	a	ॠ	ॄ	ṝ (rī)
आ	ा	ā	लृ	ॢ	ḷ
इ	ि	i	ए	े	e
ई	ी	ī	ऐ	ै	ai
उ	ु	u	ओ	ो	o
ऊ	ू	ū	औ	ौ	au
ऋ	ृ	ṛ (ri)			

१ सस्कृत के प्रारम्भिक छात्रो को शब्दकोष मे अनुस्वार और विसर्ग के कारण शब्द ढूढने मे बहुत अधिक कठिनाई अनुभव होती है अत निम्नलिखित टिप्पणी वर्णों के क्रम सबन्धी ज्ञान के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। अन्त स्थ, ऊष्म और ह से पूर्ववर्ती अपरिवर्तनीय अनुस्वार (देखो नियम-सख्या ४२ ख-१) अन्य सभी व्यजनो से पहले आता है, अत शब्द-कोष मे सवर, सशय, ये सक शब्द से पहले आयेगे। परिवर्तनशील अनुस्वार (देखो नियम सख्या १० और ४२ ख-२) जिस नासिक्य वर्ण (पचम वर्ण) के रूप मे परिवर्तित हो सकता है, उस नासिक्य वर्ण के साथ रहेगा। अत सग शब्द सङ्ग के साथ कोष ग्रन्थ मे आएगा। इसी प्रकार कठोर कवर्ग और पवर्ग (क, ख, प, फ) से पूर्व अपरिवर्तनशील विसर्ग अन्य सभी व्यजनो से पहले आता है। अतएव अन्त करण और अन्त पुर शब्द अन्त शब्द के पश्चात् आयेंगे और अन्तक शब्द से पहले। किन्तु ऊष्म से पहले परिवर्तनशील विसर्ग जिस ऊष्म वर्ण के रूप मे परिवर्तित हो सकता है, उस ऊष्मवर्ण के साथ रहेगा। अत अन्त स्थ और अन्तस्स्थ दोनो एक स्थान पर एक साथ आयेंगे।

व्यञ्जन

कवर्ग	कण्ठ्य	समवर्ण
क		k
ख		k-h
ग		g
घ		g-h
ङ		n

चवर्ग	(तालव्य)	
च		c
छ		c-h
ज		j
झ		j-h
ञ		ñ

टवर्ग	(मूर्धन्य)	
ट		t
ठ		t-h
ड		d
ढ		d-h
ण		n

तवर्ग	(दन्त्य)	
त		t
थ		t-h
द		d
ध		d-h
न		n

पवर्ग	(ओष्ठ्य)	समवर्ण
प		p
फ		p-h
ब		b
भ		b-h
म		m
	(विसर्ग)	h
ॱ	(अनुस्वार	m या m

व्यञ्जन

अन्त स्थ		समवर्ण
य		y
र		r
ल		l
व		v
ऊष्म		
श		s
ष		s
स		s
ह		h

५—स्वर शब्द के प्रारम्भ मे और व्यजन के अन्त मे विभिन्न प्रकार मे लिखे जाते है। स्वर ये है—

(क) **सामान्य स्वर** (Simple vowels) —

अ (×)[१] a, इ (ि) i[२], उ (ु) u, ऋ (ृ) r, लृ (ॢ) l,
आ (ा) ā, ई (ी) ī, ऊ (ू) ū, ॠ (ॄ) r̄
(ख) **मिश्रित स्वर** (Diphthongs) —
ए (े) e,[३] ऐ (ै) ai,[४] ओ (ो) o, औ (ौ) au,[५]

---

१ ह्रस्व (अ) की कोई पृथक् मात्रा नही है, क्योकि यह माना जाता है कि ह्रस्व अ सभी व्यजनो मे स्वयसिद्ध रूप से रहता है। जैसे—क—ka।

२ शब्दो के बीच मे या अन्त मे आने वाली (इ) की मात्रा (ि) जिस शब्द के बाद बोली जाती है, उससे पहले लगती है। जैसे—कि ki। मूलरूप मे इ और ई की मात्राएँ क्रमश व्यजन के बाईं ओर और दाईं ओर ऊपर कोण के रूप मे लिखी जाती थी, किन्तु कुछ समय बाद स्पष्टता के लिए इ की मात्रा बाइ ओर सीधी लकीर के रूप मे हो गई और ई की मात्रा दाईं ओर सीधी लकीर के रूप मे।

३ ए और ओ प्राय सभी स्थानो पर मूल ध्वनि अइ ai और अउ au पर निभर हैं, तथापि ये दोनो स्वर कम से कम ३०० ई० पू० से लेकर अबतक अधिकाश यूरोपीय भाषाओ मे सामान्य दीघ स्वर ए और ओ (e and ō) के रूप मे उच्चरित होते हैं।

४ यद्यपि ऐ और औ निवचन की दृष्टि से आई और आऊ (āi and āu) को प्रस्तुत करते हैं, परन्तु कम से कम ३०० ई० पू० से लेकर अबतक इनका उच्चारण अई और अऊ (āi and āu) के रूप मे होता है।

५ उपर्युक्त मात्रा-चिह्न व्यजनो के बाद लगते हैं। जैसे—क् (k) मात्राओ के साथ इस प्रकार लिखा जाएगा —

क ka, का kā, कि ki, की kī, कु ku, कू kū, कृ kr, कॄ kr̄, क्लृ kl, के ke, कै kai, को ko, कौ kau,। र् के बाद उ और ऊ नीचे न लगाकर बगल मे लगाते हैं—रु ru, रू rū।

सारणी

	कठोर अल्पप्राण	कठोर महाप्राण	मृदु अल्पप्राण	मृदु महाप्राण	मृदु अनुनासिक	मृदु अन्त स्थ	कठोर ऊष्म	मृदु स्वर ह्रस्व	मृदु स्वर दीर्घ	मृदु मिश्रित स्वर	
कण्ठ्य	क	ख	ग	घ	ङ	ह[3]	[4]	अ	आ	ए	ऐ
तालव्य[1]	च	छ	ज	झ	ञ	य	श	इ	ई		
मूर्धन्य[2]	ट	ठ	ड	ढ	ण	र	ष	ऋ	ॠ		
दन्त्य	त	थ	द	ध	न	ल	स	लृ			
ओष्ठ्य	प	फ	ब	भ	म	व	[5]	उ	ऊ	ओ	औ

१ तालव्य ध्वनियाँ अधिकाश मे मूल कण्ठ्य वर्णो से निकली हैं। मूल कण्ठ्य वर्णों के बाद यदि तालव्य स्वर होते थे तो तालव्य स्वर के कारण कण्ठ्य (कवग) वर्णों को तालव्य हो जाता था, किन्तु मैक्समूलर ने इनको टेढे कवग के रूप मे प्रस्तुत किया है।

२ यह देशज प्राचीन सस्कृत शब्द मूध य का अनुवाद है, जो मूधन् शब्द से बना है। इसका अथ है शिरोभाग मे उत्प न होने वाला, अर्थात् शिर के ऊपरी भाग के अत्यन्त समीप जो मुख का सबसे ऊपरी भाग है उससे उत्प न होने वाला। बॉप (Bopp) के समय से इस मूधन्य ध्वनि को linguals भी प्राय कहा जाता है। ये वण मूल दन्त्य वर्णो से निकले है। मूल दन्त्य वर्णों के आगे या पीछे यदि मूध य ष या र् ध्वनि होती थी तो दन्त्य वण मूध य हो जाते थे।

३ ह अ त स्थ नही है, किन्तु अन्य सामान्य (इ, उ आदि) स्वरो के तुल्य मृदु श्वास के समकक्ष कण्ठ्य स्वर है। अ का कोई अपना अन्त स्थ नही है। यह घ (g h) आदि के अन्तराध ह ध्वनि के समकक्ष है।

४ (विसग) मे कठोर श्वास है और यह ख (k-h) आदि कठोर महाप्राण वर्णों के उत्तराध के समकक्ष है। यह पद के अन्त मे और क तथा प से पहले स और र् के स्थान मे विसग के रूप मे रहता है। क से पहले विसग को जो रूपा तरण होता है, उसे जिह्वामूलीय ≍क (जीभ के मूल से उत्प न) और प से पूव होने वाले रूपा तरण ≍ प को उपध्मानीय (फूकना) कहते हैं। इनका पहले प्रयोग होता था, पर तु अब ये लुप्त हो गए है। ये दोनो अध-विसग के तुल्य लिखे जाते हैं। इनमे जमन ख् (ch) और फ (f) के तुल्य ध्वनि रहती है।

५ यहाँ पर यह विशेष उल्लेखनीय है कि ऊपर की सारणी मे पक्ति १, २ और ७ मे कठोर (श्वास और अघोष) वण है, शेष सभी वण मदु (नाद और घोष) वण है।

६—उपरिलिखित सारणी मे वर्णों के उच्चारण-स्थान के अनुसार देवनागरी वर्णमाला की ध्वनियो का पूरा वर्गीकरण (जो कि पाणिनि के समय मे प्रचलित था) दिया गया है —

७—अनुस्वार (स्वर के पश्चात् लगने वाला) स्वर के बाद लगने वाली नासिक्य ध्वनि है और यह वग के ग चम वर्णों से भिन्न है। यह उस स्वर के ऊपर बिन्दु (ं) के रूप मे लिखा जाता है, जिसके बाद इसका उच्चारण होता है। जैसे—क। ल् से पहले यह अनुस्वार कभी-कभी ँ अनुनासिक के रूप मे लिखा जाता है। जैसे—कँ। मूलरूप मे इसका वास्तविक स्थान ऊष्म और ह् ध्वनियो से पहले था, वहा से इसका विस्तार हुआ है। अनुस्वार (ं) और अनुनासिक (ँ) ध्वनियो मे भी कभी-कभी अन्तर किया जाता है। अनुनासिक का अभिप्राय है—नासिक्य ध्वनि-युक्त स्वर।

८—देवनागरी वर्णमाला लिखने मे वर्ण का विशिष्ट अश सवप्रथम लिखा जाता है। तत्पश्चात् एक सीधी लकीर (खडी पाई) खींची जाती है और अत मे वर्ण के ऊपर एक पडी पाई (समानान्तर रेखा) लगाई जाती है।[1] जैसे—(ᥴ> त > त।

९—हल् व्यजनो के नीचे एक छोटी लकीर बाई से दाई ओर लगाई जाती है। इसको हल् कहते है। जैसे—अ के बाद क्—अक् लिखा जाएगा।

सस्कृत मे दो विराम-चिह्न है—१—एक सीधी लकीर (।), २—दो सीधी लकीर (॥)। श्लोक के आवे भाग के बाद और वाक्य के अन्त मे एक लकीर लगाई जाती है। पूरे श्लोक के अन्त मे तथा अनुच्छेद (पैराग्राफ) के अन्त मे दो लकीरे लगाई जाती हैं।

यूरोपीय सस्करणो मे शब्द के आदि मे आने वाले लुप्त अ का अवग्रह चिह्न (ऽ) से सकेत किया जाता है। जैसे—ते अपि के स्थान पर तेऽपि लिखा जाता है।

---

१ मूलरूप मे यह वण का अनिवाय अग नही था, किन्तु यह रेखा का एक अश है, जिसके नीचे वण लिखा जाता है।

सक्षेप के लिए ० (शून्य) का चिह्न दिया जाता है। इसका अभिप्राय है कि शून्य वाले स्थान पर पूर्वोक्त कुछ अश लुप्त है। जैसे—गतम्, ०तेन (अर्थात् गतेन)।

१०—किसी एक पद मे जब वर्ग के पचम वर्ण आते है और उनके बाद उसी वर्ग का कोई वर्ण रहता है तो उसे परवर्ती वर्ण का समकक्ष पचम वर्ण लिखना चाहिए। परन्तु लेख-सौकर्य के लिए अशुद्ध होने पर भी पचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार (ˉ) का प्रयोग किया जाता है। जैसे—अङ्कित के स्थान पर अकित, कम्पित के स्थान कपित। इसी प्रकार वाक्य के अन्त मे अन्तिम म् को अशुद्ध होने पर भी अनुस्वार के रूप मे लिखा जाता है। जैसे अहम् के स्थान पर अह। दोनो स्थानो पर उच्चारण मे कोई अन्तर नही है।

११—यदि एक व्यजन के बाद एक या अनेक व्यजन आते है तो उनको सयुक्त वर्ण के रूप मे लिखा जाता है। जैसे—अत्क, कार्त्स्न्यं। इन सयुक्त वर्णो के विषय मे सामान्य नियम यह है कि वर्ण के बाद की सीधी और पडी दोनो लकीरे हटा दी जाती है। केवल अन्तिम वर्ण के बाद ये लकीरे रहेगी। ये सयुक्त वर्ण सामान्यतया सरलता से पहचाने जा सकते है। जो सयुक्त वर्ण कुछ कठिनाई से पहचाने जा सकते हैं उनका विवरण अग्रिम सयुक्त वर्ण-सूची मे दिया गया है।

१२—निम्नलिखित सयुक्त वर्ण विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है—

(१) ज्ञ और क्ष मे सबद्ध अवयव पहचाने नही जा सकते है। जैसे—ज्+ञ=ज्ञ, क्+ष=क्ष।

(२) कुछ स्थानो पर त् के मुख्य अश और क् के गोल अश के लिए सयुक्त वर्णो मे पडी लकीर का प्रयोग किया जाता है। जैसे—त्+त त्त, क्+त=क्त।

(३) श् के बाद कोई व्यजन, उ ऊ या ऋ ॠ स्वर हो तो श् को श्‍ लिखा जाता है। जैसे—श्+च=श्च, श्+उ=शु, श्+ऋ=शृ।

(४) व्यजन के बाद र् आता है तो उसका वर्ण के नीचे दाई से बाई ओर जाने वाली एक छोटी लकीर के द्वारा निर्देश किया जाता है। जैसे—क्+र=क्र द्+र=द्र, ष्+ट्+र=ष्ट्र, न्+त्+र्+य=न्त्र्य। व्यजन या ऋ स्वर के पहले यदि र् होता है तो वह परवर्ती वर्ण के ऊपर ᳚ के रूप मे प्रयोग मे आता

है। जैसे अर्+क=अर्क। वर्+ष्म=वर्ष्म। निर्+ऋति=निर्ऋति। यदि उस वर्ण के ऊपर कोई स्वर-चिह्न है तो यह र् उस स्वर-चिह्न के बाद लगेगा। जैसे—अर्+केन्दु=अर्केन्दु।

संयुक्त वर्ण-सूची (List of Compound Consonants)

१३—क्+क=क्क, क्+ख=क्ख, क्+च=क्च, क्+ण=क्ण, क्+त=क्त, क्+त्+य=क्त्य, क्+त्+र=क्त्र, क+त्+र्+य=क्त्र्य, क्+त्+व=क्त्व, क्+न=क्न, क्+न्+य=क्न्य, क्+म=क्म, क्+य=क्य, क्+र=क्र, क्+र्+य=क्र्य, क्+ल=क्ल, क्+व=क्व, क्+व्+य=क्व्य, क्+ष=क्ष, क्+ष्+म=क्ष्म, क्+ष्+य=क्ष्य, क्+ष्+य=क्ष्य, क्+ष्+व=क्ष्व, ख्+य=ख्य, ख्+र=ख्र, ग्+य=ग्य, ग्+र=ग्र, ग्+र्+य=ग्र्य, घ्+न=घ्न, घ्+न्+य=घ्न्य, घ्+म=घ्म, घ्+य=घ्य, घ्+र=घ्र, ङ्+क=ङ्क, ङ्+क्+त=ङ्क्त, ङ्+क्+त्+य=ङ्क्त्य, ङ्+क्+य=ङ्क्य, ङ्+क्+ष=ङ्क्ष, ङ्+क्+ष्+व=ङ्क्ष्व, ङ्+ख=ङ्ख, ङ्+ख्+य=ङ्ख्य, ङ्+ग=ङ्ग, ङ्+ग्+य=ङ्ग्य, ङ्+घ=ङ्घ, ङ्+घ्+य=ङ्घ्य, ङ्+घ्+र=ङ्घ्र, ङ्+ङ=ङ्ङ, ङ्+न=ङ्न, ङ्+म=ङ्म, ङ्+य=ङ्य।

च्+च=च्च, च्+छ=च्छ, च्+छ्+र=च्छ्र, च्+ञ=च्ञ च्+म=च्म, च्+य=च्य, छ्+य=छ्य, छ्+र=छ्र, ज्+ज=ज्ज, ज्+झ=ज्झ, ज्+ञ=ज्ञ, ज्+ञ्+य=ज्ञ्य, ज्+म=ज्म, ज्+य=ज्य, ज्+र=ज्र, ज्+व=ज्व, ञ्+च=ञ्च, ञ्+च्+म=ञ्च्म, ञ्+च्+य=ञ्च्य, ञ्+छ=ञ्छ, ञ्+ज=ञ्ज, ञ्+ज्+य=ञ्ज्य।

ट्+ट=ट्ट, ट्+य=ट्य, ठ्+य=ठ्य, ठ्+र=ठ्र, ड्+ग=ड्ग, ड्+ग्+य=ड्ग्य, ड्+घ=ड्घ, ड्+घ्+र=ड्घ्र, ड्+म=ड्म, ड्+य==ड्य, ढ्+य=ढ्य, ढ+र=ढ्र, ण्+ट=ण्ट, ण्+ठ=ण्ठ ण्+ड=ण्ड, ण्+ड्+य=ण्ड्य, ण्+ड्+र=ण्ड्र, ण्+ड्+र्+य=ण्ड्र्य, ण्+ढ=ण्ढ, ण्+ण=ण्ण, ण्+य=ण्य, ण्+व=ण्व।

त्+क=त्क, त्+क्+र=त्क्र, त्+त=त्त, त्+त्+य=त्त्य, त्++त्+र=त्त्र, त्+त्+व=त्त्व, त्+थ+त्थ, त्+न=त्न, त्+न्+य

=त्न्य, त्+प=त्प, त्+प्+र=त्प्र, त्+म=त्म, त्+म्+य=त्म्य, त्+य=त्य, त्+र=त्र, त्+र्+य=त्र्य, त्+व=त्व, त्+स=त्स, त्+स+न=त्स्न, त्+स्+न्+य=त्स्न्य, थ्+य=थ्य, द्+ग=द्ग, द्+ग+र=द्ग्र, द्+घ=द्घ, द्+घ+र=द्घ्र, द्+द=द्द, द्+द्+य=द्द्य, द्+ध=द्ध, द्+ध्+य=द्ध्य, द्+न=द्न, द्+ब=द्ब, द्+भ=द्भ, द्+भ्+य=द्भ्य, द्+म=द्म, द्+य=द्य, द्+र+द्र, द्+र्+य=द्र्य, द्+व=द्व, द्+व्+य=द्व्य, ध+न=ध्न, ध्+न्+य=ध्न्य, ध्+म=ध्म, ध्+य=ध्य, ध्+र=ध्र्य, ध्+व=ध्व, न्+त=न्त, न्+त्+य=न्त्य, न्+त्+र=न्त्र, न्+द=न्द, न्+द्+र=न्द्र, न्+ध=न्ध, न्+ध्+र=न्ध्र, न्+न=न्न, न्+प=न्प, न्+प्+र=न्प्र, न्+म=न्म, न्+य=न्य, न्+र=न्र, न्+स=न्स।

प्+त=प्त, प्+त्+य=प्त्य, प्+न=प्न, प्+प=प्प, प्+म=प्म, प्+य=प्य, प्+र=प्र, प्+ल=प्ल, प्+व=प्व, प्+स=प्स, प्+स्+व=प्स्व, ब्+ध=ब्ध, ब्+ज=ब्ज, ब्+द=ब्द, ब्+ध=ब्ध, ब+न=ब्न, ब्+ब=ब्ब, ब्+भ=ब्भ, ब्+भ्+य=ब्भ्य, ब्+य=ब्य ब्+र=ब्र, ब+व=ब्व, भ्+न=भ्न, भ्+य=भ्य, भ्+र=भ्र, भ+व=भ्व, म्+न=म्न, म्+प=म्प, म्+प्+र=म्प्र, म्+ब=म्ब, म्+भ=म्भ, म्+म=म्म, म्+य=म्य, म्+र=म्र, म्+ल=म्ल म्+व=म्व।

य्+य=य्य, म+व=म्व, ल्+क=ल्क, ल्+प=ल्प, ल्+म=ल्म, ल्+य=ल्य, ल्+ल=ल्ल, ल्+व=ल्व, ल्+ह=ल्ह, व्+न=व्न, व्+य=व्य, व्+र=व्र, व्+व=व्व।

श्+च=श्च, श+च्+य=श्च्य, श्+न=श्न, श्+य=श्य, श्+र=श्र, श्+र्+य=श्र्य, श्+ल=श्ल, श्+व=श्व, श्+व्+य=श्व्य, श्+श=श्श, ष+ट=ष्ट, ष्+ट्+य=ष्ट्य, ष्+ट्+र=ष्ट्र, ष्+ट्+र+य=ष्ट्र्य, ष्+ट्+व=ष्ट्व, ष्+ठ=ष्ठ, ष्+ण=ष्ण, ष्+ण्+य=ष्ण्य, ष्+प=ष्प, ष्+प+र=ष्प्र, ष्+म=ष्म, ष्+य=ष्य, ष्+व=ष्व स+क=स्क, स्+ख=स्ख, स्+त=स्त, स्+त्+य=

स्त्य, स्+त्+र=स्त्र, स्+त्+व=स्त्व, स्+थ=स्थ, स्+न=स्न, स्+न्+य=स्न्य, स+प=स्प, स्+फ=स्फ, स्+म=स्म, स्+म्+य=स्म्य, स्+य=स्य, स+र=स्र, स्+व=स्व, स्+स=स्स ।

ह+ण=ह्ण, ह्+न=ह्न, ह्+म=ह्म, ह्+य=ह्य, ह्+र=ह्र, ह्+ल=ह्ल, ह+व=ह्व ।

१४ सस्कृत मे अक ये है —

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ० ।

ये अक अरब वालो ने भारतीयो से लिए और उन्होने इन्हे यूरोप मे प्रचलित किया ।

उच्चारण-सम्बन्धी निर्देश (Pronunciation)

१५—इस विषय मे निम्नलिखित नियमो पर ध्यान दें—

(१) स्वरो का उच्चारण उसी प्रकार किया जाता है जिस प्रकार इटालियन भाषा मे । ह्रस्व अ का उच्चारण अग्रेजी के अल्पश्रुत अ के तुल्य होगा । जैसा But (बट) मे u का उच्चारण है । इसको सस्कृत मे सवृत (मुखद्वार बन्द) कहा जाता है । यह उच्चारण कम से कम ३०० ई० पू० तक प्रचलित था ।

(२) व्यजन वर्णो मे महाप्राण ध्वनि स्पष्टरूप से सुनाई पडती है ।
जैसे—ख=k-h, थ=t-h,
फ=p-h, घ=g-h,
ध=d-h, भ=b-h

(३) कण्ठ्य ङ का उच्चारण उसी प्रकार होना है जैसे—king मे ng का ।

(४) तालव्य च और ज का उच्चारण उसी प्रकार होता है, जैसे—church मे ch का और join मे j का ।

(५) मूर्धन्य ट, ड, ण का उच्चारण अग्रेजी के t, d, n के तुल्य

होता है। इनके उच्चारण मे जिह्वा तालु की ओर अधिक झुकी हुई होगी।

(६) सस्कृत के दन्त्य वर्ण आजकल इण्टर डेण्टल (Inter dental) के तुल्य उच्चरित होते है। इनके उच्चारण मे जिह्वा का अग्र भाग दाँतो के अग्र-भाग को स्पर्श करता है। प्राचीन भारतीय शिक्षा-ग्रथो के समय मे इनका उच्चारण पोस्ट डेण्ट्ल (Postdental) के तुल्य होता था और इनका उच्चारण दाँतो के ऊपरी भाग के स्पर्श से होता था।

(७) दन्त्य स् का उच्चारण Sin के s के तुल्य होता है, मूर्धन्य ष का उच्चारण Shun के Sh के तुल्य होता है और तालव्य श का उच्चारण दोनो के मध्य भाग से होता है और इस ऊष्म ध्वनि का उच्चारण जैसे जर्मन भाषा के Ich (इश्) मे ch का।

(८) भारतवर्ष मे विसर्ग ( ) का प्राय कठोर ह् के तुल्य उच्चारण होता है और इसके साथ ही पूर्ववर्ती स्वर की ध्वनि सलग्न रहती है।

(९) अनुस्वार पूर्णतया नासिक्य ध्वनि है। इसमे विराम के कारण कोई अन्तर नही आता है। इसका उच्चारण फ्रेंच भाषा के Bon (बों) मे n के तुल्य है।

(१०) ईसवीय सन् के प्रारम्भ से सस्कृत का उच्चारण बलाघातयुक्त उदात्त (Stress Accent) के साथ होता आ रहा है, जैसा कि लेटिन भाषा मे। प्राचीन काल मे यह उदात्त सगीतात्मक (Musical Accent) था। इस प्रकार यह बलाघात उपान्त्य दीर्घ स्वर पर होता है। जैसे—(कालिदास), जब उपान्त्य ह्रस्व होता है तब उससे पूर्ववर्त्ती दीर्घ स्वर पर बलाघात होता है। जैसे—हिमालय। यदि अन्त्य की ओर से तीन ह्रस्व होते है तो उनसे पूर्ववर्ती चतुर्थ दीर्घ स्वर पर बलाघात होता है। जैसे—कारयति।

———

अध्याय २

सन्धि-नियम (Rules of Sandhi)

१६—सस्कृत भाषा मे प्रत्येक वाक्य एक अविच्छिन्न शृखला माना जाता है। सन्धि का अथ है—जोडना। इसके द्वारा शब्दो के अन्तिम और प्रारम्भिक वर्णों का एकीकरण किया जाता है। सन्धि-नियमो के दो आधार है —**प्रकृतिभाव का अभाव, २—समीकरण का प्रयोग।**

सन्धि के अभाव के द्वारा ही कतिपय स्थानो पर विराम का बोध होता है, जबकि अन्य भाषाओ मे इसके लिए विराम-चिह्नो का प्रयोग किया जाता है।

यद्यपि **पदान्त सन्धि** और **पदान्तर्गत सन्धि** दोनो मे ही सन्धि-नियम समान रूप से लगते है, तथापि भ्रम-निवारणार्थ दोनो का अन्तर समझ लेना उचित है। पदान्त सन्धि मे पद के अन्तिम वर्ण और दूसरे पद के प्रारम्भिक वर्ण मे सधि होती है। पदान्तगत-सन्धि मे धातु और शब्द के बाद कृत्, तद्धित या अन्य सुप् और तिङ् प्रत्यय लगने पर जो सन्धि-नियम लगते है, उन्हे पदान्त-गत सन्धि कहते है।

(क) पदान्त सधि के नियम, कुछ अपवादो को छोडकर, समस्त पदो मे और भ्याम्, भिस्, भ्यस्, सु तथा य से प्रारम्भ होने-वाले तद्धित प्रत्ययो को छोडकर अन्य वर्णों से प्रारम्भ होने वाले तद्धित प्रत्ययो से पूव शब्द के अतिम वर्ण मे लगते है।

क—पदान्त सन्धि (External Sandhi)

स्वरो का वर्गीकरण (Classification of Vowels)

१७—स्वर निम्नलिखित तीन भागो मे विभक्त है—

अ—१	**सामान्य स्वर**	**अ आ,**	**इ ई,**	**उ ऊ,**	**ऋ ॠ,**	**लृ**
२	**गुण स्वर**	**अ**	**ए**	**ओ**	**अर् अल्**	
३	**वृद्धि स्वर**	**आ**	**ऐ**	**औ**	**आर्**[1]	

---

1 लृ का वृद्धिस्वर आल् होगा, किन्तु इसका प्रयोग नही मिलता है।

(क) गुण स्वरो मे सामान्य स्वरो के साथ पहले अ की ध्वनि आती है (यह अ ध्वनि परिवर्तित नही होती है), वृद्धि स्वरो मे यह अ स्वर दीघ आ का रूप धारण करता है, इस प्रकार गुण स्वर मे वृद्धि अर्थात् अ का आ हो जाता है ।[1]

आ—(१) निम्नलिखित स्वर अन्तस्थ के रूप मे परिवर्तित होते है—
इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, तथा मिश्रित स्वर (जिनका उत्तरार्द्ध इ या उ है) ।
(२) जो अन्तस्थ के रूप मे परिवर्तित नही होते है —अ, आ ।

स्वर-सधि (Combination of final and Initial vowels)

१८—(अक सवर्णे दीघ) **सवर्ण दीर्घ-सन्धि**—यदि पद के अन्त मे ह्रस्व या दीघ सामान्य स्वर होते है और बाद मे भी समान स्वर होगा तो दोनो के स्थान पर दीघ स्वर हो जाएगा । जैसे—सा+अपि+ईक्षते= सापीक्षते, किन्तु+उदेति=किंतूदेति, कर्तृ+ऋजु=कर्तॄजु ।

१९—अ और आ—

(क) (आद्गुण) **गुण-सन्धि**—अ और आ के बाद सामान्य स्वर होगे तो दोनो के स्थान पर गुण स्वर हो जाएगा । जैसे—तव+इन्द्र=तवेन्द्र, सा +उक्त्वा=सोक्त्वा, सा+ऋद्धि=सर्द्धि ।

(ख) (वृद्धिरेचि) **वृद्धि-सन्धि**—अ और आ के बाद ए या ओ होगा तो क्रमश वृद्धि-स्वर ऐ, औ होगे । जैसे—तव+एव=तवैव, सा+ओषधि= सौषधि ।

(ग) अ और आ के बाद ऐ या औ स्वर होगा तो ऐ औ ही रहेग । जैसे —सा+औत्सुक्यवती=सौत्सुक्यवती ।

---

1 तुलनात्मक भाषाविज्ञान प्रकट करता है कि इस अपश्रुति मे गुण-स्वर सामान्य स्थिति का बोध कराते हैं, यदि इनमे उदात्त स्वर का अभाव होता है तो वे सामान्य स्वर का रूप धारण करते हैं । वृद्धि स्वर गुण स्वरो का ही परिवर्धित रूप है । य, व, र (ये गुण-स्वरो के समकक्ष हैं) को ही सप्रसारण होकर क्रमश इ, उ, ऋ हो जाते हैं ।

२०—(इको यणचि) ह्रस्व और दीर्घ इ, ई, उ, ऊ, और ऋ के बाद असवर्ण (असमान) स्वर होगा तो इनको क्रमश य्, व्, र् हो जाएँगे। जैसे—दधि+अत्र=दध्यत्र, कर्तृ+उत=कर्त्रुत, मधु+इव=मध्विव, नदी+अर्थम्=नद्यर्थम्।

२१—गुण स्वर ए और ओ के साथ निम्नलिखित सधियाँ होती है—

(क) यदि बाद मे अ होगा तो ए और ओ पूर्ववत् रहेगे तथा बाद के अ का लोप होकर अवग्रह (ऽ) चिह्न लगेगा। जैसे—ते+अपि=तेऽपि, सो+अपि=सोऽपि।

(ख) ए और ओ के बाद अन्य कोई भी सामान्य या मिश्रित स्वर होगा तो ए और ओ का अ शेष रहेगा। ए के स्थान पर अय् और ओ के स्थान पर अव करके य् व् का लोप होने पर अ शेष रहता है। ऐसे स्थानो पर कोई सधिकार्य नही होगा। जैसे—सखे+इह=सख इह, प्रभो+एहि=प्रभ एहि।

२२—वृद्धि स्वर ऐ के स्थान पर आय् होकर य्-लोप होने से आ शेष रहता है और औ के स्थान पर आव् शेष रहता है, बाद मे कोई भी स्वर हो तो। आव् के व् का लोप नही होता है। जैसे—श्रियै+अर्थ=श्रिया अर्थ, तौ+इति=ताविति।

(क) पूर्वोक्त तीन स्थानो पर (२१ ख और २२) मे य् और व का लोप होने से (गौण) प्रकृति-भाव होता है।

स्वर-सधि के अपवाद नियम (Irregular Vowel Sandhi)

२३—निम्नलिखित स्थानो पर गुण के स्थान पर वृद्धि एकादेश होगा—

(क) उपसर्ग के अन्तिम अ या आ के बाद धातु का ऋ हो तो। जैसे–उप+ऋषति—उपार्षति, आ+ऋच्छति=आर्च्छति।

(ख) प्र उपसर्ग के बाद क्त-प्रत्ययान्त ऊढ (वह्+क्त) हो तो। प्र+ऊढ—प्रौढ (उठाया हुआ, उन्नत किया हुआ)।

(ग) अ (अट्) के बाद धातु का प्रारम्भिक स्वर हो तो। जैसे—अ+उनत्=औनत् (उसने गीला किया)। (गीला करना अर्थवाली उद् धातु का यह रूप है)।

स्वर-संधि के अभाव वाले स्थल (प्रकृति-भाव)
(Absence of vowel Sandhi)

२४—विस्मयसूचक निपातों (Interjectional Particles) में यदि स्वर हो या उनका अन्तिम अक्षर स्वर हो तो। जैसे—आ, इ, उ, हे, अहो के साथ संधि नहीं होती है। जैसे-इ इन्द्र (हे इन्द्र), आ एवम् (क्या यह ऐसा ही है ?), अहो अपेहि (अरे दूर हो)।

२५—धातु-रूप और शब्द-रूपों के द्वि-वचन के ई, ऊ, ए के बाद कोई स्वर हो तो। (द्वि-वचन के ए के बाद अ का लोप नहीं होता है)। ऐसे स्थलों को प्रगृह्य (पृथक्) कहते हैं। इसी प्रकार अदस् शब्द के प्र० बहु० अमी के साथ भी संधि नहीं होती है। जैसे—कवी इमौ (ये दो कवि), साधू इमौ (ये दो साधु), विद्ये इमे (ये दो विद्याएँ), याचेते अर्थम् (ये दो धन मांगते हैं), अमी अश्वा (ये घोड़े)।

२६—रामायण और महाभारत, स्मृति ग्रन्थ और अन्य ग्रन्थ जो साहित्यिक संस्कृत के ग्रन्थ नहीं माने जाते हैं, उनमें श्लोक के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में प्रथम और द्वितीय चरण (पाद) में इन संधि-नियमों का प्रयोग नहीं हुआ है।

हल् (व्यंजन) संधि
(Combination of final and Initial Consonants)

२७—किसी भी शब्द के अन्तिम वर्ण जब निम्नलिखित आठ संधि योग्य वर्णों के रूप में होते हैं, तब हल्-संधि के नियम लगते हैं। ये वर्ण हैं—क्, ट्, त्, प्, ङ्, न्, म् और (विसर्ग)। सारणी (नियम ६) में जो ३४ व्यंजन दिये हुए हैं वे निम्नलिखित रूप से आठ वर्णों के रूप में शेष रहते हैं—

अन्तिम-वर्ण घोष और अल्पप्राण रहेगा, तालव्य-प्राण (श-सहित) और ह् के स्थान पर क् या ट् (ञ को ङ्) होते हैं, ष् को ट्, स् और र् को विसर्ग, ण्, य्, ल् और व् ये शब्द के अन्त में नहीं मिलते हैं। उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि वर्ग के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ तथा पूरा चवर्ग पूर्णतया लुप्त रहता है और उनके स्थान पर चार घोष वर्ण क्, ट्, त्, प् तथा नासिक्य-वर्ण ङ्, न्, म् और षष्ठ तथा सप्तम कोष्ठ में से केवल विसर्ग शेष रहता है।

२८—शब्द के अन्त मे एक से अधिक व्यजन नही रह सकते है। केवल शब्द या धातु के र् के बाद क् ट्, त्, प शेष रह सकते है, यदि प्रत्यय के क्, त् आदि होगे तो उनका लोप हो जाएगा। अन्य अन्तिम सयुक्त वर्णो मे से उपर्युक्त आठ वर्णो के रूप मे ही केवल एक वर्ण अन्त मे शेष रहेगा। अत भवन्त् का भवन् (होता हुआ) शेष रहता है, अबिभर्त् का अबिभ (उसने ढोया) शेष रहेगा (प्रत्यय होने से त् का लोप हुआ है और र् को विसर्ग हुआ है), किन्तु ऊर्क् (बल)(यहाँ पर ज के स्थान पर क् है), अमार्ट् (उसने धोया) में मृज धातु के ज् के स्थान पर ट् है)।

व्यजनो का वर्गीकरण (Classification of Consonants)

२९—**व्यजनो के उच्चारण-स्थान।** (Place or organ of articulation)

(१) कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ और नासिका ये वर्णो के उच्चारण-स्थान कहे जाते है।

(२) उपर्युक्त चार स्थानो अर्थात् कण्ठ, तालु, मूर्धा और दन्त के साथ जिह्वा का सयोग होने से कण्ठ्य, तालव्य, मूर्धन्य और दन्त्य वर्ण उत्पन्न होते है। दोनो ओष्ठो के सयोग से ओष्ठ्य वर्ण उत्पन्न होते है।

(३) पाचो वर्गो के नासिक्य वर्णों के उच्चारण मे कुछ श्वास नासिका के मार्ग से निकलता है और जिह्वा तथा ओष्ठ अपने वर्गो के अनुसार उच्चारण-स्थानो को स्पर्श करते है। वास्तविक अनुस्वार केवल नासिका के द्वारा बोला जाता है, किन्तु अनुस्वार से पूर्व जो स्वर होता है, उसके लिए जिह्वा अपने विशिष्ट स्थान को स्पर्श करती है।

(४) अन्तस्थ य, र, ल, व क्रमश तालव्य, मूर्धन्य, दन्त्य और ओष्ठ्य हैं। प्राचीन भारतीय वैयाकरणो के अनुसार इनका उच्चारण अपने विभिन्न स्थानो के साथ जिह्वा के अपूर्ण सयोग के द्वारा होता है। र और ल प्राय एक-दूसरे से बदले जाते हैं और ल र से निकला है।

(५) ऊष्म श, ष, स ये कठोर घष वर्ण है। इनका उच्चारण क्रमश तालु, मूर्धा और दन्त के साथ जिह्वा के अपूरण सयोग के द्वारा होता है। सस्कृत मे कोमल ऊष्म वरण ज़ (अंग्रेजी z और फ्रेंच j) का समकक्ष कोई वरण प्राप्त नही होता है।

(६) ह और विसग ( ) ये कमश कोमल और कठोर घष वर्ण है। इनका उच्चारण जिह्वा का विभिन्न स्थानो से साक्षात् सयोग हुए बिना होता है और उनके उच्चारण मे पूर्ववर्ती या परवर्ती स्वर के अनुसार जिह्वा विभिन्न स्थानो का स्पश करती है। ह यह घ (g-h), झ (j-h), ध (d-h), भ (b-h) के उत्तर भाग के समकक्ष है और यह वस्तुत उत्तर भाग से ही निकली हुई ध्वनि है। यह कोमल वर्णों से पूव ही प्राप्त होती है। विसर्ग घोष महाप्राण वरण ख (k-h) आदि के उत्तरार्द्ध के समकक्ष है। यह स्वरो के बाद तथा कतिपय कठोर व्यजनो के पूव प्राप्त होता है। भारतवर्ष मे विसग का उच्चारण प्राय कठोर ह् के तुल्य होता है और साथ ही इसके बाद पूववर्ती स्वर की कुछ ध्वनि सुनाई पडती है। जैसे—क मे ह् के बाद ह्रस्व अ की ध्वनि रहती है। इसी प्रकार कवि मे ह् के बाद इ और ऋतु मे ह् के बाद उ की ध्वनि रहती है।

३०—व्यजनो की विशेषताएँ (Quality of Consonants)

व्यजनो के निम्नलिखित भेद है

(१) कठोर (श्वास, अघोष) ये वर्ण नियम ६ पर दी गई सारिणी मे १, २ और ७ कोष्ठक मे दिये गये है। अथवा कोमल वरण (नाद, घोष)। शेष सभी वरण जो कोष्ठक के ३, ४, ५, ६, मे हैं तथा अनुस्वार (साथ ही सभी सामान्य और मिश्रित स्वर)।

(२) महाप्राण वर्ण, ये २, ४, ७ कोष्ठक मे है तथा ह् वरण, अथवा अल्पप्राण वर्ण, शेष सभी वरण अल्पप्राण है। अत च् का क् मे परिवतन स्थान-परिवर्तन कहा जाएगा (तालव्य से कण्ठ्य), और च् का ज् मे परिवर्तन यह गुण-परिवर्तन है

(कठोर से कोमल), किन्तु च् को ग् (कठोर तालव्य से कोमल कण्ठ्य) और त् जो ज् (कठोर दन्त्य से कोमल तालव्य) मे दोनो बाते है। स्थान और गुण दोनो का परिवतन है।

३१—यह स्मरण रखना चाहिए कि नियम २७ मे वर्णित ८ वर्णों के रूप मे जब अन्तिम व्यजन परिवर्तित हो जाएँगे, तभी हल्-सधि के नियम लगेगे, अन्यथा नही। तत्पश्चात् इन वर्णों मे जो परिवर्तन होगा उसमे निवचन को आधार नही माना जाएगा (विसर्ग मे कुछ स्थानो पर निर्वचन को आधार माना जाता है)। इन अन्तिम अक्षरो मे प्राय निम्नलिखित ६ वर्ण ही प्राप्त होते हैं—क्, त्, प्, न्, म् और विसर्ग। अन्तिम वर्णों के स्थान पर जो परिवर्तन होते है उनको सक्षेप मे दो प्रकार का कहा जा सकता है १—गुण-परिवर्तन, २—स्थान-परिवतन।

१—व्यजनो मे गुण-परिवर्तन (Changes of Quality)

३२—यदि अन्तिम वण के बाद आगामी पद का प्रथम वर्ण कोमल वर्ण होगा तो अन्तिम वण को कोमल वर्ण हो जायगा और कठोर वर्ण से पूर्ववर्ती अन्तिम वर्ण को कठोर वर्ण होगा।

(क) यह नियम अन्तिम पाच कठोर वर्णों (क्, ट्, त्, प् और विसर्ग) मे ही लगता है। नियम ६ और ३६ मे वर्णित नासिक्य वर्णों मे गुण-परिवर्तन नही होता है, किन्तु उनमे से दो न् और म् मे कठोर ध्वनि त् और विसर्ग (३७) के तुल्य स्थान-परिवतन होता है।

(ख) अत अन्तिम क्, ट्, त्, प् के स्थान पर नाद वर्ण ग्, ड्, द्, ब् क्रमश हो जाते है। जैसे—सम्यक्+उक्तम्=सम्यगुक्तम् (ठीक कहा), दिक्+गज =दिग्गज (दिग्गज), परिव्राट्+अयम्=परिव्राडयम् (यह एक सन्यासी है), परिव्राट्+गच्छति=परिव्राड्गच्छति (सन्यासी जाता है), सरित्+अत्र= सरिदत्र (नदी यहाँ है), महत्+धनु =महद्धनु (बडा धनुष), ककुप्+अत्र =ककुबत्र (यहा दिशा), अप्+ज =अब्ज (कमल, जल मे होने वाला)।

३३—क्, ट्, त्, प् के बाद न् और म् से प्रारम्भ होने वाला कोई शब्द होगा तो इनको क्रमश ङ, ण्, न्, म् ये नासिक्य वर्ण हो जाएँगे। यद्यपि यह

नियम वैकल्पिक है, परन्तु व्यवहार मे यह अनिवाय रूप से लगता है। जैसे—दिक+नाग=दिग्नाग, दिङनाग (दिग्गज) जगत्+नाथ=जगद्-नाथ, जगन्नाथ (ससार के स्वामी), षट्+मास=षण्मास (छ महीने), प्राक्+मुख=प्राङमुख (पूर्व की ओर मुँह वाला)।

३४—अन्तिम त् को ल् हो जाता है बाद मे ल् हो तो। त् को द् होकर यह ल् होता है। जैसे—तत्+लब्धम्=तल्लब्धम् (वह पाया)।

३५—नासिक्य वर्णो का समकक्ष कोई कठोर वर्ण नही है, अत बाद मे कठोर वण होने पर उनमे कोई गुण-परिवतन नही होता है, किन्तु कतिपय स्थानो पर न् के बाद एक ऊष्म वर्ण तथा न् या ङ् के बाद कोई कठोर वण दोनो के बीच मे जोड दिया जाता है। मौलिक ञ् और ण् अन्तिम वर्ण के रूप मे कभी प्राप्त नही होते है (नियम २७)। कण्ठ्य ङ् का प्रयोग अन्त मे बहुत कम मिलता है। उसमे परिवतन नही होता है, किन्तु उसके बाद श्, ष्, स् ऊष्म वण होगे तो बीच मे क् और जोड दिया जाता है। जैसे—प्राङ्+शेते=प्राङ्क्शेते (वह पूर्व की ओर सोता है)। सभी व्यजनो से पूर्व अन्तिम म् को अनुस्वार हो जाता है (नियम ४२)। अधिकाश वर्णो से पूर्व न् मे कोई परिवतन नही होता है, किन्तु बाद मे कोई भी चवग, मूर्धन्य (ष् को छोडकर), कठोर दन्त्य त्, थ् और अन्त स्थ ल् होगा तो न् मे परिवतन होगा। न् के परिवतनो की विस्तृत व्याख्या अपेक्षित है।

३६—(अ) निम्नलिखित स्थानो पर न् (दन्त्य नासिक्य) मे कोई परि-वतन नही होता है—

(१) स्वरो से पूव (देखे नियम ५२)। जैसे—तान् उवाच (उसने उनसे कहा)।

(२) सभी कठ्य, क्, ख्, ग्, घ् तथा ह् से पूव। जैसे—बुद्धिमान् कोऽपि (एक बुद्धिमान्), तान् हत्वा (उनको मार कर)।

(३) सभी पवर्ग, प्, फ्, ब्, भ्, म् से पूव। जैसे—एतान् पाशान् (इन बेडियो को), बान्धवान् मम (मेरे सम्बन्धियो को)।

(४) कोमल दन्त्य वर्ण द्, ध्, न् से पहले। जैसे—मत्स्यान् धत्त

(मछलियो को रखो), राजपुत्रान् नयति (वह राजकुमारो को ले जाता है)।

(५) अन्त स्थ य्, र्, व् से पूव। जैसे—हसान् रक्षति (वह हसो की रक्षा करता है)।

(६) मूधन्य ष् और दन्त्य स् से पूव। स् से पूव त् का विकल्प से आगम होता है। जैसे—तान् षट् (उन ६ को), तान् सहते या तान्त्सहते (वह उनको सहन करता है)।

(आ) निम्नलिखित स्थानो पर न् मे परिवर्तन होता है।

(१) कठोर तालव्य च्, छ्, मूधन्य ट्, ठ्, और दन्त्य त्, थ् से पूव न् के स्थान पर अनुस्वार के साथ क्रमश तालव्य श्, मूधन्य ष् और दन्त्य स् हो जाते है।[1] जैसे—हसन्+चकार= हसश्चकार (उसने हँसते हुए यह किया), पाशान्+छेत्तु =पाशाँश्छेत्तुम् (बन्धनो को काटने के लिए), चलन्+टिट्टिभ =चलष्टिट्टिभ (चलती हुई टिटिहरी), पतन्+तरु = पतस्तरु (गिरता हुआ वृक्ष)।

(२) कोमल तालव्य ज् झ् और श् से पूववर्ती न् को ञ् होता है (नियम ४० देखे)।

(३) मूर्धन्य ड् और ढ् से पहले न् को ण् होता है (नियम ४१ देखे)।

(४) अन्त स्थ ल् से पहले न् को ल् होता है। जैसे—महान्+ लाभ =महाँल्लाभ ।

२—स्थान-परिवर्तन (changes of Place)

३७—निम्नलिखित ४ अन्तिम व्यजनो मे ही परिवर्तन होता है—त्, न्, म्, और विसर्ग।

---

१ यह आगम प्रतीत होने वाला ऊष्म वण वस्तुत भारत-यूरोपीय स् का ही अवशिष्ट रूप है, जोकि पुल्लिग द्वितीया बहुवचन (-न्स्) और प्रथमा एकवचन मे (-न्स, नियम ८८, ८९ देखे) मिलता है। प्राचीनतम वैदिक काल मे यह ऊष्मवण वही पाया जाता है, जहाँ पर ऐतिहासिक दृष्टि से युक्तिसगत है, किन्तु सस्कृत मे कठोर तालव्य, मूधन्य और दन्त्य वर्णों से पूर्ववर्ती न् के साथ प्रत्येक स्थान पर यह ऊष्म वण सधि-स्थलो पर प्रचलित है।

(क) दन्त्य के बाद चवग होगा तो दन्त्य को चवर्ग होगा और बाद मे मूर्धन्य होगा तो दन्त्य को मूधन्य होगा ।

(ख) विसग और कुछ अश तक म् परवर्ती व्यजन के स्थानो के अनुकूल हो जाते है ।

१—अन्तिम त् (final त्)

३८—अन्तिम त् को च् या ज् हो जाता है, बाद मे तालव्य-वर्ण (च्, छ्, ज्, झ्, श्) हो तो । जैसे—तत्+च=तच्च (और वह), तत्+छिनत्ति=तच्छिनत्ति (वह उस वस्तु को काटता है), तत्+जायते=तज्जायते (वह उत्पन्न होता है), तत्+शृणोति=तच्शृणोति, किन्तु व्यवहार मे तच्छृणोति[1] (वह उसको सुनता है) रूप होता है ।

३९—अन्तिम त् को मूधन्य वर्ण ड् या ढ् हो जाते है बाद मे ट्, ठ्, ड्, ढ् हो तो । बाद मे ष् हो तो नही । जैसे—एतत्+ठक्कुर=एतट्ठक्कुर (उसकी वह मूर्ति), तत्+डयते=तड्डयते (वह उडता है), तत्+ढौकते=तड्ढौकते (वह पहुँचता) है ।

२—अन्तिम न् (final न्)

४०—अन्तिम न् के बाद ज्, झ् और श्[2] होगे तो न् को ञ् हो जाता है । जैसे—तान्+जयति=ताञ्जयति (वह उनको जीतता है), तान्+शार्दूलान्=ताञ्शार्दूलान्, ताञ्छार्दूलान् (उन चीतो को) ।

४१—अन्तिम न् को ण् हो जाता है बादमे ड् या ढ्[3] हो तो । बाद मे ष् होगा तो नही । जैसे—महान्+डमर महाण्डमर (बडा हल्ला) ।

३—अन्तिम म् (final म्)

४२ (अ)—बाद मे कोई स्वर होगा तो अन्तिम म् मे कोई परिवतन नही होगा । जैसे—किम्+अत्र=किमत्र (यहा क्या है ?) ।

(आ) अन्तिम म् को अनुस्वार हो जाता है बाद मे कोई व्यजन हो तो ।

१ बाद मे अन्त स्थ, ऊष्म और ह् होगे तो म् को अनुस्वार अवश्य होगा । जैसे—तम्+वेद=त वेद (मैं उसको जानता हूँ), करु-

---

१ यहाँ पर प्रारम्भिक श् को छ हो जाता है (देखो नियम ५३) ।

२ बाद मे च्, छ् हो तो न् के स्थान-परिवतन के लिए देखो नियम ३६ आ १ ।

३ ट, ठ् और ष् से पहले न् के परिबतन के लिए देखो नियम ३६ अ ६, आ १ ।

णम्+रोदिति=करुण रोदिति (वह करुण रोदन करता है), मोक्षम्+सेवेत=मोक्ष सेवेत (मोक्ष की सेवा करनी चाहिए), मधुरम्+हसति=मधुर हसति (वह मधुर ढग मे हँसता है)।

२ क से म[1] तक कोई वर्ण बाद मे हो तो म् को विकल्प से अनुस्वार होता है और उस अनुस्वार को आगामी वर्ण के अनुसार उसी वर्ग का अन्तिम अक्षर (पचम वर्ण)[2] हो जाता है —(यह परसवर्ण का कार्य यूरोपीय सस्करणो मे प्राय नही किया गया है)। जैसे-किम्+करोषि=किंकरोषि (किङ्करोषि) (क्या कर रहे हो?), शत्रुम्+जहि=शत्रुजहि (शत्रुञ्जहि) (शत्रु को मारो), किम्+फलम्=कि फलम् (किम्फलम्) (क्या लाभ?), गुरुम्+नमति=गुरु नमति (गुरुन्नमति) (गुरु को नमस्कार करता है), शास्त्रम् मीमासते=शास्त्र मीमासते (या शास्त्रम्मीमासते) (वह शास्त्र पढता है), (क) म् के स्थान पर परसवर्ण से जो रूप बनता है, वह निम्नलिखित स्थानो पर निर्दिष्ट कार्य करने पर भी वही रूप बनेगा, अन्तिम न् के बाद ज्, झ् हो (नियम ४०), ड् और ढ् हो (४१) और न् हो, तथा अन्तिम त् के बाद न् हो (३३)। इस प्रकार 'कान्तान्न' (=कान्तान्+न, कान्तात्+न, कान्ताम्+न) मे कान्तान् पुल्लिग द्वितीया बहुवचन हो सकता है (३६ अ ४), कान्त का पुल्लिग पचमी एकवचन कान्तात् (३३) और स्त्रीलिंग द्वितीया एकवचन कान्ताम् (४२ आ २) हो सकता है। इन तीनो अवस्थाओ मे 'कान्तान्न' ही बनेगा।

४३—पदान्त मे कठोर स् और उसके स्थानीय कोमल र् को विसर्ग हो जाता है—

१ यदि कठोर तालव्य, मूर्धन्य या दन्त्य (च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्) वर्ण बाद मे हो तो विसर्ग के स्थान पर परवर्ती वर्ण के

---

१ प्रारम्भिक ङ्, ञ, ण् नही मिलते हैं।

२ वैदिक भाषा मे यह परसवर्ण सामान्यतया प्राप्त होता है।

अनुसार ऊष्म वर्ण (श्, ष् स्) होगा। जैसे—पूर्ण +चन्द्र =पूर्णश्चन्द्र (पूर्ण चन्द्रमा), नद्या +तीरम्=नद्यास्तीरम् (नदी का किनारा)।

२ विसर्ग के बाद कठोर कण्ठ्य या ओष्ठ्य (क्, ख्, प् फ्) वर्ण होगा तो विसर्ग को विसर्ग ही रहेगा।[1] जैसे—तत काम (तब कामदेव), नद्या पारम् (नदी के पार)।

३ विसर्ग के बाद ऊष्म वर्ण होगा तो विसर्ग को विसर्ग ही रहेगा या उसको परसवर्ण हो जाएगा।[2] जैसे—सुप्त शिशु, सुप्त-श्शिशु (बालक सोया है), प्रथम सर्ग, प्रथमस्सर्ग (पहला सर्ग या अध्याय)।

४४—अ या आ को छोडकर किसी स्वर के बाद विसर्ग होगा और उसके बाद कोई कोमल वर्ण (व्यंजन या स्वर) होगा तो विसर्ग को र् हो जाएगा। जैसे—कवि +अयम्=कविरयम् (यह कवि), गौ +गच्छति - गौर्गच्छति (गाय जाती है), वायु +वाति=वायुर्वाति (हवा चलती है)।

४५—(१) अन्तिम वर्ण आ के विसर्ग का लोप हो जाता है, यदि बाद मे कोई स्वर या कोमल व्यंजन हो तो। जैसे—अश्वा +अमी=अश्वा अमी (वे घोडे), आगता +ऋषय =आगता ऋषय (ऋषि आये), हता +गजा =हता गजा (हाथी मरे)। मा +भि =माभि, मास् (चन्द्रमा) शब्द का तृतीया बहुवचन मे यह रूप है।

(२) (क)—अन्तिम वर्ण अ के विसर्ग का लोप हो जाता है बाद मे अ के अतिरिक्त कोई स्वर हो तो। जैसे—कुत +आगत = कुत आगत (कहाँ से आये ?), कः+एष =क एष (यह कौन है ?), क ऋषि =क ऋषि (कौन ऋषि है ?)।

(ख) अन्तिम अ के बाद कोमल व्यंजन और अ होगा तो अ को ओ

१ देखो नियम ३६ अ/२, ३, आ १ मे कठोर स्पर्श वर्णों से पूर्व न् को होने वाले कार्य।

२ यह परसवर्ण का कार्य वस्तुत मूल संधि के रूप मे था और प्राचीन वैदिक शिक्षाकार इसको आवश्यक मानते हैं।

हो जायेगा और उस ओ के बाद अ का लोप हो जायेगा (देखो नियम २१ क)। जैसे—आनीत + दीप = आनीतो दीप (दीपक लाया गया)। मन + भि = मनोभि, मनस् (मन) शब्द का तृतीया बहुवचन मे यह रूप है। नर + अयम् = नरोऽयम् (यह आदमी)।

४६—कुछ स्थानो पर जहाँ व्युत्पत्ति के आधार पर र् के स्थान पर विसर्ग है, ऐसे अन्तिम अ और आ के विसर्ग का लोप नियम ४५ के अनुसार नही होता है। अपितु सामान्य नियम ४४ के अनुसार अ का अर् और आ का आर् शेष रहेगा।[1] जैसे—पुन + अपि पुनरपि (फिर भी), भ्रात + देहि = भ्रातर्देहि (हे भाई, दो), द्वा + एषा = द्वारेषा (यह द्वार)।

४७—र् के बाद र् होगा तो पहले र् का लोप हो जाएगा और उससे पूववर्ती ह्रस्व स्वर को दीघ हो जाएगा। जैसे—विधु + राजते = विधू राजते (चन्द्रमा शोभित होता है), पुन + रोगी = पुना रोगी (फिर बीमार)।

४८—स (वह) और एष (यह) (नियम ११० क) के विसग का सर्वत्र लोप हो जाता है, केवल वाक्य के अन्त मे यह विसग शेष रहेगा। यदि बाद मे अ होगा तो स को सो और एष को एषो हो जायेगा (नियम ४५ का २ ख)। जैसे—स + ददाति = स ददाति (वह देता है), स + इन्द्र = स इन्द्र (वह इन्द्र), किन्तु स + अभवत् = सोऽभवत् (वह था)। मृत + स (वह मरा) मे विसग का लोप नही होता है।

४९—भो के विसग का लोप हो जाता है, बाद मे कोई स्वर या कोमल व्यजन हो तो। यह भो अव्यय भवत् (आप) शब्द का सम्बोधन मे एक अनियमित सक्षिप्त रूप है, यह भवत् के भव से भो बना है। इसका विस्मय-सूचक के रूप मे प्रयोग होता था। जैसे—भो + ईशान = भो ईशान (हे ईश्वर), भो + देवा = भो देवा (हे देवो), किन्तु भो + छेत्त = भोश्छेत्त (हे काटने वाले) मे विसर्ग का लोप नही होगा।

---

१ ऐसे शब्द हैं—पुनर् (फिर), प्रातर् (प्रात काल), अन्तर् (अन्दर), स्वर् (स्वग), अहर् (दिन), द्वार् (द्वार), वार् (जल)। ऋकारात शब्दो का सम्बोधन मे एक वचन रूप, जैसे पितर् (पिता) (नियम १०१), और ऋ अन्तवाली धातुओ के कुछ रूप, जैसे—अजागर् (जागा) जागृ धातु का लङ् प्र० और म० एक०।

(क) भगवन् शब्द के सम्बोधन भगव का सक्षिप्त रूप भगो (हे आदरणीय) है। उसके साथ भी उपर्युक्त नियम लगेगा।

५०—जिन शब्दो के अन्त मे मूल रूप मे र् है, उनके र् को र् ही रहता है, बाद मे सप्तमी बहु० का सु हो तो। जैसे—वार्+सु+ =वार्षु (जल मे)। (क) अहर् (नियम ६१ का २ देखे) और स्वर् (स्वगवाचक अव्यय) के र् को र् ही रहता है, समास मे उत्तरपद मे पति शब्द हो तो। जैसे—अहर्पति (दिन का स्वामी) स्वपति (स्वर्ग का स्वामी)।

व्यजनो का द्वित्व होना (Doubling of Consonants)

५१—स्वरो के बाद शब्द का प्रथम वर्ण छ् होगा तो उसको द्वित्व हो जाता है। ह्रस्व स्वर और आ तथा मा निपात के बाद यह द्वित्व अवश्य होता है, अन्यत्र विकल्प से। जैसे—तव+छाया=तवच्छाया (तेरी छाया), आ+छादयति=आच्छादयति (वह ढकता है), मा+छिदत्=माच्छिदत् (वह न काटे), किन्तु बदरीछाया, बदरीच्छाया (बेर की छाया) मे विकल्प से द्वित्व होता है।

(क) एक शब्द के अन्दर प्रत्येक स्वर के बाद छ् को द्वित्व होता है। जैसे—इच्छति (वह चाहता है), म्लेच्छ (म्लेच्छ)।

५२—ङ् और न् से पहले कोई ह्रस्व स्वर हो और बाद मे कोई भी स्वर हो तो ङ् और न् को द्वित्व हो जाता है। जैसे—प्रत्यङ्+आस्ते=प्रत्यङ्ङास्ते(वह पश्चिम की ओर मुँह करके बैठता है), धावन्+अश्व = धावन्नश्व (दौडता हुआ घोडा)। किन्तु कवीन्+आह्वयस्व (कवियो को बुलाओ) मे दीर्घ स्वर पहले होने से न् को द्वित्व नही होगा।

प्रथम वर्ण का महाप्राण होना (Initial Aspiration)

५३—च् (नियम ३८) और ञ् (नियम ४०) के बाद शब्द का प्रारभिक श् हो तो उसे छ् हो जाता है, यदि उस श् के बाद कोई कठोर व्यजन न हो तो। यह नियम वैकल्पिक है, परन्तु व्यवहार मे नियमित रूप से लगता है। जैसे—तच्+श्लोकेन=तच्छ्लोकेन (उस श्लोक के द्वारा), धावन्+शश = धावञ्छश (दौडता हुआ खरगोश)।

(क) क्, ट्, त्, प् के बाद भी यह नियम लगता है, परन्तु साधारणतया इस नियम का प्रयोग नहीं होता। वाक्शतम् का वाक्छतम् (सौ बातें) हो सकता है।

५४—क्, ट्, त्, प् के बाद शब्द के प्रारम्भिक ह् को पूर्ववर्ण के अनुसार महाप्राण वर्ण हो जाता है। अर्थात्—(१) क् को ग् होगा और ह् को घ्, (२) ट् को ड् और ह् को ढ्, (३) त् को द् और ह् को ध्, (प् को ब् और ह् को भ्। जैसे—वाक्+हि=वाग्घि (क्योंकि वाणी), तत्+हि=तद्धि (क्योंकि वह)।

५५—यदि धातु के प्रारम्भ में ग्, द् ब् है और उनका अन्तिम वर्ण घ्, ध् भ् या ह् है, यदि ऐसी धातुओं में से अन्तिम वर्ण में महाप्राण या ह्-ध्वनि लुप्त होती है तो प्रारम्भिक वर्ण में महाप्राण ध्वनि आ जाएगी। यह एक प्रकार से क्षतिपूर्ति समझनी चाहिए। इस प्रकार ग् को घ्, द् को ध् और ब् को भ् हो जायेगा। जैसे—दुह् शब्द (दुहनेवाला) का धुक् और बुध् (विद्वान्) का भुत् हो जाता है।

अन्तरग-सधि (Internal Sandhi)

५६—अन्तरग सन्धि के नियम शब्दों और धातुओं के अन्तिम वर्णों पर लागू होते हैं, बाद में कोई भी सुप् (नियम ७३ क में वर्णित व्यजन से प्रारभ होने वाले सुप् प्रत्ययों को छोडकर), तिङ्, कृत्, प्रत्यय (देखे नियम १८२, १) और स्वर या य् से प्रारम्भ होने वाला कोई तद्धित प्रत्यय (१८२, २) हो तो। ये नियम शब्दों और धातुओं के उदाहरणों को ठीक स्मरण करने से ही जाने

१　ग्रीक और सस्कृत भाषा में कुछ मूल धातुएँ ऐसी थी, जिनका प्रथम वर्ण महाप्राण वर्ण था। ऐसी धातुओं के लिए कुछ ध्वनि-नियम थे, जिनके अनुसार यह आवश्यक था कि प्रारम्भ और अन्त दोनो स्थानो पर महाप्राण वर्ण नहीं रह सकते थे। इस नियम का परिणाम यह था कि यदि प्रथम वर्ण महाप्राण है तो अन्तिम वर्ण से महाप्राण ध्वनि हट जाती थी, यदि प्रथम वर्ण में महाप्राण ध्वनि नहीं रहती थी तो अन्तिम वर्ण में महाप्राण ध्वनि सुनाई पडती थी। यह नियम उसी प्राचीन ऐतिहासिक नियम का अवशेष है। फलस्वरूप यदि अन्तिम वर्ण से महाप्राण ध्वनि हटेगी तो प्रथम वर्ण में वह पुन सुनाई पडेगी।

जा सकते है। इनमे से कुछ नियम बहिरग सन्धि के समान ही है। बहिरग सन्धि से जो नियम विशेष उल्लेखनीय है, उनका ही यहाँ पर उल्लेख किया गया है।

अन्तिम स्वर (Final Vowels)

५७—कतिपय स्थानो पर स्वर (और सवर्ण स्वर) बाद मे हो तो इ और ई को इय्, उ और ऊ को उव्, ॠ को इर् हो जाते है (नियम १८ और २०)। जैसे—धी+इ=धियि, स० १ (बुद्धि मे), भू+इ=भुवि (पृथ्वी पर), युयु+उ=युयुवु (वे मिले), गॄ+अति=गिरति (वह निगलता है)।

५८—अन्तिम ॠ को ईर् होता है, बाद मे व्यजन से प्रारम्भ होनेवाला कोई सुप् या तिङ् प्रत्यय हो तो। यदि ॠ से पूर्व ओष्ठ्य वर्ण होगा तो ॠ को उर् होगा। यदि एक व्यजन पहले होगा तो ॠ को रि हो जायेगा, बाद मे य् हो तो (देखे १५४, ३) जैसे—गॄ का कर्मवाच्य लट् प्र०१ गीर्यते (निगला जाता है), गीर्ण (निगला गया), गॄ का क्त-प्रत्ययान्त रूप। पॄ का कर्म०-लट् प्र०१ पूर्यते (पूरा किया जाता है), क्त-प्रत्ययान्त रूप पूर्ण (पूरा किया) कृ- कर्म०लट् प्र०१-क्रियते (किया जाता है)।

५९—ए को अय्, ऐ को आय्, ओ को अव् और औ को आव् होते है, बाद मे अजादि (स्वर से प्रारम्भ होने वाला) प्रत्यय या य् हो तो (२१, २२)। जैसे ने+अनम्=नयनम् (नेत्र), रै+ए=राये (धन के लिए), गो+ए=गवे (गाय के लिए), नौ+अ=नाव (नौकाएँ), गौ+य=गव्य (गाय का)।

अन्तिम व्यजन (Final Consonants)

६०—बहिरग सन्धि से विशेष उल्लेखनीय अन्तर यह है कि इसमे धातु और शब्दो के अन्तिम व्यजनो मे कोई परिवर्तन नही आता है। (देखो नियम ३२), बाद मे स्वर, अन्तस्थ और नासिक्य से प्रारम्भ होनेवाला कोई प्रत्यय हो तो।[1] यदि अन्य वर्ण बाद मे होगे तो उनमे बहिरग सन्धि के नियम

१ कृत् प्रत्यय का न बाद मे होगा तो द् को भी न् हो जाएगा। जैसे—अन्न (अन्न) मे अद्+न है। यदि तद्धित प्रत्यय मत् और मय बाद मे होगे तो शब्द के त् और द् को न् हो जाएगा। जैसे—विद्युत्+मत्=विद्युन्मत् (बिजली से युक्त), मृत्+मय=मृन्मय (मिट्टी से बना हुआ)।

लगेंगे। जैसे—प्राञ्च (पूर्वी), वचानि (मैं बोलूँ), वाच्य (बोलने योग्य), वच्मि (मै बोलता हूँ), किन्तु वक्ति (वह बोलता है) मे व्यजन-सन्धि होगी।

६१—शब्द या धातु के अन्त मे दो व्यजन नही रह सकते है (नियम २८ देखे), अत जिन शब्दो या धातुओ के अत मे व्यजन होते है, उनके बाद अपृक्त (स्वर-रहित केवल एक व्यजनवर्ण) सुप् या तिङ् प्रत्यय का लोप हो जाता है। अन्त मे जो व्यजन बच जाता है, उसको बहिरग सन्धि के नियमानुसार रखा जाता है जैसे—प्राञ्च् + स् = प्राङ् (पूर्वी), प्र० एक० का रूप है। यहाँ पर पहले प्रत्यय के स् का लोप होगा और ञ् तथा च् को ङ् और क् होगे (नियम २७), बाद मे अन्तिम क् (नियम २८) का लोप हो जाएगा। इसी प्रकार अदोह् + त् = अधोक् (५५) (उसने दुहा), दुह् + लङ् प्र०१।

६२—महाप्राण वर्णों (Aspirates) के बाद स्वर, अन्त स्थ और नासिक्य (६०) के अतिरिक्त अन्य कोई वर्ण होगा तो महाप्राण ध्वनि का लोप हो जायगा, अर्थात् वर्ग के चतुर्थ वर्ण को तृतीय वर्ण और द्वितीय वर्ण को प्रथम वर्ण हो जाएगा। जैसे—रुन्ध् + ध्वे = रुन्द्ध्वे (तुम रोकते हो), लभ + स्ये = लप्स्ये (मैं पाऊँगा)। किन्तु युधि (युद्ध मे), लोभ्य (चाहने योग्य) मे महाप्राण-ध्वनि रहेगी।

(क) लुप्त हुई महाप्राण ध्वनि धातु या शब्द के पूर्ववर्ण मे पुन आ जाती है, यदि बाद मे ध्व् (धि के साथ नही), भ्, स् होगे तो (५५वे नियम के अनुसार)। जैसे—अभुद्ध्वम् (तुमने जाना), भुद्भि (तृ०३), भुत्सु (स०३)। किन्तु दुग्धि (दुहो)—दुह् + लोट् म०१ मे द् को ध् नही होगा।

यदि महाप्राण ध्वनि का लोप हुआ है और बाद मे त् और थ् है तो त् और थ् को ध् हो जाता है, अर्थात् महाप्राण ध्वनि अगले वर्ण पर चली जाती है।[2]

---

१ सस्कृत व्याकरण के अनुसार एक शब्द के प्रारम्भ और अन्त दोनो स्थानो पर महाप्राण ध्वनि नही रह सकती है। इसी प्रकार एक शब्द के अन्त मे और आगामी शब्द के प्रारम्भ मे दोनो स्थानो पर महाप्राण ध्वनि नही रहेगी।

२ धा (रखना) धातु इसका अपवाद है। त् और थ् बाद मे होने पर (६२ क के सादृश्य पर) धा को धत् हो जाता है। (देखो आगे नियम १३४, जुहोत्यादिगण १)

जैसे—लभ्+त =लब्ध (पाया), रुन्ध्+ध =रुन्द्ध (तुम दोनो रोकते हो), बन्ध्+तुम्=बन्द्धुम् (बाँधने को)।

६३—**तालव्य वर्ण** (Palatals)—(क) च् के बाद कोई व्यजन होगा तो च् को क् या ग् अवश्य हो जाता है (देखो नियम ६१, २७, ६ कोष्ठक १), ज् को अधिकाश स्थानो पर क् या ग्[1] हो जाता है, अन्य स्थानो पर मूर्धन्य वर्ण ट्, ड् या ष् होता है। जैसे—उक्त (कहा), वच्+क्त, युक्त (जोडा) युज्+क्त, रुग्ण (टूटा हुआ) रुज्+क्त (देखो नियम ६५)। किन्तु निम्न-लिखित स्थानो पर ज् को मूर्धन्य वर्ण ट्, ड् या ष् हुआ है—राट् (राजा), राज्+स्, प्र०१, मृड्ढि (धोओ) मृज्+लोट् म०१, राष्ट्र (देश) राज्+त्र नि० ६४)।

(ख) बाद मे ध्, पदसज्ञक सुप् (भ्याम् आदि), (नि० ७३ क) और प्र०१ का स् होगा तो श् को ट् या ड्, कभी-कभी क् या ग्, होते है। त् या थ् बाद मे होगे तो श् को ष् होता है (नि० ६४)। बाद मे भविष्यत् काल का या धातुरूप से सम्बद्ध कोई स् होगा तो श् को क् हो जाएगा। ऐसे स्थानो पर क्+स्=क्ष् होगा। जैसे—विश् का स०३ मे विट्सु (प्रजाओ मे) होगा, विश्+क्त=विष्ट (प्रविष्ट हुआ), विश्+लृट् उ०१=वेक्ष्यामि (नि० ६७) (मैं प्रविष्ट होऊँगा)।

(ग) च् और ज् के बाद न् को ञ् होता है, किन्तु श् के बाद नही। जैसे—याच्+ना=याच्ञा (माँगना), यज्+न =यज्ञ (यज्ञ), किन्तु प्रश्+न =प्रश्न (प्रश्न) ही होगा।

(घ) प्रछ् (पूछना) धातु के छ् को श् के तुल्य ही कार्य होते है। जैसे—प्रच्छ्+क्त=पृष्ट (पूछा), प्रच्छ्+लृट् उ०१=प्रक्ष्यामि (पूछूँगा), प्रच्छ्+न=प्रश्न (प्रश्न) (बहिरग सन्धि मे अर्थात् अन्तिम छ् को तथा पद-सज्ञक सुप्, भ्याम् आदि से पूर्व छ् को ट् या ड् हो जाता है)।

६४—मूर्धन्य (Cerebrals) के बाद आनेवाले दन्त्य को भी मूर्धन्य वर्ण

---

१ धातुरूपो मे स् से पहले ज को क् अवश्य हो जाता है। (नि० १४४, ४)।

हो जाता है (नि० ३६)। जैसे—इष+त=इष्ट (चाहा), द्विष्+धि=द्विड्ढि (द्वेष करो), षट्+नाम्=षण्णाम् (छ का) (नि० ३३)।

(क) शब्द-रूपो मे सर्वत्र तथा धातु-रूपो मे घ् से पहले ष् को नियमित रूप से मूर्धन्य (ट् या ड) हो जाते है (नि० ८०)। धातु-रूपो मे स् से पहले नियमित रूप से ष् को क् हो जाता है (नि० ६३ ख और ६७) जैसे—द्विष् का द्वेक्षि (तुम द्वेष करते हो)।

६५—न् को ण् होना (Change of dental न् to cerebral ण्)

ऋ, ॠ, र्, ष् के बाद न् को ण् हो जाता है, बाद मे कोई स्वर या न्, म्, य्, व् हो तो। ऋ आदि के बाद कोई स्वर, कवर्ग, पवर्ग, य्, व्, ह्, बीच मे होगा तब भी न् को ण् हो जाएगा। जैसे—नृ+नाम्=नृणाम् (मनुष्यो का), कर्+न = कर्ण (कान), दूषणम्(दोष) यहाँ बीच मे स्वर का व्यवधान है, बृंहणम् (पोषक) (अनुस्वार, ह् और स्वर का व्यवधान है), अर्केण (सूर्य के द्वारा) (कवर्ग और स्वर का व्यवधान), क्षिप्णु (फेकना) (स्वर और पवर्ग का व्यवधान), प्रेम्णा (प्रेम से) (स्वर और पवग का व्यवधान), ब्रह्मण्य (ब्राह्मणो के लिए हितकारी) (स्वर, ह् पवर्ग और स्वर का व्यवधान तथा न् के बाद य् है), निषण्ण (बैठा) (न् के बाद न् है और दोनो को ण् हो जाता है), प्रायेण (प्राय) (स्वर, य् और स्वर का व्यवधान)।

किन्तु निम्नलिखित स्थानो पर पूर्वोक्त कारणवश न् को ण नहीं होता है —अर्चनम् (पूजा करना) (चवर्ग का व्यवधान है), अर्णवेन (समुद्र के द्वारा) (टवर्ग का व्यवधान), अर्धेन (आधे के द्वारा) (दन्त्य का व्यवधान), कुर्वन्ति (वे करते है), (न् के बाद त् है), रामान्-राम द्वि०३ (रामो को) (यहाँ न् अन्तिम वर्ण है)

सूचना—उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि बीच मे आनेवाले वर्णो की सख्या पर कोई प्रतिबन्ध नही है। एक से अधिक भी वर्ण बीच मे होगे तो भी न् को ण् हो जाता है। जैसे—रामायण शब्द मे र् और न् के बीच मे पाँच वर्ण हैं (तीन स्वर, एक पवर्ग और एक अन्त स्थ)।

न् को ण् करने की सारिणी

(Table showing when न् changes to ण्

वर्ण के बाद	व्यवधान हो तो	न् को ण्	न् के बाद वर्ण हो तो
ऋ, ॠ, र्, ष	स्वर, कवर्ग (ह् सहित, पवर्ग (व सहित), य् और अनुस्वार।	न् को ण् होता है।	स्वर, न्, म्, य्, व्

६६—(अ) न् को होने वाले कार्य—

१—य् और व बाद मे होगे तो न् वैसा ही रहेगा। जैसे—हन्यते (मारा जाता है), तन्वन् (फैलाता हुआ)।

२—धातु के अन्तिम न् के स्थान पर अनुस्वार हो जाता है, बाद मे स् हो तो। जैसे—जिघासति (हन्+इच्छार्थक सन् प्रत्यय, वह मारना चाहता है), मंस्यते (मन्+लृट्, वह सोचेगा)। यदि नपुसकलिग बहु० मे होने वाला स या ष् का आगम होगा तो भी उससे पहले न् को अनुस्वार हो जाएगा (नि० ७१ ग, ८३)। जैसे—यशासि (यशस्+प्र०३, यश), हवींषि (हविस+प्र०३, हवि)।

(आ)—दन्त्य स् को होनेवाले कार्य—

१—निम्नलिखित स्थानो पर धातु या शब्द के अन्तिम स् को त् हो जाता है—

(क) वस् (रहना) और घस् (खाना) धातुओ के स को त् हो जाता है, बाद मे विकरण (भविष्यत्, लुङ् और सन् प्रत्यय) का स् होगा तो। जैसे—वत्स्यति (वस+लृट्, वह रहेगा) (नि० १५१ ख ३), अवात्सीत् (वस्+लुङ्, वह रहा) (१४४, १), जिघत्सति (घस्+सन्, वह खाना चाहता है) (१७१, ५)।

(ख) लिट् के स्थान पर होनेवाले क्वसु (वस्) प्रत्ययान्त शब्दो के स को त् हो जाता है, बाद मे भ या स् (तथा नपु० प्र० द्वि०१) हो तो (८६)। जैसे—चकृवद्भि (कृ+लिट्=चकृवस्+भि), चकृवत्सु (स०३) चकृवत् (नपु० प्र० द्वि०१)।

२—निम्नलिखित स्थानो पर स् का लोप हो जाता है—

(क) दो स्पर्श (क से म तक) वर्णों के मध्यवर्ती स् का लोप होता है। जैसे—अभक्त (अ+भक्+स्+त, भज्+लुङ्+प्र०१, बाँटा), चष्टे

(चक्ष्+लट्+प्र०१, कहता है) (मूलरूप मे चक्ष् धातु चश्+स् है अत चक्ष्+ते मे स् का लोप है)। उद् उपसग के बाद स्था (रुकना) और स्तम्भ् (सहारा देना) धातु के स् का लोप हो जाता है। जैसे—उत्थाय (उठकर, उद्+स्थाय), उत्तम्भित (उठा हुआ, उद्+स्तम्भित)।

(ख) स् का लोप हो जाता है, बाद मे कोमल दन्त्य वर्ण हो तो। जैसे—शाधि (शास्+लोट् म०१ शास्+धि, आज्ञा दो)। जहाँ पर स् को ष् हो जाता है, वहाँ लोप होने पर अगले दन्त्य वर्ण को मूर्धन्य वर्ण हो जायेगा। जैसे—अस्तोढ्वम् (अ+स्तोष्+ध्वम्, स्तु+लुङ्+म०३, तुमने स्तुति की)।

६७—स् को ष् होना—(change of dental स् to cerebral ष्)

अ, आ के अतिरिक्त (अनुस्वार और विसर्ग बीच मे होगे तो भी) अन्य कोई स्वर पूर्व मे होगा अथवा क् या र् पहले होगे तो दन्त्य स् को ष् हो जाता है, बाद मे स्वर, त्, थ्, न्, म्, य्, व् हो तो। जैसे—सर्पिस् (घी) के रूप होगे—सर्पिषा (घी से), सर्पींषि (प्र०३) सर्पिषु (स०३) (नि० ४३, ३)। वाच् का रूप होगा—वाक्षु (स०३, वाणियो मे)। गिर् (वाणी) का गीर्षु (स०३) (नि० ८२)। स्था (रुकना) धातु का तिष्ठति (लट् प्र०१, रुकता है)। भू (होना) का भविष्यति (होगा)। स्वप् (सोना) का सुष्वाप (सोया)। चक्षुस् का चक्षुष्मत् (आँखवाला)। किन्तु उपर्युक्त कारणो से इन स्थानो पर स् को ष् नही हुआ—सर्पि (स् अन्तिम वर्ण है), मनसा (मन से, यहाँ पहले अ है), तमिस्रम् (अँधेरा, बाद मे र् है)।

स् को ष्, परिवर्तनसारिणी (Table showing when स् changes to ष्)

वर्ण पहले हो तो	होता है	बाद मे वर्ण हो तो
अ, आ (बीच मे अनुस्वार और विसर्ग हो तो भी) के अतिरिक्त कोई भी स्वर, क् या र्	स् को ष्	स्वर, त्, थ्, न्, म्, य्, व्

सूचना—न् को ण् और स् को ष् के नियम पूरी सावधानी से स्मरण कर लेने चाहिएँ, क्योकि शब्दरूप और धातु-रूपो मे ये नियम नियमित रूप से लगते हैं।

६८—य्, र्, ल् (नि० ६० और ४२ आ १) बाद मे होगे तो म् मे कोई परिवर्तन नही होता है। यदि बाद मे व् से प्रारम्भ होने वाला कोई प्रत्यय होगा तो म् को न् हो जाएगा। जैसे—काम्य (चाहने योग्य), ताम्र (लाल रग), अम्ल (खट्टा), किन्तु जगन्वान् (गम्+क्वसु, गया हुआ) मे म् को न् होगा।

६९—(क) स् बाद मे हो तो ह् को घ् के तुल्य माना जाता है तथा द् से प्रारम्भ होनेवाली धातुओ के भी ह् को घ् माना जाता है, बाद मे त्, थ्, ध् और स् हो तो। जैसे—लेह्+सि=लेक्षि (तुम चाटते हो) (६७), दह्+स्यति=धक्ष्यति (वह जलायेगा) (५५), दह्+त=दग्ध (जला हुआ) (६२ ख), दिह्+ध्वे=धिग्ध्वे (तुम तेल आदि से चिकना करो) (६२ क)। इसी प्रकार स्निह् (स्नेह करना) और मुह् (किकर्तव्यविमूढ होना) धातुओ को क्त-प्रत्यय होने पर ह् को घ् के तुल्य कार्य होता है। जैसे—स्निग्ध (चिकना, स्निह्+त), मुग्ध (मूख, मुह्+त)।

(ख) अन्य धातुओ मे ह् को ढ् हो जाता है और बाद के त्, थ् और ध् को ढ् होगा तथा ढ् से पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर को दीर्घ हो जाएगा। और पहले ढ् का लोप हो जाएगा। जैसे—लिह्+त=लीढ (चाटा), मुह्+त=मूढ (मूर्ख)। इसी प्रकार वह् और सह् धातुओ के ह् को भी ढ् होता है और इन धातुओ के स्वर मे कुछ परिवतन होता है। जैसे—ऊढ[1] (वह्+त) (ढोया), वोढुम्[2] (वह्+तुम्, ढोने को), सोढुम् (सह्+तुम्, सहने को)।

नह् धातु ६९ ख का अपवाद है। इसमे ह् को ध् होता है। जैसे—नद्ध (नह्+त, बाँधा)। दृह् धातु नियम ६९ क और ख दोनो का अपवाद है। इसमे ह् को ढ् होता है और पूर्ववर्ती ऋ को दीर्घ नही होता। दृह्+त= दृढ (दृढ)।

---

१ व को सम्प्रसारण होकर उ हो जाता है (नियम १७ की पाद-टिप्पणी), बाद मे उस उ को दीघ ऊ हो जाता है।

२ यह ओ भारत-ईरानी azh का प्रतिनिधित्व करता है। यह बाद के दन्त्य को मूर्धन्य महाप्राण ढ् करके ओ हो जाता है, जैसा कि अस अन्त वाले शब्दो मे अस् को (az होकर) ओ हो जाता है। जैसे—मनस्+भि=मनोभि (नि० ४५ ख)।

अध्याय ३

शब्दरूप (Declension)

७०—शब्दरूप या धातुज शब्दो के रूप सुप् प्रत्यय लगाकर बनाये जाते है। इनको सरलता से ३ शीर्षको मे विभक्त किया जा सकता है—१—सज्ञा शब्द (विशेषरण शब्द-सहित), २—सख्यावाचक, ३—सर्वनाम।

सस्कृत मे तीन लिग, तीन वचन और आठ विभक्तिया (कारक) होती है। इनके नाम आदि निम्नलिखित है

(क) **तीन लिंग**—(Genders)—पुलिग (Masculine), स्त्रीलिंग (Feminine), नपुसकलिंग (Neuter)।

(ख) **तीन वचन** (Numbers)—एकवचन, (Singular), (द्विवचन) (Dual), बहुवचन (Plural)।

(ग) **आठ विभक्तिया** (Cases)—प्रथमा (Nominative), सबोधन (Vocative), द्वितीया (Accusative), तृतीया (Instrumental), चतुर्थी (Dative), पचमी (Ablative), षष्ठी (Genitive), सप्तमी[1] (Locative)।

७१—साधारणतया शब्दो के अन्त मे ये **सुप्** (शब्दो के अन्त मे लगने वाले कारक-चिह्न) लगते है —

	एकवचन			द्विवचन			बहुवचन		
	पु०	स्त्री०	नपु०	पु०	स्त्री०	नपु०	पु०	स्त्री०	नपु०
प्र०	स्		—२	औ		ई	अस्		इ३
स०–१			—	औ		ई	अस्		इ
द्वि०	अम्		—	औ		ई	अस्		इ

१ भारतीय वैयाकरणो के अनुसार यह क्रम है। वे सबोधन को पृथक् विभक्ति नहीं मानते हैं। सुविधा के लिए एकवचन, द्विवचन और बहुवचन मे जिन विभक्तियो मे समानता है, उनको एक वर्ग मे रखा गया है।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
	पु० स्त्री० नपु०	पु० स्त्री० नपु०	पु० स्त्री० नपु०
तृ०	आ	भ्याम्	भिस्
च०	ए	भ्याम्	भ्यस्
प०	अस्	भ्याम्	भ्यस्
ष०	अस्	ओस्	आम्
स०	इ	ओस्	सु

१—प्रथमा और सबोधन के रूपो मे कोई अन्तर नही होता है केवल स्वर मे अन्तर होता है। सबोधन एकवचन मे निम्नलिखित स्थानो पर शब्द-रूपो मे अन्तर होता है—अजन्त (स्वर अन्त वाले) पुँलिग और स्त्रीलिग शब्दो मे तथा अन्, अन्, इन्, अम् (नि० ७६क), यस्, वस् अन्तवाले हलन्त पुलिग शब्दो मे।

२—नपुसकलिग प्रथमा और द्वितीया एकवचन मे केवल शब्द ही शेष रहता है, केवल अ अन्तवाले शब्दो मे म् और जुड जाता है।

३—नपु० मे प्र०, स० और द्वि० बहु० मे अजन्त शब्दो के बाद इ से पहले न् और जुड जाता है। जिन शब्दो के अन्त मे स्पर्श या ऊष्मवर्ण (ह् को छोडकर कोई भी व्यजन) होते है, उनको भी प्र०, स०, द्वि०, बहु० मे अतिम व्यजन से पहले न् जुड जाता है और बाद मे अगले वर्ण के अनुसार न् को कार्य होते है।

७२—च्, त्, न्, स् और ऋ अन्तवाले शब्दो के शब्द-रूपो मे पदस्थानो और भस्थानो मे महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि यदि शब्द के दो अग होते है तो वहाँ पर **सर्वनामस्थान (पचस्थान)** (**Strong**) और **असर्वनामस्थान (अपचस्थान)** (**Weak**) का अन्तर रहेगा। यदि शब्द के तीन अग होते है तो **पचस्थान** (**Strong**), **पदस्थान** (**weak**) और **भस्थान** (**weekest**) ये तीन अन्तर होगे। (क) उदात्त स्वर का स्थान-परिवर्तन ही इस अन्तर का कारण है। पचस्थानो मे जहाँ शब्द पर उदात्त स्वर है, वहाँ शब्द अपने पूर्ण रूप मे रहता है। अपचस्थानो मे उदात्त स्वर प्रत्यय पर रहता है, अत शब्द अपने सक्षिप्त रूप मे रहता है। ऐसे ही कारण से दीर्घ-स्वरान्त स्त्रीलिग शब्दो को सबोधन एकवचन मे ह्रस्व हो जाता है क्योकि उदात्त अन्तिम स्वर

पर न होकर प्रथम स्वर पर आ जाता है।

७३—निम्न स्थानो पर सवनामस्थान (पचस्थान) वाले रूप होते है—

(क) पु० शब्द[1]—प्रथमा और सबोधन १, २, ३, द्वितीया—१, २।

(ख) नपु० ,, —प्रथमा, स० और द्वितीया—केवल बहुवचन।

(क) जिन शब्दो मे तीन अग होते है, उनमे हलादि[2] (व्यजनो से प्रारम्भ होने वाली) विभक्ति (भ्याम्, भि , भ्य , सु) से पहले पद-स्थान वाला अग रहेगा। शेष अजादि भस्थान वाले प्रत्ययो से पहले भस्थान वाला अग रहेगा। जैसे—प्रत्यञ्चौ (प्र०२), प्रत्यग्भि (तृ०३), प्रतीचो (ष०२) (६३)।

(ख) तीन अगो वाले नपुसकलिग शब्दो से प्र०, स० और द्वि० एकवचन मे पदस्थान वाला अग रहेगा तथा प्र०, स० और द्वि० के द्विवचन मे भस्थान वाला अग रहेगा। जैसे—प्रत्यक् (एक०), प्रतीची (द्वि०), प्रत्यञ्चि (बहु०) (६३)। शेष विभक्तियो मे पुलिग के तुल्य रूप बनते है।

हलन्त शब्द
सज्ञा शब्द (Nouns)

७४ सुविधा के लिए शब्दरूप दो भागो मे विभक्त किये जा सकते है—

१ व्यजनान्त शब्द[3]—(अ) अपरिवर्तनशील, (आ) परिवर्तनशील।

२ अजन्त शब्द—(अ) अ और आ अन्त वाले, (आ) इ और उ अन्त वाले, (इ) ई और ऊ अन्त वाले, (ई) ऋ अन्त वाले, (उ) ऐ, ओ, औ अन्त वाले शब्द।

१(अ) अपरिवर्तनशील शब्द (Unchangeable Stems)

७५ ऐसे शब्दो की सख्या अपेक्षाकृत कम है, क्योकि कवर्ग, मूर्धन्य,

---

१ ऋ (१०१) अत वाले शब्दो को छोडकर प्राय सभी परिवतनशील शब्दो के स्त्रीलिंग रूप ई प्रत्यय (१००) लगाकर बनते है।

२ परिवत्तनशील शब्दो मे पदस्थान मानना इसलिए अधिक सुविधाजनक है, क्योकि समास मे पूवपद मे इनका पदस्थान वाला रूप प्राप्त होता है।

३ कतिपय वैयाकरण अजन्त शब्दो के रूप अकारान्त (२ अ) शब्दो से प्रारम्भ करते हैं, क्योकि सस्कृत के अधिकाश शब्दो के रूप अकारा त के तुल्य चलते हैं। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से हलन्त शब्दो से शब्दरूप प्रारम्भ करना अधिक उपयुक्त है, क्योकि इन शब्दो से सुप् प्रत्यय (७१) बिना किसी परिवर्तन के सीधे लगते हैं। अकारान्त शब्दो के रूपो मे सुप मे बहुत परिवतन होते हैं, अत प्रारम्भिक छात्रो को समझने मे असुविधा होती है।

नासिक्य या अन्तस्थ (र् को छोडकर) अन्तवाले शब्द है ही नही। हलादि प्रत्यय बाद मे होने पर इनमे केवल सन्धि-नियम ही लगते है (१६ क), अन्य कोई परिवर्तन नही होता है। प्रत्येक हलन्त (व्यजनान्त) शब्द के रूप पुलिंग और स्त्रीलिंग मे सर्वथा वही रहते है और नपुसकलिंग मे प्र०, स० और द्वि० के द्विव० तथा बहु० मे ही अन्तर होता है।

७६—अजादि (स्वर से प्रारम्भ होने वाला) प्रत्यय बाद मे होने पर हलन्त शब्दो का अपना अन्तिम व्यजन सुरक्षित रहता है (७१), किन्तु पदान्त मे पु० और स्त्री० मे प्र०१ के स् का लोप हो जाता है और स०३ सु से पूर्व उन्हे निम्नलिखित वर्णो मे से कोई एक वर्ण हो जाता है—क्, ट्, त्, प् या विसर्ग ( ) (२७), इनको भ् से प्रारम्भ होने वाला प्रत्यय बाद मे होने पर क्रमश ग्, ड्, द्, ब् या र् हो जाता है।

(क) अस् प्रत्यय अन्त वाले (८३) शब्दो को छोडकर शेष पु० और स्त्री० शब्दो के स०१ मे वही रूप होते है, जो प्र०१ मे होते है।

(ख) इस प्रकार के शब्दो के नपु० प्र०, स० और द्वि० बहु० के रूप बहुत कम प्राप्त होते हैं। जैसे—०भाज् (युक्त, वाले) के रूप—प्र०१—०भाक् का बहुवचन ०भाञ्जि।

तवर्ग अन्तवाले शब्द (Stems in Dentals)

७७—**सुहृद्** (मित्र, शाब्दिक अर्थ—अच्छे हृदय वाला)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० स०	सुहृत् (२७)	सुहृदौ	सुहृद
द्वि०	सुहृदम्	,,	,,
तृ०	सुहृदा	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भि
च०	सुहृदे	,,	सुहृद्भ्य
प०	सुहृद	,,	,,
ष०	,,	सुहृदो	सुहृदाम्
स०	सुहृदि	,,	सुहृत्सु

(क) नियमित रूप से चलनेवाले अपरिवतनशील शब्दो के लिए निम्नलिखित विभक्तियो के रूप स्मरण करने से काम चल जाएगा—प्र०१ और

प्र०, तृ० तथा स० बहु० । जैसे—०जित् (जीतने वाला) के ०जित्, ०जित, ०जिद्‌भि, ०जित्सु । ०मथ् (मारनेवाला) के ०मत्, ०मथ, ०मद्‌भि, ०मत्सु। ०वृध् (बढाने वाला) के ०वृत्, वृध, ०वृद्‌भि, ०वृत्सु ।

पवर्ग अन्तवाले शब्द (Stems in Labials)

७८—प् और भ् अन्तवाले थोडे ही शब्द प्राप्त होते है। उनके रूप सुहृद् के तुल्य ही चलते है।

शब्द	प्र० १	प्र० ३	तृ० ३	स० ३
धर्मगुप् (धमरक्षक, पु०)	०गुप्	०गुप	०गुब्भि	०गुप्सु
ककुभ् (दिशा, स्त्री०)	ककुप्	ककुभ	ककुब्भि	ककुप्सु

तालव्य अन्तवाले शब्द (Stems in Palatals)

७९—तालव्य (च्, ज्, श्) अन्तवाले शब्दो मे निम्नलिखित स्थानो पर स्थान-परिवतन होता है—शब्द का अन्तिम वर्ण हो या बाद मे व्यजन से प्रारम्भ होनेवाला कोई प्रत्यय हो तो (नि० ६३) । च् को सदा कण्ठ्य वर्ण (क् या ग्) होता है। ज् तथा श् को अधिकाश स्थानो पर कण्ठ्य वर्ण (क् या ग्) होता है, किन्तु कुछ स्थानो पर मूर्धन्य वर्ण (ट्, ड्) भी होता है।

शब्द	प्र० १	प्र० ३	तृ० ३	स० ३
वाच्[1] (वाणी) स्त्री०	वाक्	वाच	वाग्भि	वाक्षु(६७)
असृज् (रक्त) नपु०	असृक्	असृञ्जि	असृग्भि	असृक्षु
रुज् (रोग) स्त्री०	रुक्	रुज	रुग्भि	रुक्षु
सम्राज् (सम्राट्) पु०	सम्राट्	सम्राज	सम्राड्भि	सम्राट्सु
दिश् (दिशा) स्त्री०	दिक्	दिश	दिग्भि	दिक्षु
विश् (प्रजा) पु०	विट्	विश	विड्भि	विट्सु

(क) वाच् के तुल्य इन शब्दो के रूप चलेगे—त्वच् (स्त्री०, त्वचा), रुच् (स्त्री०, कान्ति), स्रुच् (स्त्री० स्रुवा), जलमुच् (पु०, बादल, शब्दार्थ—जल बरसाने वाला) ।

(ख) रुज् के तुल्य चलनेवाले शब्द—ऋत्विज् (पु०, पुरोहित, शब्दार्थ—

---

1 अञ्च् धातु से बने अच् अन्त वाले शब्द परिवतनशील हैं (नि० ९३) ।

(ऋतुओं मे यज्ञ करनेवाला), वणिज् (पु०, वैश्य), भिषज् (पु०, वैद्य), स्रज् (स्त्री०, माला), ऊर्ज् (स्त्री०, बल) (प्र०१ मे ऊर्क् २८)।

(ग) सम्राज् के तुल्य चलने वाले शब्द—परिव्राज् (पु०, सन्यासी)।

(घ) दिश के तुल्य चलने वाले शब्द ०दृश (देखनेवाला), स्पृश (छूनेवाला) (समास का अन्तिम शब्द होने पर इनके रूप दिश् के तुल्य चलेगे)।

मूर्धन्य अन्तवाले शब्द (Stems in Cerebrals)

८०—मूर्धन्य अन्तवाले शब्दो मे केवल ष अन्तवाले शब्द ही प्राप्त होते है। ष् को पदस्थानो मे ट् या ड् होता है।

शब्द	प्र०१	प्र०३	तृ०३	स०३
द्विष् (शत्रु) पु०	द्विट्	द्विष	द्विड्भि	द्विट्सु
प्रावृष् (वर्षा ऋतु) स्त्री०	प्रावृट्	प्रावृष	प्रावृड्भि	प्रावृट्सु

हकारान्त शब्द (Stems in ह्)

८१—अधिकाश हकारान्त शब्दो के ह् को कण्ठ्य (क् या ग्) हो जाता है, यदि ह् अन्तिम वर्ण हो या बाद मे व्यजन प्रारम्भ होने वाला प्रत्यय हो। किन्तु ०लिह् (चाटना) के ह् को मूर्धन्य (ट् या ड्) होता है (नि० ६९ ख) और उपानह् (स्त्री० जूता, शब्दार्थ—जो बाधा जाता है) के ह् को दन्त्य (त् या द्) होता है, उपर्युक्त स्थानो मे।

शब्द	प्र०१	प्र०३	तृ०३	स०३
०**दुह्** (दुहनेवाला)	०धुक्	०दुह	०धुग्भि	०धुक्षु(६२)
०**द्रुह्** (द्रोहकरनेवाला)	०ध्रुक्	०द्रुह	०ध्रुग्भि	०ध्रुक्षु
उष्णिह् (स्त्री०, वैदिक छन्द)	उष्णिक्	उष्णिह	उष्णिग्भि	उष्णिक्षु
मधुलिह् (पु०,शहद की मक्खी)	०लिट्	०लिह	०लिड्भि	०लिट्सु
उपानह् (स्त्री०,जूता)	उपानत्	०नह	०नद्भि	०नत्सु

रकारान्त शब्द[1] (Stems in र्)

८२—प्रथमा एक० मे जब र् अन्तिम वर्ण होता है तो उसको विसर्ग हो जाता है, सप्तमी बहु० सु बाद मे हो तो र् रहेगा (नि० ५०)। र् से पूर्ववर्ती

---

१ अन्तस्थ य्, व, ल् अन्तवाले कोई शब्द नही हैं।

इ या उ को दीर्घ हो जाता है, जब र् अन्तिम वर्ण हो या उसके बाद कोई व्यंजन हो तो।

शब्द	प्र०१	प्र०३	तृ०३	स०३
द्वार् (स्त्री०,द्वार)	द्वाः	द्वारः	द्वार्भिः	द्वार्षु (६७)
गिर् (स्त्री०,वाणी)	गीः	गिरः	गीर्भिः	गीर्षु
पुर् (स्त्री०नगर)	पूः	पुरः	पूर्भिः	पूर्षु

सकारान्त शब्द (Stems in स्)

८३—प्रायः सारे सकारान्त शब्द कृत्-प्रत्यय अस्, इस्, उस् से बनते हैं और प्रायः नपु० होते हैं। नपु०, प्र०, स०, द्वि० के बहु० में न् का आगम होने से पहले अन्तिम स्वर को दीर्घ हो जाता है। पु० और स्त्री० में आनेवाले प्रायः सभी सकारान्त शब्द समस्त होते हैं और विशेषण के रूप में आते हैं। सकारान्त शब्द उनका अन्तिम शब्द होता है। इन स्थानों पर प्र०१ में अस् के अ को दीर्घ हो जाता है।

यथा—**यशस्** (नपु०, यश), **हविस्** (नपु०, हवि), **आयुस्** (नपु०, आयु)।

एकवचन

प्र०स०द्वि०	यशः	हविः	आयुः
तृ०	यशसा	हविषा (६७)	आयुषा (६७)
च०	यशसे	हविषे	आयुषे
प० ष०	यशसः	हविषः	आयुषः
स०	यशसि	हविषि	आयुषि

द्विवचन

प्र० स० द्वि०	यशसी	हविषी	आयुषी
तृ० च० प	यशोभ्याम् (४५, २)	हविर्भ्याम्(४४)	आयुर्भ्याम्
ष० स०	यशसोः	हविषोः	आयुषोः

बहुवचन

प्र० स० द्वि०	यशांसि(६६, २)	हवींषि	आयूंषि
तृ०	यशोभिः	हविर्भिः	आयुर्भिः

च० प०	यशोभ्य	हविर्भ्य	आयुभ्य
ष०	यशसाम्	हविषाम्	आयुषाम्
स०	यश सु	हवि षु (६७)	आयु षु (६७)

क—**सुमनस्** (प्रसन्नचित्त शब्द का पु० प्र०१ मे सुमना (स० सुमन) रूप बनता है, नपु० प्र०१ मे सुमन बनेगा। **दीर्घायुस्** का सभी लिगो मे प्र०१ मे दीर्घायु रूप ही बनता है। इसी प्रकार **अङ्गिरस्** (पु०, ऋषि का नाम), **उशनस्** (पु०, ऋषि का नाम) और **उषस्** (स्त्री०, ऊषा) के प्र०१ मे अङ्गिरा, उशना (उशना भी) और उषा रूप बनते है।

ख—**आशिस्**[1] (स्त्री०, आशीर्वाद) शब्द के इ को दीर्घ ई हो जाती है (जैसे—इर् अन्तवाले शब्दो मे) प्र०१ मे तथा व्यजन से प्रारम्भ होने वाले (हलादि) प्रत्यय बाद मे होगे तो। प्र०१—आशी, प्र०२—आशिष, तृ०२—आशीर्भि, स०३—आशी षु।

ग—**दोस्**—(नपु०, बाहु) शब्द के रूप नियमित ढग से चलते है। प्र०१—दो, प्र०२—दोषी, तृ०३—दोर्भि, स०३—दो षु।

१ (आ) परिवर्तनशील शब्द (Changeable Stems)

८४—त्, न्, स् और च् अन्तवाले शब्दो मे नियमित रूप से परिवतन होता है। त् अन्तवाले शब्द है—अत् (मत् और वत्) प्रत्ययान्त शब्द। न् अन्तवाले—अन् (मन् और वन्) प्रत्ययान्त, इन् (मिन् और विन्) प्रत्ययान्त। स् अन्तवाले—यस् (तुलनार्थक प्रत्यय), वस् (लिट् के स्थान पर होनेवाला क्वसु प्रत्यय)। च् अन्तवाले—अच् (यह वस्तुत अञ्च् धातु है, जिसका अर्थ है झुकना)।

अत् (८५-८६), इन् (८७), यस् (८८) अन्तवाले शब्दो मे दो भेद होते है—सर्वनामस्थान (strong), पदस्थान (weak)। अन् (९०-९२), वस् (८९) और अच् (९३) अन्तवाले शब्दो के तीन भेद होते है—सवनामस्थान (strong), पदस्थान (middle), भस्थान (weakest) (७३)।

---

1 आशिस् शब्द इस् प्रत्यय लगाकर नहीं बनता है, अपितु आ उपसर्ग के साथ शास् धातु का रूप है। इसमे शास् के आ को इ हो जाता है।

दो अगवाले सज्ञा-शब्द (Nouns with two stems)

८५—(१) अत् अन्तवाले शब्द वतमान काल के शतृ और भविष्यत् काल के स्य+शतृ (१५६) से बने हुए पु० और नपु० शब्द होते है।[1] सर्व-नामस्थान मे अत् का अन्त् रहेगा, अन्यत्र अत् रहेगा।[2] जैसे—अद्+अत् (शतृ) (खाता हुआ) के दो अग है—अदन्त् और अदत्।

अदत्—पुंलिग

	एक०	द्वि०	बहु०
प्र० स०	अदन्	अदन्तौ	अदन्त
द्वि०	अदन्तम्	,,	अदत
तृ०	अदता	अदद्भ्याम्	अदद्भि
च०	अदते	,,	अदद्भ्य
प०	अदत	,,	,,
ष०	,,	अदतो	अदताम्
स०	अदति	,,	अदत्सु

नपुसकलिंग

प्र०, द्वि०	अदत्	अदती	अदन्ति

क—**महत्** (महान्, मूलरूप मे यह शतृ-प्रत्ययान्त रूप था[3]) के सवनाम-स्थान (पचस्थान) मे अत् को आन्त् हो जाता है।

प्र० १	महान्	प्र० ३ पु०	महान्त	प्र० ३ नपु० महान्ति
द्वि० १	महान्तम्		महत	
तृ०	महता		महद्भि	
स० १	महन्	स० ३	महत्सु	

८६—मत्वथक (रखने वाला, वाला अर्थ) मत और वत् प्रत्यय से बने विशेषण-शब्दो के रूपो मे शतृ (अत्)—प्रत्ययान्त रूपो से केवल एक स्थान

---

१ स्त्री प्रत्ययान्त रूप बनाने के लिए देखें नियम ६५।

२, लेटिन और ग्रीक मे सवत्र न् रहने से यह भेद प्राप्त नही होता है। जैसे—लेटिन मे edentis।

३ महत् शब्द मह् (मूलरूप मे मघ्) धातु से बना है। तुलना करो—लेटिन—Mag-nus।

पर पुलिग मे अन्तर होता है, वह है—पु० प्र०१ मे अत् का आन् हो जाएगा। शेष रूप शतृ-प्रत्ययान्त के तुल्य चलेगे। जैसे—**अग्निमत्** (पु० नपु०, यज्ञिय अग्नि को धारण करने वाला)[1]।

प्र०१ पु०	अग्निमान्	प्र०३ ०मन्त	नपु० ०मन्ति
द्वि०	अग्निमन्तम्	०मत	
स०	अग्निमन्	स०३ ०मत्सु	

२—**ज्ञानवत्** (पु० और नपु०, **ज्ञानवान्**)[2]

प्र०१ पु०	ज्ञानवान्	प्र०३	ज्ञानवन्त	नपु० ०वन्ति
द्वि०२	ज्ञानवन्तम्	द्वि०३	ज्ञानवत	

(क) भवत् शब्द जब शतृ-प्रत्ययान्त भू धातु से बना हुआ होगा तो उसके रूप अदन् के तुल्य चलेगे। इसमे सारे रूपो मे प्रथम स्वर पर उदात्त स्वर रहेगा। इसका अर्थ होगा—होता हुआ। किन्तु 'आप' अथ वाले भवत् शब्द के रूप ज्ञानवन् के तुल्य चलेगे। यह म्र अन्तवाले शब्दो के तुल्य माना जाएगा। प्र०१ भवान्, द्वि०१ भवन्तम्। स०१ मे भवन् के अतिरिक्त एक अनियमित रूप भो (नि० ४६) (आप) भी बनता है। यह प्राचीन भवस् का ही सक्षिप्त रूप है।

(ख) **कियत्** (कितना), **इयत्** (इतना) के रूप ज्ञानमत् के ही तुल्य चलते है।

प्र०१	कियान्	प्र०३ कियन्त	नपु० कियन्ति
द्वि०१	कियन्तम्	द्वि०३ कियत	

८७—(२) पु० और नपु० मे मत्वथक (रखनेवाला) इन् प्रत्यय से बने हुए विशेषण-शब्द बहुत अधिक है। ये शब्द अकारान्त शब्दो से इन् प्रत्यय लगाकर बनते है। जैसे—बल (शक्ति) से (बलवान्)। निम्नलिखित स्थानो पर ऐसे शब्दो के अन्तिम न् का लोप हो जाता है—पदस्थान (भ्याम् आदि), नपुसकलिग मे प्र०१ और द्वि०१ पु०। प्र०१ मे इ को दीर्घ ई हो जाती है

१ स्त्री-प्रत्ययान्त रूप बनाने के लिए देखे नियम ९५।

२ स्त्री-प्रत्ययान्त रूप बनाने के लिए देखें नियम ९५।

और अन्तिम न् का लोप होता है। नपु० प्र०, स० और द्वि० के बहु० मे इ को दीघ ई होता है। जैसे—**धनिन्** (धनवान्)—

पुंलिग

	एकवचन	बहुवचन
प्र०	धनी	धनिन
द्वि०	धनिनम्	,,
तृ०	धनिना	धनिभि
स०	धनिन्	

नपुंसकलिंग

	एकवचन	बहुवचन
प्र० द्वि०	धनि	धनीनि
स०	धनि, धनिन्	

(क) मिन् और विन् प्रत्यय भी मत्वर्थ मे होते है। इनके रूप भी इन्-प्रत्ययान्त के तुल्य चलेगे। जैसे—मनस्विन् (मनस्वी), वाग्मिन् (वाच्+मिन्, उत्तम वक्ता)। स्वामिन् (पु० स्वामी, शब्दार्थ—धन का स्वामी) के रूप सज्ञाशब्द के तुल्य चलते है।

८८—(३) तुलनार्थक ईयस् (पु० और नपु)—प्रत्ययान्त को पचस्थानो मे ईयस् हो जाता है। जैसे—**गरीयस**—(गुरु+ईयस्, गुरुतर)—

पुंलिग

	एकवचन	बहुवचन
प्र०	गरीयान्	गरीयास
स०	गरीयन्	—
द्वि०	गरीयासम्	गरीयस
तृ०	गरीयसा	गरीयोभि

नपुंसकलिंग

प्र० द्वि०	गरीय	गरीयसी	गरीयांसि

तीन अगो वाले सज्ञा शब्द (Nouns with three stems)

८६—(१) लिट् के स्थान पर होनेवाले क्वसु (वस्)[1] प्रत्यय से बने हुए पु० नपु० शब्दो के तीन अग होते है—पचस्थान मे वास्, पदस्थान मे वत्[2] और भस्थान मे उष् (नि० ६७ और १५७)। जैसे—**चकृवस्**[3] (कृ+वस्, जिसने काम कर लिया है)—

चकृवस्	पुंलिग		
प्र०	चकृवान्	चकृवासौ	चकृवास
स०	चकृवन्	,,	,,
द्वि०	चकृवासम्	चकृवासौ	चकृष
तृ०	चकृषा	चकृवद्भ्याम्	चकृवद्भि
स०	चकृषि	चकृषो	चकृवत्सु
	नपुसकलिग		
प्र०	चकृवत्	चकृषी	चकृवासि

(क) वस्-प्रत्ययान्त कुछ शब्दो मे बीच मे इ का आगम भी होता है। जहाँ पर वस् को उस् होता है वहाँ पर इ का लोप हो जाता है। जैसे—तस्थिवस् का प्र०१ मे तस्थिवान्, किन्तु तृ०१ मे तस्थुषा।

(ख) इस प्रकार के कुछ उपयुक्त शब्दो के रूप नीचे दिए जा रहे है। (१५७)

धातु	अर्थ	शब्द	प्र०१	प्र०३	द्वि०३	तृ० ३
स्था	रुकना	**तस्थिवस्**	तस्थिवान्	तस्थिवास	तस्थुष	तस्थिवद्भि
नी	ले जाना	**निनीवस्**	निनीवान्	निनीवास	निन्युष	निनीवद्भि

---

१ स्त्री प्रत्ययान्त रूप बनाने के लिए देखे नियम ६५।

२ वैदिक काल मे भ् से पूर्व स् को त् होना प्रारम्भ हो गया था। बाद में वही स०३ मे तथा नपु० प्र० और द्वि०१ मे भी होने लगा। वस् ही अनुदात्त वाले स्थानो पर उस् होता है (नि० १३७, २ ग)।

३ व्याकरण के प्रारम्भिक छात्र वस्-प्रत्ययान्त रूपो मे तथा तवत्-प्रत्ययान्त रूपो मे कुछ स्थानो पर भ्रम करते हैं, क्योकि दोनो का प्र०१ मे वान् अन्त मे रहता है। जैसे—कृ+तवत् के रूप होगे—पु० प्र०१ कृतवान् (किया), द्वि०१ कृतवन्तम् (नि० १६१)।

धातु	अर्थ	शब्द	प्र०१	प्र०३	द्वि०३	तृ०३
भू	होना	**बभूवस्**	बभूवान्	बभूवास	बभूवुष	बभूवद्भि
तन्	फैलाना	**तेनिवस्**	तेनिवान्	तेनिवास	तेनुष	तेनिवद्भि
हन्	मारना	**जघ्निवस्**	जघ्निवान्	जघ्निवास	जघ्नुष	जघ्निवद्भि
गम्	जाना	**जगन्वस्**[1]	जगन्वान्	जगन्वास	जग्मुष	जगन्वद्भि
गम्	जाना	**जग्मिवस्**	जग्मिवान्	जग्मिवास	,,	जग्मिवद्भि
विद्	जानना	**विद्वस्**[2]	विद्वान्	विद्वास	विदुष	विद्वद्भि

९०—(२) अन् (मन् तथा वन् भी) अन्तवाले पुलिग तथा नपु०[3] शब्दो मे पचस्थान मे अन् का आन्, भ-स्थान मे अन् का न् और पदस्थान मे अन् का अ रहेगा। पु० प्र०१ मे अन् का आ शेष रहेगा, अन्तिम न् का लोप हो जाता है। स०१ तथा नपुसक० प्र० स० और द्वि० के द्विवचन मे अन् के अ का लोप विकल्प से होता है। यदि मन् और वन् से पूर्ववर्ती कोई व्यजन होगा तो भस्थानो मे अन् के अ का लोप नही होगा, अर्थात् अन् ही रहेगा।

सामान्यतया एक साथ तीन व्यजनों का होना निषिद्ध है। तथापि जिन शब्दो मे साधारण अन् लगा हुआ है, उनमे तीन व्यजन भी पाये जाते है। जैसे—आत्मना मे दो व्यजन है, किन्तु तक्ष्णा और मूर्घ्ना मे तीन व्यजन है। अन् अन्तवाले शब्दो के उदाहरण—

१—**राजन्** (राजा) पु०

	एकवचन	बहुवचन
प्र०	राजा	राजान
स०	राजन्	,,
द्वि०	राजानम्	राज्ञ
तृ०	राज्ञा	राजभि
स०	राज्ञि, राजनि	राजसु

२—**नामन्** (नाम), नपु० (लेटिन—No-men)

प्र०, द्वि०,	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
स०	नाम, नामन्	,,	,,

---

१ म के स्थान पर न् के लिए देखे नियम ६८।

२ विद्वस् मे धातु को द्वित्व नही होता। ग्रीक मे भी ऐसा ही है।

३ स्त्री-प्रत्ययान्त रूप बनाने के लिए देखें नियम ९५।

तृ०	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभि
स०	नाम्नि, नामनि	नाम्नो	नामसु

३—**ब्रह्मन्** (ब्रह्मा) पु०

(इसमे अन् के अ का लोप नही होगा।)

प्र०	ब्रह्मा	ब्रह्माण
स०	ब्रह्मन्	,,
द्वि०	ब्रह्माणम् (६५)	ब्रह्मण
तृ०	ब्रह्मणा	ब्रह्मभि

४—**ग्रावन्** (पत्थर) पु०

प्र०	ग्रावा	ग्रावाण
द्वि०	ग्रावाणम्	ग्राव्ण
तृ०	ग्राव्णा	ग्रावभि

२—(क)—**अन् अन्तवाले अपवाद** (**Irregular stems in अन्**)

६१—(१) **पन्थन्** (माग) पु० का पचस्थान मे पन्थान्, पदस्थान मे पथि, भस्थान मे पथ् रूप रहता है। प्र०१ मे अनियमित रूप से स्[1] लगता है—

प्र०	पन्था	पन्थान
द्वि०	पन्थानम्	पथ
तृ०	पथा	पथिभि

(२) **अहन्** (दिन) नपु० (पदस्थान मे अहस् होगा)—

प्र०,स०,द्वि०	अह[2]	अह्नी, अहनी	अहानि
तृ०	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभि
स०	अह्नि, अहनि	अह्नो	अह सु

---

१ इस स का कारण यह है कि प्राचीन भाषा मे इस शब्द के रूप दो प्रकार से चलते थे—(१) पन्था शब्द—प्र०१ पन्था, द्वि०१ पन्थाम। (२) पन्थान शब्द—प्र०१ पन्था, द्वि० पन्थानम्।

२ प्र०, स०, द्वि० के एक० मे न् का विसर्ग रहता है और समास मे जब अहन् पहला शब्द होगा तो इसे अहर् माना जाता है (४६)। अत अहरह (प्रतिदिन), अहर्गण (दिनो का समूह)। अहोरात्र (पु०, नपु०) (दिन और रात) मे न् को र् नही होता।

(३) श्वन् (कुत्ता) पु० भस्थानो मे श्वन् का शुन्[1] रहेगा। व् को सम्प्रसारण होकर उ हो जाता है। शेष स्थानो पर राजन् के तुल्य रूप होगे।

प्र०	श्वा	श्वान
स०	श्वन्	"
द्वि०	श्वानम्	शुन
तृ०	शुना	श्वभि

(४) युवन् (युवा) पु० (लेटिन—juven-is) का भस्थानो मे यून् रूप हो जाता है। इसको सम्प्रसारण और सवर्ण दीर्घ होकर (यु+उन्) यून् बनता है। (तुलना करो लेटिन—jun-ior) —

प्र०	युवा	युवान
स०	युवन्	"
द्वि०	युवानम्	यून
तृ०	यूना	युवभि

(५) मघवन् (इन्द्र, शब्दार्थ—समृद्धियुक्त) पु० का भस्थानो मे सम्प्रसारण और एकादेश होकर मघोन्[2] रूप रहता है—

	एकवचन	बहुवचन
प्र०	मघवा	मघवान
स०	मघवन्	"
द्वि०	मघवानम्	मघोन
तृ०	मघोना	मघवभि

६२—हन् (मारना) धातु जब समस्त पद के अन्त मे सज्ञा शब्द के तुल्य होती है, तब अधिकाश मे इसके रूप अन् अन्तवाले शब्दो के तुल्य चलते है। पचस्थानो मे हन् (प्र० १ मे हन् का हा), पदस्थानो मे ह और भस्थानो मे घ्न् रहेगा।

---

१ ग्रीक मे भी इसी प्रकार Śunah रूप बनता है।

२ इसके मघवत् वाले रूप भी मिलते हैं। जैसे—प्र० १ मघवान्, ष० १ मघवत ।

ब्रह्महन् (ब्राह्मण को मारनेवाला) पु०

प्र०	ब्रह्महा	ब्रह्महण
स०	ब्रह्महन्	,,
द्वि०	ब्रह्महणम् (६५)	ब्रह्मघ्न [1]
तृ०	ब्रह्मघ्ना	ब्रह्महभि
स०	ब्रह्मघ्नि, ब्रह्महणि	ब्रह्महसु

३—अच् अन्तवाले विशेषण शब्द (Adjectives in अच्)

६३—इन शब्दो का अर्थ[2] प्राय "ओर" शब्द के द्वारा प्रकट किया जाता है। अच् अन्तवाले शब्दो का पचस्थान मे अञ्च्, पदस्थानो मे अच् और भस्थानो मे य् पहले होगा तो अच् को ईच् और व् पहले होगा तो अच् को ऊच् होगा।[3]

प्रत्यच्(पीछे की ओर, पश्चिम की ओर) पु०, नपु०[4]

पुंलिग

प्र०, स०	प्रत्यङ् (६१)	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्च
द्वि०	प्रत्यञ्चम्	,,	प्रतीच
तृ०	प्रतीचा	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भि
स०	प्रतीचि	प्रतीचो	प्रत्यक्षु(३०,६७)

नपुसकलिग

प्र०, द्वि०	प्रत्यक्	प्रतीची	प्रत्यञ्चि

१　यहाँ पर न् को ण् (६५) सम्भवत इसलिए नही होता है, क्योकि न् से पहले कवर्ग वर्ण घ है।

२　ये शब्द वस्तुत अञ्च् (झुकना) धातु से बने हुए समस्त पद हैं, किन्तु यह अञ्च् धातु प्रयोग मे प्रत्यय का स्थान धारण किए हुए है।

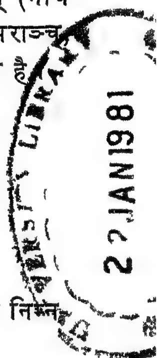
३　यच् और वच् को सम्प्रसारण होने पर इच् और उच् होगा। यहाँ पर अनियमित रूप से जो दीघ ई या ऊ दिखाई पडता है, उसका कारण यह प्रतीत होता है कि यहाँ पर सम्प्रसारण अन्तरग न होकर बहिरग है और वह समास के सधिस्थल पर है। यदि सम्प्रसारण होकर स्वर ह्रस्व इ या उ होता तो ऐसा प्रतीत होता कि यह अलग अञ्च् धातु न होकर कोई च् प्रत्यय लगा है जैसे—प्रतिच्, अनुच्। अतएव शब्द के अन्तिम स्वर को दीर्घ किया गया है।

४　स्त्री-प्रत्ययान्त रूप बनाने के लिए देखो नियम (६५)।

(क) इसी प्रकार चलने वाले अन्य शब्द—

पञ्चस्थान	पदस्थान	भस्थान
न्यञ्च् (नीचे की ओर)	न्यक्	नीच्
सम्यञ्च् (ठीक)	सम्यक्	समीच्
तिर्यञ्च् (तिरछा)	तिर्यक्	तिरश्च्[1]
उदञ्च् (ऊपर की ओर)	उदक्	उदीच्[2]
अन्वञ्च् (पीछे की ओर)	अन्वक	अनूच्
विष्वञ्च् (चारो ओर व्याप्त)	विष्वक्	विषूच्

(ख) पराच् (हटाया हुआ), प्राच् (आगे पूर्वी) और अवाच् (नीचे की ओर, दक्षिणी) शब्दो के दो अग होते है। पचस्थानो मे क्रमश पराञ्च, प्राञ्च् और अवाञ्च् तथा पदस्थानो मे पराच्, प्राच् और अवाच् होते है।



प्राच्—पुलिंग

प्र०, स०	प्राङ् (६१)	प्राञ्च
द्वि०	प्राञ्चम्	प्राच
तृ०	प्राचा	प्राग्भि
स०	प्राचि	प्राक्षु

९४—परिवर्तनशील शब्दो के विषय मे प्रारम्भिक छात्रो के लिए निम्न-लिखित सकेत विशेष उपयोगी होगे —

१—अत् और अच् अन्तवाले शब्दो को छोडकर शेष प्रत्ययान्त शब्दो के पु० प्र०१ मे स्वर को दीर्घ हो जाता है। जैसे—अग्निमत्—अग्निमान्, ज्ञानवत्—ज्ञानवान्, गरीयस्—गरीयान्, चक्रवस्—चक्रवान्, राजन्—राजा, ब्रह्मन्—ब्रह्मा, युवन्—युवा, धनिन्—धनी, वाग्मिन्—वाग्मी, मनस्विन्—मनस्वी। किन्तु अदत् का अदन् और प्रत्यच् का प्रत्यङ् बनेगा।

२—परिवतनशील शब्दो का पु० प्र० १ मे अन्त मे नासिक्य वर्ण (पचम

---

१ तिरस् (तुलना करो लेटिन—trans)+अच् (पार जाना, तिरछा जाना) से तिर्यञ्च बनता है। इसका पु० और नपु० सज्ञा शब्द होने पर पशु अथ होता है।

२ यहाँ पर अ से पहले य् नही है, फिर भी सादृश्य के आधार पर ई हो जाती है।

वर्ण) रहेगा, किन्तु न् अन्तवाले (अन्, मन्, वन्, इन्, मिन्, विन्) शब्दो मे अन्तिम स्वर को दीर्घ हो जाएगा और न् का लोप होगा।

३—सभी परिवर्तनशील शब्द जिनके पु० प्र०१ मे स्वर को दीर्घ होता है, उनके सबोधन एक० मे ह्रस्व स्वर रहेगा और अन्तिम न् का लोप नही होगा। जैसे—अग्निमत्—स० १ अग्निमन्। इसी प्रकार ज्ञानवन्, गरीयन्, चकृवन्, राजन्, ब्रह्मन्, युवन्, धनिन्, वाग्मिन्, मनस्विन्।

(क) परिवर्तनशील अन्य शब्दो मे प्र०१ और स०१ मे केवल अन्तर यह रहता है कि स०१ मे प्रथम स्वर पर ही उदात्त स्वर रहेगा और प्र०१ मे अन्तिम स्वर पर उदात्त रहता है। जैसे—अदन्—(स०१),—अदन् (प्र०१), प्रत्यङ् (स०१), प्रत्यङ् (प्र०१)।

६५—स्त्रीप्रत्ययान्त रूप बनाना (Formation of the Feminine stems) परिवर्तनशील शब्दो को स्त्रीप्रत्ययान्त स्त्रीलिंग शब्द बनाने के लिए उनके अन्त मे ई लगाया जाता है और इनके रूप नदी (१००) के तुल्य चलते हैं। दो अग वाले शब्दो मे अपचस्थान वाले अग मे ई लगेगा तथा तीन अग वाले शब्दो मे भस्थानवाले अग मे ई लगेगा। जैसे—अदत्—अदती, अग्निमत्—अग्निमती, ज्ञानवत्—ज्ञानवती, धनिन्—धनिनी, वाग्मिन्—वाग्मिनी, मनस्विन्—मनस्विनी, गरीयस्—गरीयसी, चकृवस्—चकृषी, राजन्—राज्ञी (रानी), ०नामन्—०नाम्नी (नामवाली, विशेषण), श्वन्—शुनी (कुतिया), ०हन्—०घ्नी (मारनेवाली), प्रत्यच्—प्रतीची, प्राच्—प्राची।

(क) शतृ—(अत्)—प्रत्ययान्त शब्दो के स्त्रीलिंग शब्द इस प्रकार बनते है —भ्वादिगण, दिवादि०, तुदादि०, चुरादि० (१२५) वाली धातुओ मे पचस्थानवाले पु० के रूप अन्त् (१५६) मे ई लगेगा, अर्थात् अत् का अन्ती रूप होगा। शेष गणो की धातुओ मे केवल ई लगेगा, अर्थात् अत् का अती रूप होगा जैसे—भवत्—भवन्ती (होती हुई)[1], तुदत्—तुदन्ती[2] (दु ख देती हुई), दीव्यत्—दीव्यन्ती (खेलती हुई), चोरयत्—चोरयन्ती (चुराती हुई)।

---

१ किन्तु भवत् (आप) शब्द का स्त्रीलिंग मे भवती बनेगा (८६ क)।

२ यदि धातु का अग उदात्त अ से समाप्त होता है तो विकल्प से अती वाला भी रूप बनेगा और अन्तिम ई पर उदात्त स्वर रहेगा। जैसे—तुदत्—तुदती, भविष्यत्—भविष्यती भी रूप बनेगा।

पुमास्, भस्थान मे वर्ण-लोप होकर पुस् और पदस्थान मे पुम् (अन्तिम स् का लोप हो जाता है, नियम २८ और १६ क) —

प्र०	पुमान् (नि० ८६, १)	पुमास
स०	पुमन्	"
द्वि०	पुमासम्	पुस
तृ०	पुसा	पुभि
स०	पुसि	पुसु

२—अजन्त शब्द (Stems ending in vowels)

६७—(अ) अकारान्त (पु० और नपु०) और आकारान्त[1] (स्त्री०) शब्द —जैसे—कान्त[2] (प्रिय, कम् धातु का क्त-प्रत्ययान्त रूप)—

एकवचन

	पुंलिग	नपु०	स्त्री०
प्र०	कान्त	कान्तम्	कान्ता
स०	कान्त	कान्त	कान्ते[3]
द्वि०	कान्तम्	कान्तम्	कान्ताम्
तृ०	कान्तेन	कान्तेन	कान्तया[4]
च०	कान्ताय	कान्ताय	कान्तायै[5]
प०	कान्तात्[6]	कान्तात्	कान्ताया

---

१ यह अ ग्रीक अस्, अन् (-os, -on) लेटिन् अस् (-us) अम (-um) का समकक्ष है। आ ग्रीक आ और लेटिन आ का समकक्ष है।

२ कुछ अ, आ, अम् अन्त वाले विशेषण शब्दो के रूप सवनाम शब्दो के तुल्य चलते हैं (११०)।

३ अम्बा (माता) का स० अम्ब होता है।

४ ये सुप् (अन्तिम अश) मूलरूप मे सर्वनाम शब्दो के रूपो से आए है। (११०)

५ स्त्रीलिंग शब्दो के ये अन्त्य अवयव ईकारान्त (मूलरूप मे या अन्त वाले) स्त्रीलिंग शब्दो के प्रभाव से आए है। जैसे—नद्यै, नद्या, नद्याम् (नि० १००) के अनुकरण पर इन शब्दो मे यै (या+ए), या (या+अस्) और याम् लगे हैं।

६ अंतिम अवयव आत् लेटिन और ग्रीक मे भी प्राप्त होता है।

ष०	कान्तस्य	कान्तस्य	कान्ताया
स०	कान्ते	कान्ते	कान्तायाम्

द्विवचन

	पु०	नपु०	स्त्री०
प्र०स०द्वि०	कान्तौ	कान्ते	कान्ते
तृ०च०प०	कान्ताभ्याम्	कान्ताभ्याम्	कान्ताभ्याम्
ष० स०	कान्तयो	कान्तयो	कान्तयो

बहुवचन

प्र० स०	कान्ता	कान्तानि[1]	कान्ता
द्वि०	कान्तान्[2]	कान्तानि	,,
तृ०	कान्तै[3]	कान्तै	कान्ताभि
च० प०	कान्तेभ्य	कान्तेभ्य	कान्ताभ्य
ष०	कान्तानाम्	कान्तानाम्	कान्तानाम्
स०	कान्तेषु	कान्तेषु	कान्तासु

९८—(ख) इकारान्त और उकारान्त (पु०, स्त्री०, नपु०) शब्द —

शुचि (पवित्र) एकवचन मृदु (कोमल)

	पु०	स्त्री	नपु०	पु०	स्त्री०	नपु०
प्र०	शुचि	शुचि	शुचि	मृदु	मृदु	मृदु
स०	शुचे	शुचे	शुचि	मृदो	मृदो	मृदु
द्वि०	शुचिम्	शुचिम्	शुचि	मृदुम्	मृदुम्	मृदु
तृ०	शुचिना	शुच्या	शुचिना	मृदुना	मृद्वा	मृदुना
च०	शुचये	शुच्यै[4]	शुचिने	मृदवे	मृद्वै	मृदुने

१ अन् अन्त वाले शब्दो के प्रभाव के कारण आनि और नाम् अन्त मे लगते हैं। जैसे—नामन् का नामानि और आत्मन् का आत्मनाम्।

२ मूलरूप मे यह अन्तिम अश आस् था (नि० ३६ आ पाद टिप्पणी १)। गाथिक और ग्रीक मे आस् (-ans) ही मिलता है।

३ यह अन्तिम अवयव ऐ कुछ ग्रीक शब्दो की चतुर्थी मे प्राप्त होता है।

४ देखो नियम ९७ पाद-टिप्पणी ५।

प० ष०	शुचे	शुच्या	शुचिन	मृदो	मृद्वा	मृदुन
स०	शुचौ[1]	शुच्याम्	शुचिनि	मृदौ	मृद्वाम्	मृदुनि

द्विवचन

	पुंलिंग	स्त्री०	नपु०	पुं०	स्त्री०	नपु०
प्र०स०द्वि०	शुची	शुची	शुचिनी	मृदू	मृदू	मृदुनी
तृ०च०प०	शुचिभ्याम्	शुचिभ्याम्	शुचिभ्याम्	मृदुभ्याम्	मृदुभ्याम्	मृदुभ्याम्
ष० स०	शुच्यो	शुच्यो	शुचिनो	मृद्वो	मृद्वो	मृदुनो

बहुवचन

प्र० स०	शुचय	शुचय	शुचीनि	मृदव	मृदव	मृदूनि
द्वि०	शुचीन्	शुची	,,	मृदून्	मृदू	मृदूनि
तृ०	शुचिभि	शुचिभि	शुचिभि	मृदुभि	मृदुभि	मृदुभि
च० प०	शुचिभ्य	शुचिभ्य	शुचिभ्य	मृदुभ्य	मृदुभ्य	मृदुभ्य
ष०	शुचीनाम्	शुचीनाम्	शुचीनाम्	मृदूनाम्	मृदूनाम्	मृदूनाम्
स०	शुचिषु	शुचिषु	शुचिषु	मृदुषु	मृदुषु	मृदुषु

(क) सभी नपुसक विशेषण शब्दो(सज्ञा शब्द नही) के रूप(प्र० स० द्वि० सभी वचन के अतिरिक्त) सर्वत्र पुंलिग शब्दो के तुल्य भी चलते है तथा स्त्रीलिंग विशेषण और सज्ञा शब्दो के रूप च०, प०, ष० और स० के एकवचन मे पुंलिग की तरह भी चलते है। जैसे—मति (बुद्धि, स्त्री०) के स०१ मे मत्याम् और मतौ रूप होगे, किन्तु वारि (नपु० जल) का स०१ मे वारिणि ही रूप बनेगा।

(ख) नपुसक शब्दो का स०१ मे पु० के तुल्य भी रूप बनता है। जैसे—वारि का वारि, वारे, मधु का मधु, मधो।

(ग) उ अन्तवाले स्त्रीलिंग विशेषण शब्दो के अन्त मे ई लगाकर भी विशेषण शब्द बनते हैं। जैसे—तनु, तन्वी (स्त्री०, पतली), लघु, लघ्वी (स्त्री० हलकी) पृथु (स्त्री० चौडी), पृथ्वी (चौडी अर्थात् विशाल पृथ्वी)।

---

१ यह अतिम अवयव वस्तुत उकारान्त शब्दो के उ के स्थान पर होने वाला वृद्धि-स्वर भी है, नकि इ का औ है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि उकारान्त शब्दो का प्रचलन अधिक था, इकारान्त शब्द भी प्राय उकारान्त की तरह चलते थे, अत उकारान्त के प्रभाव के कारण स०१ मे औ अन्त मे लगने लगा।

अपवाद-शब्द (Irregularities)

६६—(१) पति (पु०, पति) शब्द एकवचन भस्थानो पर अनियमित है। जैसे—तृ०१ पत्या, च०१ पत्ये, प० और ष०१ पत्यु [1], स०१ पत्यौ। जब इसका अर्थ स्वामी होता है या समास के अन्त मे होता है तो इसके रूप नियमित रूप से (शुचि के तुल्य) चलते है। पति का स्त्री० शब्द पत्नी है।

(२) सखि (पु०, मित्र) के कुछ अनियमित रूप बनते हैं। इसके अतिरिक्त पचस्थानो पर वृद्धि वाला सखाय् अग रहता है।

प्र०१	सखा	सखायौ	सखाय
स०	सखे	,,	,,
द्वि०	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृ०	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभि
च०	सख्ये	,,	सखिभ्य
प०	सख्यु	,,	,,
ष०	,,	सख्यो	सखीनाम्
स०	सख्यौ	,,	सखिषु

पचस्थान मे सखाय् रहेगा तथा अपचस्थान मे सखि के रूप नियमितरूप से चलेगे। सखि का स्त्रीलिंग शब्द सखी है। सखि शब्द समास का अन्तिम शब्द होगा तो उसे टच् (अ) प्रत्यय होकर—सख हो जाएगा।

(३) नपुसकलिंग शब्द **अक्षि** (आँख), अस्थि (हड्डी), दधि (दही), सक्थि (जाघ) को भस्थान मे इ के स्थान पर अन् हो जाता है। जैसे—अक्षि का अक्षन्, दधि का दधन्। इनके रूप नामन् के तुल्य चलेंगे।

प्र०, स०, द्वि०	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
तृ०	अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभि
ष०	अक्ष्ण	अक्ष्णो	अक्ष्णाम्

(४) **द्यु** (स्त्री०, आकाश) (मूलरूप मे यह दिउ Diu था जो कि द्यो Dyŏ का भस्थान का रूप था, १०२ क) हलादि (व्यजन से प्रारम्भ होनेवाले) सुप् बाद मे होने पर द्यु रूप रहता हैं। प्र०, स० के एकवचन मे वृद्धि होकर

१ यह अन्तिम अवयव सम्भवत सम्बन्धवाचक पितृ आदि शब्दो के प० और षष्ठी एक० के प्रभाव के कारण हैं (नि० १०१)। जैसे—पितृ का पितु. है।

द्यौ रूप होता है। अजादि (स्वर से प्रारम्भ होनेवाले) सुप् बाद मे होने पर दिव् रूप रहता है।

द्यु शब्द

	एक०	बहु०
प्र०	द्यौ	दिव
स०	द्यौ[1]	दिव
द्वि०	दिवम्	दिव
तृ०	दिवा	द्युभि
च०	दिवे	द्युभ्य
प०	दिव	,,
ष०	,,	दिवाम्
स०	दिवि	द्युषु

१०० (इ) **ईकारान्त और ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्द।** ये शब्द एकाच् (एक स्वर वाले) या अनेकाच् (अनेक स्वर वाले) है, तदनुसार इनके रूपो मे अन्तर होता है —

(१) यदि ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द एकाच् है तो अजादि विभक्ति बाद मे होने पर उन्हे क्रमश इय् और उव् होगे। यदि शब्द अनेकाच् होगे तो उनके ई को य् और ऊ को व् होगे।

(२) एकाच् शब्दो मे सुप् विभक्तियाँ सामान्य रूप से सवत्र लगेगी (७१)। इनके स्त्रीलिंग मे ऐ, आ और आम्[2] अन्तवाले रूप भी बनते है। अनेकाच्शब्दो मे ऐ, आ और आम् वाले रूप नियमितरूप से लगते हैं।

(३) एकाच् शब्दो के प्र० और स०१ मे स् ( ) वाले रूप बनते है। अनेकाच् शब्दो मे स०१ मे ई को इ और ऊ को उ हो जाता है।

---

१ सस्कृत मे प्र० और स०१ मे वही रूप रहता है, केवल स्वर मे अन्तर होता है। ग्रीक मे स० १ का स्वतन्त्र रूप बनता है।

२ ये विभक्ति-चिह्न अनेकाच् ईकारान्त (मूलरूप मे या अन्त वाले) शब्दो से प्रारम्भ हुए। इनके अन्त मे विभक्ति चिह्न ए, अ आदि लगे। जैसे—या+ए=यै, या+अ=या, या+अम्=याम। स०१ मे अम् का उद्गम अज्ञात है।

(४) अनेकाच् शब्दो मे प्र०१ मे ई के बाद स् ( ) नही रहता है, केवल लक्ष्मा (लक्ष्मी), तन्त्री (वीणा) और तन्द्री (सुस्त) मे विसर्ग रहता है। तन्द्री मे स् लोप भी होता है।

(५) अनेकाच् शब्दो के द्वि०१ मे ईम् और ऊम् रहता है तथा द्वि०३ मे ई और ऊ।

	धी (बुद्धि) स्त्री०			भू (पृथ्वी) स्त्री०		
प्र०	धी	धियौ	धिय	भू	भुवौ	भुव
स०	,,	,,	,,	,,	,,	,,
द्वि०	धियम्	,,	,,	भुवम्	,,	,,
तृ०	धिया	धीभ्याम्	धीभि	भुवा	भूभ्याम्	भूभि
च०	धिये	,,	धीभ्य	भुवे	,,	भूभ्य
प०	धिय	,,	,,	भुव	,,	,,
ष०	,,	धियो	धियाम्	,,	भुवो	भुवाम्
स०	धियि	,,	धीषु	भुवि	,,	भूषु

	नदी (नदी) स्त्री०			वधू (बहू) स्त्री०		
प्र०	नदी	नद्यौ	नद्य	वधू	वध्वौ	वध्व
स०	नदि	,,	,,	वधु	,,	,,
द्वि०	नदीम्	,,	नदी	वधूम्	,,	वधू
तृ०	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभि	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभि
च०	नद्यै	,,	नदीभ्य	वध्वै[1]	,,	वधूभ्य
प०	नद्या	,,	,,	वध्वा[1]	,,	,,
ष०	,,	नद्यो	नदीनाम्	,,	वध्वो	वधूनाम्
स०	नद्याम्	,,	नदीषु	वध्वाम्[1]	,,	वधूषु

(क) **स्त्री** (स्त्री०, औरत) शब्द यद्यपि एकाच् है, फिर भी अधिकाश रूप मे ईकारान्त अनेकाच् शब्दो की विशेषताएँ इसमे रहती है (१००,

---

१ स्त्री० के विशेष विभक्ति चिह्न ऐ, आ और आम् यहाँ पर अनेकाच् ईकारात शब्दो के प्रभाव के कारण ही है, जैसा कि आकारान्त शब्दो के रूपो मे होते है (नि० ९७)।

२-५) । इसमे स्त्री० वाले विशेष विभक्ति-चिह्न लगते हैं। स०१ मे ई को ह्रस्व इ होती है, प्र० १ मे स् ( ) नही रहता है तथा द्वि०१ मे ईम् और द्वि०३ मे ई वाले रूप भी विकल्प से होते है। यह शब्द मूलरूप मे वस्तुत दो अच् वाला था।

प्र०	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रिय
स०	स्त्रि	,,	,,
द्वि०	स्त्रियम्, स्त्रीम्	,,	स्त्रिय स्त्री
तृ०	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभि
च०	स्त्रियै	,,	स्त्रीभ्य
प०	स्त्रिया	,,	,,
ष०	,,	स्त्रियो	स्त्रीणाम्
स०	स्त्रियाम्	,,	स्त्रीषु

१०१ (ई) **ऋकारान्त (पु० और स्त्री०) शब्द**। मूलरूप मे ये शब्द अर् अन्तवाले हलन्त शब्द थे। इनके रूप प्राय अन् अन्तवाले (६०) शब्दो के तुल्य चलते है। ये शब्द अधिकाशत तृ-प्रत्ययान्त (अर्थात् तर् प्रत्ययान्त, ग्रीक-तर् लेटिन-tor) है। पचस्थान मे तृ को तर् या तार् होता है, पदस्थान मे तृ और भस्थान मे त्र्। पु० और स्त्री० के शब्द रूपो मे केवल द्वि० ३ मे ही अन्तर होता है।

सम्बन्धवाचक शब्दो मे पचस्थान मे गुणवाला रूप (अर्) रहता है तथा अन्य तृ-अन्तवाले शब्दो मे वृद्धिवाला रूप (आर्) रहता है। ष०१ मे उ, स०१ मे अरि, स०१ मे अ, पु० द्वि०३ मे ॠन् और स्त्री०, द्वि०३ मे ॠ, ष०३ मे ॠणाम् होता है।

दातृ (देनेवाला) पु०

प्र०	दाता	दातारौ	दातार
स०	दात.	,,	,,
द्वि०	दातारम्	,,	दातॄन्

तृ०	दात्रा	दातृभ्याम्	दातृभि
च०	दात्रे	,,	दातृभ्य
प०	दातु	,,	,,
ष०	,,	दात्रो	दातॄणाम्
स०	दातरि	,,	दातृषु

	पितृ (पिता) **पुंलिग**			**मातृ** (माता) **स्त्री०**		
प्र०	पिता	पितरौ	पितर	माता	मातरौ	मातर
स०	पित	,,	,,	मात	,,	,,
द्वि०	पितरम्	,,	पितॄन्	मातरम्	,,	मातॄ
तृ०	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभि	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभि
च०	पित्रे	,,	पितृभ्य	मात्रे	,,	मातृभ्य
प०	पितु	,,	,,	मातु	,,	,,
ष०	,,	पित्रो	पितॄणाम्	,,	मात्रो	मातॄणाम्
स०	पितरि	,,	पितृषु	मातरि	,,	मातृषु

(क) **नप्तृ** (पु०, नाती), भर्तृ (पु०, पति) और **स्वसृ** (स्त्री०, बहिन) शब्द यद्यपि सम्बन्धवाचक है, तथापि इनके रूप पचस्थान मे दातृ के तुल्य चलेगे और इनमे वृद्धिवाला आर् रूप लगेगा। जैसे—नप्तृ—द्वि०१ नप्तारम्, भर्तृ—द्वि०१ भर्तारम्,—स्वसृ—द्वि०१ स्वसारम्। द्वि०३ मे स्वसॄ बनता है।

(ख) **नृ** (पु०, मनुष्य) शब्द का पचस्थान मे गुणवाला रूप नर् होता है। ष०३ मे दो रूप होते हैं—नृणाम्, नॄणाम्। सस्कृत साहित्य मे इसके तृ०, च०, प०, ष० एकवचन के रूप प्राप्त नही होते है (ऋग्वेद मे च० १ नरे और ष० १ नर रूप मिलते है)। जैसे—प्र०१ ना, प्र०३ नर, द्वि०१ नरम्, द्वि०३ नॄन्, तृ० १ न्रा, तृ०३ नृभि, स०१ नरि, स०३ नृषु।

(ग) **क्रोष्टृ** (पु०, गीदड, शब्दार्थ—चिल्लानेवाला) शब्द को पदस्थान मे क्रोष्टु हो जाता है। जैसे—प्र०३ क्रोष्टार, तृ०३ क्रोष्टुभि ।

(घ) तृ—अन्तवाले शब्दो के रूप नपुसक लिंग मे शुचि के तुल्य चलते है। जैसे—प्र० धातृ, धातृणी, धातॄणि, तृ०१ धातृणा, तृ०३ धातृभि ।

(ङ) तृ—प्रत्ययान्त के रूप स्त्री० मे अन्त मे ई लगाकर बनाए जाते है।

जैसे—दातृ—स्त्री० दात्री (देनेवाली)। इनके रूप नदी के तुल्य चलते है।

(उ) एजन्त (ऐ, ओ, औ अन्तवाले) शब्द

१०२—निम्नलिखित एजन्त शब्द ही प्राप्त होते है—रै (पु०, धन), गो (पु० बैल, स्त्री० गाय), द्यो (स्त्री०, आकाश) और नौ (स्त्री० नाव)। स्वर बाद मे होने पर रै के ऐ को आय होता है तथा व्यजन बाद मे होने पर ऐ को आ हो जाता है। गो शब्द को पचस्थान मे वृद्धि होकर गौ हो जाता है तथा द्वि०१ और द्वि०३ मे औ को आ होता है। प०१ और ष०१ मे पूवरूप होकर गो (अव को ओ) रूप बनता है।

ये शब्द अजन्त और हलन्त शब्दो की मध्यगत अवस्था को प्रकट करते है। हलन्त शब्दो से इनकी समानता यह है कि इनके अन्त मे सुप् प्रत्यय सामान्यरूप से लगते है और अजन्त शब्दो से समानता यह है कि प्र०१ मे अन्त मे स् ( ) लगता है और पदस्थान मे इन शब्दो के अन्त मे स्वर रहता है।

रै (धन)

प्र०	रा	रायौ	राय	च०	राये	राभ्याम्	राभ्य
स०	,,	,,	,,	प०	राय	,,	,,
द्वि०	रायम्	,,	,,	ष०	,,	रायो	रायाम्
तृ०	राया	राभ्याम्	राभि	स०	रायि	,,	रासु

	गो (पु०, बैल, स्त्री०, गाय)			**नौ, (स्त्री० नाव)**		
प्र०	गौ	गावौ	गाव	नौ	नावौ	नाव
स०	,,	,,	,,	,,	,,	,,
द्वि०	गाम्	,,	गा	नावम्	,,	नाव
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभि	नावा	नौभ्याम्	नौभि
च०	गवे	,,	गोभ्य	नावे	,,	नौभ्य
प०	गो	,,	,,	नाव	,,	,,
ष०	गो	गवो	गवाम्	नाव	नावो	नावाम्
स०	गवि	,,	गोषु	नावि	,,	नौषु

(क) **द्यो** (आकाश) के रूप गो शब्द के तुल्य चलते है। प्र० १मे द्यु (९९, ४) के तुल्य द्यौ रूप बनेगा। द्विवचन और बहुवचन मे केवल पचस्थान के

रूप ही प्राप्त होते है। जैसे— प्र० द्यौ, द्यावौ, द्याव । द्वि० द्याम्, द्यावौ। च० १—द्यवे। प०, ष०१—द्यो । स०१—द्यवि।

तुलनार्थक प्रत्यय (Degrees of Comparison)

१०३ (१) विशेषण शब्दो (तथा सज्ञा शब्दो) से दो की तुलना मे तद्धित प्रत्यय **तर** और बहुतो की तुलना मे **तम** प्रत्यय लगते है। ये प्रत्यय पदस्थान या भस्थानवाले अग मे लगते है। जैसे—शुचि—शुचितर, शुचितम । प्राच्—प्राक्तर, प्राक्तम । धनिन्—धनितर, धनितम । विद्वस्—विद्वत्तर, विद्वत्तम । प्रत्यच्, प्रत्यक्तर, प्रत्यक्तम ।

(क) तर और तम का स्त्रीलिग आ लगाकर बनता है, किन्तु जब तम-प्रत्ययान्त शब्द सख्येय शब्द होगा तो उसका स्त्रीलिग ई लगाकर (१०७) बनेगा।

(२) **तुलनार्थक तद्धित प्रत्यय ईयस्** (दो की तुलना मे) और **इष्ठ** (बहुतो की तुलना मे) मूल शब्द से लगते है और इनको प्राय गुण होता है और इन पर उदात्त स्वर होता है। ईयस् और इष्ठ प्रत्यय लगने पर शब्द के अन्तिम स्वर का लोप होकर एकाच् शब्द हो जाता है। जैसे—अणु (सूक्ष्म) का अण् होकर अणीयस्, अणिष्ठ। गुरु[1] (भारी) (गर्)—गरीयस्, गरिष्ठ। लघु (हलका) लघ्—लघीयस्, लघिष्ठ। दूर (दूर) (दव्)— दवीयस्, दविष्ठ। वर (अच्छा) (वर्)—वरीयस् (अधिक अच्छा), वरिष्ठ (उत्तम)। क्षुद्र (नीच) (क्षोद्)—क्षोदीयस्। युवन् (युवा, आयु मे छोटा) (यव्)—यवीयस्। ह्रस्व (छोटा) (ह्रस्)—ह्रसीयस्। कुछ अनियमित रूप ये है —दीर्घ (लम्बा) (द्राघ्)—द्राघीयस्। बहुल (अधिक) (बह्)—बहीयस्।

(क) कुछ शब्दो के साथ ईयस् के स्थान पर यस् ही लगाया जाता है। जैसे—ज्या—ज्यायस् (प्रशस्यतर), ज्येष्ठ (प्रशस्यतम)। भू (बहुत)—भूयस् (अपेक्षाकृत अधिक), भूयिष्ठ (बहुत अधिक)। प्री (प्रिय)—प्रेयस् (प्रियतर), प्रेष्ठ (प्रियतम)। श्र (अच्छा)—श्रेयस् (अपेक्षाकृत अच्छा), श्रेष्ठ (उत्तम)। स्थिर (दृढ) (स्थ)—स्थेयस् (दृढतर)।

---

१ मूल शब्द गरु था। ग्रीक और लेटिन मे भी ऐसा ही है। समीकरण से गुरु होता है।

(ख) ईयस् और इष्ठ प्रत्यय करने पर कुछ शब्दो के रूपो मे अन्तर हो जाता है। जैसे—अन्तिक (समीप) को नेद्—नेदीयस्, नेदिष्ठ (अत्यन्त समीप) अल्प (थोडा) को कन्—कनीयस् (कुछ कम), कनिष्ठ (बहुत कम)। वृद्ध (वृद्ध) को वर्ष्—वर्षीयस् (अधिक वृद्ध), वर्षिष्ठ (सबसे अधिक वृद्ध)।

संख्या-वाचक शब्द (Numerals)

सख्याएँ (Cardinals)

१ एक	१५ पञ्चदश
२ द्व[1]	१६ षोडश[4]
३ त्रि (लेटिन—tri)	१७ सप्तदश
४ चतुर् (quatuor)	१८ अष्टादश
५ पञ्च	१९ नवदश, ऊनविंशति
६ षष् (sex)	२० विंशति
७ सप्त	२१ एकविंशति
८ अष्ट	२२ द्वाविंशति
९ नव (Novem)	२३ त्रयोविंशति
१० दश	२८ अष्टाविंशति
११ एकादश	२९ नवविंशति, ऊनत्रिंशत्
१२ द्वादश[2]	३० त्रिंशत्
१३ त्रयोदश[3]	३९ नवत्रिंशत्, ऊनचत्वारिंशत्
१४ चतुर्दश	४० चत्वारिंशत्[5]

---

१ समास मे प्रथम पद मे यह द्वि शब्द रहता है।

२ यहाँ पर द्वा पुराना द्विवचन का रूप है। द्वादश—दो और दस।

३ त्रि का प्रथमा बहु० त्रय (१०५, ४५, २) के स्थान पर त्रयो है।

४ षष्+दश का षज्+दश होकर षोडश रूप बनता है (देखो ६९ ख, पादटिप्पणी २)।

५ चत्वारि (१०५) का चत्वारिं रूप है, जैसे—त्रि से त्रिं-शत्।

४९ नवचत्वारिंशत्, ऊनपञ्चाशत्
५० पञ्चाशत्
६० षष्टि
७० सप्तति
८० अशीति
८२ द्वयशीति
९० नवति
९६ षण्णवति
१०० शतम्
१०१ एकशतम्, एकाधिक शतम्
१०२ द्विशतम्, द्वयधिक शतम्
१०३ त्रिशतम्, त्र्यधिक शतम्
११० दशशतम्, दशाधिक शतम्
२०० द्वे शते, द्विशतम्
३०० त्रीणि शतानि, त्रिशतम्
१००० दश शतानि, सहस्रम्
१००,००० लक्ष (lakh)
१,०००,००० नियुतम्
१०,०००,००० कोटि (crore)

(क) ऊपर २० से १०० तक जो सख्याएँ नही दीगयी है, उनके लिए निम्नलिखित बाते ध्यान रखे—(१) २० (विशति), और ३० (त्रिंशत्) से पहले द्वि को द्वा, त्रि को त्रय और अष्ट को अष्टा होता है। जैसे—द्वात्रिंशत् (३२), त्रयस्त्रिंशत् (३३), अष्टात्रिंशत् (३८), (२) ८० (अशीति) से पहले २, ३, ८ के लिए क्रमश द्वि, त्रि, अष्ट रहेगे। (३) ४०, ५०, ६०, ७० और ९० से पहले ये दोनो रूप रहेगे, अर्थात्—द्वा—द्वि, त्रय —त्रि और अष्टा—अष्ट।

(ख) १९, २९ आदि के लिए एक अन्य रूप प्राचीन क्त-प्रत्ययान्त ऊन (न्यून) शब्द लगाकर भी बनता है। जैसे—१९ के लिए ऊनविशति (अर्थात् एक कम बीस)। अन्य सख्याओ से पहले भी ऊन शब्द लगाकर इस प्रकार के अन्य शब्द बनाए जा सकते है। जैसे—त्र्यूनत्रिंशत् (तीन कम तीस, अर्थात् २७)।

(ग) इसीप्रकार १०१, १०२, आदि के लिए 'अधिक' विशेषण लगाकर अन्य शब्द बनाए जाते है। जैसे—द्वयधिक शतम् (दो अधिक सौ, अर्थात् १०२)।

(घ) द्विशतम्, त्रिशतम् आदि के दो अर्थ है—(१) १०२ और २००, (२) १०३ और ३००। इनका यह अन्तर स्वर के आधार पर जाना जा सकता

है। यदि शतम् के श पर उदात्त-स्वर होगा तो इनका अर्थ होगा—१०२, १०३ आदि। यदि शतम् के त पर उदात्त स्वर होगा तो इनका अथ होगा—२००, ३०० आदि।

सख्या-शब्दो के रूप (Declension of Cardinals)

१०५ केवल प्रथम चार सख्या-शब्दो के रूप तीनो लिगो मे चलते है।

(१) एक शब्द के रूप तीनो लिंगो मे सवनाम विशेषणशब्दो के अनुकरण पर सर्व (१२० ख) के तुल्य तीनो लिगो मे चलेगे। जैसे—पु०—एक, स्त्री०—एका, नपु०—एकम्।

(२) द्व (दो) के रूप कान्त शब्द के द्विवचन के तुल्य चलेगे। प्र०, द्वि०—पु० द्वौ, स्त्री० द्वे, नपु० द्वे, तृ०, च०, प०—द्वाभ्याम्, ष०, स०—द्वयो।

(३) त्रि (तीन) के रूप पु० और नपु० मे शुचि के बहु० के तुल्य चलते है, केवल षष्ठी बहु० मे त्रयाणाम् बनता है, जो कि त्रय शब्द से बना हुआ है। (ऋग्वेद मे त्रि शब्द का ष०३ का नियमित रूप त्रीणाम् मिलता है)। स्त्रीलिंग मे त्रि के स्थान पर तिसृ शब्द के रूप चलते है। साधारण ऋकारान्त शब्दो से प्र०, द्वि०, और ष० मे अन्तर होता है।

(४) चतुर् (चार) शब्द पु० और नपु० मे सवनामस्थान मे चत्वार् शब्द रहता है (तु० करो—लेटिन—quatuor) यद्यपि यह शब्द हलन्त है, तथापि ष० ३ मे विभक्ति से पहले न् जुड जाता है। जैसे—षष् को (षण्णाम् मे)। इसको स्त्रीलिग मे चतसृ हो जाता है और इसके रूप तिसृ के तुल्य चलते है।

	त्रि शब्द			चतुर् शब्द		
	पु०	नपु०	स्त्री०	पु०	नपु०	स्त्री०
प्र०, स०	त्रय	त्रीणि	तिस्र	चत्वार	चत्वारि	चतस्र
द्वि०	त्रीन्	त्रीणि	तिस्र	चतुर	चत्वारि	चतस्र
तृ०	त्रिभि	त्रिभि	तिसृभि	चतुर्भि	चतुर्भि	चतसृभि
च०, प०,	त्रिभ्य	त्रिभ्य	तिसृभ्य	चतुर्भ्य	चतुर्भ्य	चतसृभ्य
ष०	त्रयाणाम्	त्रयाणाम्,	तिसृणाम् (नि० १०१ख)	चतुर्णाम्	चतुर्णाम्	चतसृणाम्
स०	त्रिषु	त्रिषु	तिसृषु	चतुर्षु	चतुर्षु	चतसृषु

१०६—(क) षष् (छ) के रूप—प्र०, द्वि० षट् (२७), तृ० षड्भि, च० प० षड्भ्य, ष० षण्णाम्, स० षट्सु।

(ख) पञ्च (पॉच) शब्द के रूप अन् अन्तवाले नपुसकलिग शब्द (६०, २) के तुल्य चलते है, केवल षष्ठी मे कान्त के तुल्य रूप होगा। प्र०, द्वि० पञ्च, तृ० पञ्चभि, च० प० पञ्चभ्य, ष० पञ्चानाम्, स० पञ्चसु।

सप्त (सात) से दश (दस) तक के रूप पञ्च के तुल्य ही चलते हे। अष्ट निम्नलिखित अन्य (प्राचीन) रूप भी मिलते हे—प्र० द्वि० अष्टौ, तृ० अष्टाभि, च० प० अष्टाभ्य, स० अष्टासु।[1]

(ग) ३ से १९ तक के सख्या शब्दो का बहुवचनान्त विशेषण के रूप मे प्रयोग होता है। इनके वचन और विभक्ति विशेष्य के तुल्य होगे। (३ और ४ सख्याशब्दो मे लिग की एकरूपता भी होती है)। २० से ९९ तक सख्याशब्द स्त्रीलिग हे। ये तथा शतम् और सहस्रम् शब्द एकवचन मे ही प्रयुक्त होते है। इनका विशेष्य शब्द उसी विभक्ति मे होता है या षष्ठी विभक्ति मे। जैसे—शतेन दासीभि या शतेन दासीनाम्।(सौ दासियो ने या सौ दासियो के साथ)

सख्येय शब्द (ordinals)

१०७ 'प्रथम' से 'दशम' तक सख्येय शब्द विभिन्न प्रत्यय लगाकर बनाए जाते है—थ (मूलरूप मे त), म, य, ईय, अथवा प्रथम को द्वितीय और चतुर्थ के साथ मिलाकर। जैसे—थम=थ+म, तीय=त+ईय। 'एकादश' से 'नव-दश' तक सख्येय शब्द सख्या-वाचक शब्दो के तुल्य ही होते है, अन्तर केवल इतना होता है कि ये अकारान्त शब्द हो जाते है और इनके रूप कान्त शब्द के तुल्य चलते है तथा इनके स्वर मे अन्तर होता है। 'विंश' या 'विशतितम' (२० वाँ) से लेकर आगे के सख्येय शब्द या तो सख्या-शब्दो के सक्षिप्त रूप हो जाते है या उनके अन्त मे तम प्रत्यय लग जाता है। जैसे—विशति का

१ अष्टौ और अष्टा (लेटिन—octo, गाथिक—ahtau) प्राचीन द्विवचन के रूप है। इनका सम्भवत अर्थ था—दो चौकडी (सम्भवत दोनो हाथो की चार-चार अगुलियो को लक्ष्य करके यह प्रयोग है)।

विंश या विंशतितम। प्रथम से तुरीय (४ थ) तक शब्दो को छोडकर शेष शब्दो के स्त्रीलिग शब्द ई प्रत्यय लगाकर बनते है। प्रथम आदि के आ प्रत्यय लगाकर। जैसे—प्रथम से प्रथमा, पञ्चम से पञ्चमी।

१ म—प्रथम, स्त्री० प्रथमा
२ य—द्वितीय, स्त्री० द्वितीया
(प्राचीन द्वित शब्द से ईय)
३ य—तृतीय, स्त्री० तृतीया
(लेटिन—ter-tius)
४ थ—चतुर्थ, स्त्री० चतुर्थी
(ले०—quar-tus),
तुरीय, स्त्री० तुरीया
(क्तुरीय के स्थान पर),
तुर्य, स्त्री० तुर्या
(क्तुर्य के स्थान पर)
५ म—पञ्चम, स्त्री० पञ्चमी
६ ष्ठ—षष्ठ, (ले० sex-tus)
७ म—सप्तम, (ले० Septimus)
८ म—अष्टम
९ म—नवम
१० म—दशम, (ले० Decimus)

११ वाँ—एकादश
१९ वाँ—नवदश
ऊनविंश
२० वाँ—विंश, विंशतितम
३० वाँ—त्रिंश, त्रिंशत्तम
४० वाँ—चत्वारिंश, चत्वारिंशत्तम
५० वाँ—पञ्चाश, पञ्चाशत्तम
६० वाँ—षष्ट, षष्टितम
६१ वाँ—एकषष्ट, एकषष्टितम
७० वाँ—सप्तत, सप्ततितम
७१ वाँ—एकसप्तत, एकसप्ततितम
८० वाँ—अशीत, अशीतितम
८१ वाँ—एकाशीत, एकाशीतितम
९० वाँ—नवत, नवतितम
९१ वाँ—एकनवत, एकनवतितम
१०० वाँ—शततम

सख्यावाचक क्रियाविशेषण तथा उनके अन्य रूप
(Numeral Adverbs and other Derivatives)

१०८—(क) **'बार' अर्थवाले क्रियाविशेषण (Multiplicative Adverbs)**—सकृत् (एक बार, शब्दार्थ—एक बार करना), द्वि (दो बार) (ले०—bi-s), त्रि (तीन बार ले०—tri-s), चतु (चार बार, चतुर्+स् के स्थान पर), पञ्चकृत्व (पाच बार, शब्दार्थ—पाच बार करना), षट् कृत्व (छ बार), इत्यादि।

(ख) 'प्रकार' अर्थ वाले क्रियाविशेषण (Adverbs of manner) एकधा (एक प्रकार से), द्विधा या द्वेधा (दो प्रकार से), त्रेधा (तीन प्रकार से), चतुर्धा (चार प्रकार से), पञ्चधा(पाच प्रकार से), षोढा (छ प्रकार से), (देखो नि० १०४ पादटिप्पणी ३), सप्तधा (सात प्रकार से), अष्टधा (आठ प्रकार से), इत्यादि ।

(ग) विभाजक क्रियाविशेषण (Distributive Adverbs)—एकश (एक एक करके), द्विश (दो दो करके), त्रिश । (तीन तीन करके), पञ्चश (पाँच पाँच करके), इत्यादि ।

(घ) समूहार्थक सज्ञाशब्द (Aggregative nouns)—द्वय—विशेषण (दुहरा), द्वयम् (दोनो, जोडा), त्रय-त्रयी—विशेषण (तिहरा), त्रयम्-त्रयी—त्रितयम् (तीनो), चतुष्टय विशेषण—(चौहरा), चतुष्टयम् (चारो), पञ्चतय-विशे० (पचहरा), अष्टतय—विशे० (अठहरा), अष्टतयम् (आठो), दशतय—विशे० (दसहरा, दसगुना), दशतयम् (दसो, दशक), इत्यादि ।

सर्वनाम शब्द (Pronouns)

१०९ (अ) व्यक्तिवाचक सर्वनाम (Personal Pronouns)

अस्मद् शब्द

(समास मे एक० मे मद् और बहु० मे अस्मद्)

अहम् (मैं)	आवाम् (हम दोनो)	वयम्[1] (हम सब)	प्र०
माम् (मुझ को)	आवाम् (हम दोनो को)	अस्मान् (हम सब का)	द्वि०
मया (मैंने)	आवाभ्याम् (हम दोनो ने)	अस्माभि (हम सब ने)	तृ०
मह्यम् (मुझे)	आवाभ्याम्(हम दोनो को)	अस्मभ्यम् (हमे)	च०
मद् (मुझसे)	आवाभ्याम् (हम दोनो से)	अस्मद् (हमसे)	प०
मम (मेरा)	आवयो (हम दोनो का)	अस्माकम्[2] (हमारा)	ष०

१ वयम् के प्रभाव के कारण मूल यूषम् का परिवर्तित रूप यूयम् है ।

२ अस्माकम् और युष्माकम् ये वस्तुत षष्ठी बहु० के रूप नही हैं, अपितु सम्बन्धबोधक विशेषण अस्माक (हमारा) और युष्माक (तुम्हारा) के नपु० एक० के रूप हैं । इनका ही षष्ठी बहु० के रूप मे प्रयोग हुआ है । इसी प्रकार जमन भाषा मे सम्बन्धबोधक सवनाम Mein (मेरा), Dein (तेरा), Sein (उसका) का व्यक्तिवाचक सवनाम के षष्ठी के रूप मे प्रयोग होने लगा ।

मयि (मुझ मे)	आवयो (हम दोनो मे)	अस्मासु (हममे)	स०

युष्मद् शब्द

(समास मे एक० मे **त्वद्** और बहु० मे युष्मद्)

त्वम् (तू)	युवाम् (तुम दोनो)	यूयम्[1] (तुम सब)	प्र०
त्वाम् (तुझ को)	युवाम् (तुम दोनो को)	युष्मान् (तुम सबको)	द्वि०
त्वया (तूने)	युवाभ्याम् (तुम दोनो ने)	युष्माभि (तुम सबने)	तृ०
तुभ्यम् (तुझे)	युवाभ्याम् (तुम दोनो को)	युष्मभ्यम् (तुम्हे)	च०
त्वद् (तुझ से)	युवाभ्याम् (तुम दोनो से)	युष्मद् (तुम से)	प०
तव (तेरा)	युवयो (तुम दोनो का)	युष्माकम्[2] (तुम्हारा)	ष०
त्वयि (तुझ मे)	युवयो (तुम दोनो मे)	युष्मासु (तुम मे)	स०

(क) इन शब्दो के निम्नलिखित अनुदात्त रूप भी प्रयुक्त होते हे। इनका वाक्य के प्रारम्भ मे प्रयोग निषिद्ध है। द्वि० एक० मा, (मुझको), त्वा (तुझ को), च० ष० एक० मे (मुझे, मेरा), ते (तुझे, तेरा), द्वि० च० ष० द्विवचन —नौ (हम दोनो को, हम दोनो का), वाम् (तुम दोनो को, तुम दोनो का), द्वि० च० ष० बहु० न (हमे, हमारा), (लेटिन—nos), व (तुम्हे, तुम्हारा) (लेटिन—vos)।

(आ) सकेतात्मक सर्वनाम (Demonstrative Pronouns)

११० तद् (त) शब्द (वह) (समास मे तद्)। सर्वनाम शब्दो के रूप चलाने के लिए इसे आदश शब्द के रूप मे लिया जा सकता है।

	तद्—पु०			**नपु०**			**स्त्री०**		
प्र०	स[2]	तौ	ते	तद्	ते	तानि	सा	ते	ता
द्वि०	तम्	,,	तान्	,,	,,	,,	ताम्	,,	,,
तृ०	तेन	ताभ्याम्	तै	तेन	ताभ्याम्	तै	तया	ताभ्याम्	ताभि
च०	तस्मै	,,	तेभ्य	तस्मै	,,	तेभ्य	तस्यै	,,	ताभ्य
प०	तस्मात्	,,	,,	तस्मात्	,,	,,	तस्या	,,	,,
ष०	तस्य	तयो	तेषाम्[3]	तस्य	तयो	तेषाम्	,,	तयो	तासाम्[4]

१ देखो पृष्ठ ६९ पर पादटिप्पणी सख्या १।

२ देखो नि० ४८। स, सा, तद्=गाथिक—sa, so, that-a, इग्लिश्—that, लेटिन—is-tud।

३ लेटिन—is-torum

४ लेटिन—is-tārum

स०	तस्मिन्	तयो	तेषु	तस्मिन्	तयो	तेषु	तस्याम्	तयो	तासु

(क) त (वह) का ही एक समस्त शब्द एत (यह) हे। इसके सारे रूप पूर्णतया त के तुल्य चलते है। जैसे—

	पु० एक०	**स्त्री०** एक०	**नपु०** एक०
प्र०	एष (४८, ६७)	एषा	एतद्,
द्वि०	एतम्	एताम्	एतद्, इत्यादि।

१११ **इदम् शब्द—अयम्** (यह) के रूप चलाने मे दोनो मूल सवनाम-शब्द 'अ' और 'इ' का प्रयोग किया गया हे। यहाँ कुछ स्थानो पर इनका दुहरा रूप चला है।

	पु०			**नपु०**			**स्त्री०**		
प्र०	अयम्	इमौ	इमे	इदम्	इमे	इमानि	इयम्	इमे	इमा
द्वि०	इमम्	,,	इमान्	,,	,,	,,	इमाम्	,,	,,
तृ०	अनेन	आभ्याम्	एभि	शेष पु० के तुल्य।			अनया	आभ्याम्	आभि
च०	अस्मै	,,	एभ्य				अस्यै	,,	आभ्य
प०	अस्मात्	,,	,,				अस्या	,,	,,
ष०	अस्य	अनयो	एषाम्				,,	अनयो	आसाम्
स०	अस्मिन्	,,	एषु				अस्याम्	,,	आसु

११२—**अदस् शब्द—अदस्** (वह) का पु० स्त्री० प्रथमा एक० मे विचित्र रूप असो बनता है, नपु० प्र०१ मे अदस् (अद)। अन्य स्थानो मे इसका 'अमु' शब्द बनकर रूप चलता है। स्त्री० बहु० मे अमु के स्थान पर 'अमू' रहता है। स्त्री० मे द्वि० एक० तथा कुछ स्थलो पर द्विवचन मे भी अमू रहता हे। पु० बहु० मे द्वितीया को छोडकर अन्यत्र 'अमी' रहता है।

	पु०			**नपु०**			**स्त्री०**		
प्र०	असो	अमू	अमी	अद	अमू	अमूनि	असौ	अमू	अमू
द्वि०	अमुम्	,,	अमून्	,,	,,	,,	अमूम्	,,	,,
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभि	शेष पु० के तुल्य			अमुया	अमूभ्याम्	अमूभि
च०	अमुष्मै	,,	अमीभ्य				अमुष्यै	,,	अमूभ्य

प०	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्य	अमुष्या	अमूभ्याम्	अमूभि
ष०	अमुष्य	अमुयो	अमीषाम्	,,	अमुयो	अमूषाम्
स०	अमुष्मिन्	,,	अमीषु	अमुष्याम्	,,	अमूषु

(क) एक अनुदात्त अपूर्ण सर्वनाम शब्द **'एन'** (वह) है। इसके रूप निम्न-लिखित विभक्तियो मे चलते है—द्वितीया (सभी वचन), तृतीया (एक०), ष० स० द्विव०। जैसे—

	पु०			स्त्री०			नपु०		
द्वि०	एनम्	एनौ	एनान्	एनाम्	एने	एना	एनद्	एने	एनानि
तृ०	एनेन	—	—	एनया	—	—	एनेन	—	—
ष०	—	एनयो	—	—	एनयो	—	—	एनयो	—
स०	—	एनयो	—	—	एनयो	—	—	एनयो	—

(इ) प्रश्नवाचक सर्वनाम (Interrogative Pronoun)

११३ प्रश्नवाचक सवनाम शब्द **'क'** (कौन, क्या ?) के रूप पूर्णतया 'त' शब्द के तुल्य चलते है, केवल नपु० प्र० और द्वि० एक० मे किम् रूप होता है। जैसे—

	पु०			स्त्री			नपु०		
प्र०	क	कौ	के	का	के	का	किम्	के	कानि
स०	कस्मिन्	कयो	केषु	कस्याम्	कयो	कासु	कस्मिन्	कयो	केषु

(क) तद्धित मे 'क' शब्द का कि, कु या क रूप रहता है। जैसे—कियत् (कितना ?), कुत्र (कहाँ ?), कदा (कब ?)। समास मे प्रथम पद होने पर इसका प्राय 'किम्' शब्द के रूप मे प्रयोग होता है, कभी-कभी 'कु' भी। जैसे—किंरूप (विशेषण—किस रूप वाला ?), कुकर्मन् (नपु०, कैसा कार्य ? अर्थात् कुत्सित कार्य)।

(ई) सबन्धवाचक सर्वनाम (Relative Pronoun)

११४—सबन्धवाचक **य** (जो) शब्द के रूप ठीक त शब्द के तुल्य चलते है। जैसे—

	पु०			स्त्री०			नपु०		
प्र०	य	यौ	ये	या	ये	या	यद्	ये	यानि
द्वि०	यम्	,,	यान्	याम्	,,	,,	,,	,,	,,
च०	यस्मै	याभ्याम्	येभ्य	यस्यै	याभ्याम्	याभ्य	यस्मै	याभ्याम्	येभ्य

(उ) आत्मवाचक सर्वनाम (Reflexive Pronouns)

११५ (क) **स्वयम्** (स्वय) यह अव्यय है। (मूलरूप मे यह अयम् के तुल्य (प्रथमा एक० का रूप है)। यह किसी भी व्यक्ति या सख्या का बोध करा सकता है। जैसे—स्वयम्=मैं स्वय, वह स्वय, तुम स्वय। इसका सामान्यतया प्रथमा विभक्ति का अर्थ रहता है। किन्तु यह प्राय तृतीया और कभी कभी षष्ठी का भी अर्थ बताता है। यह प्राय 'अपने मन से' अर्थ भी बताता है।

(ख) **आत्मन्** (आत्मा) पुलिग शब्द है। इसके रूप ब्रह्मन् (६०, ३) के तुल्य चलते है। यह सभी व्यक्ति और सभी लिगो का बोधक सर्वनाम है। इसका प्रयोग एकवचन मे होता है।

(ग) **स्व शब्द**—स्व, स्वा, स्वम् (लेटिन-Suus) (अपना) यह आत्म-वाचक विशेषण है। इमके रूप सर्व १२० ख के तुल्य चलते है। यह तीनो पुरुषो और तीनो वचनो का बोधक है (मेरा, तेरा, उसका, हमारा, तुम्हारा, उनका)। इसका (आत्मन् शब्द के तुल्य) कतिपय विभक्तियो मे आत्म-वाचक सवनाम के तुल्य भी प्रयोग होता है। जैसे—स्व निन्दन्ति (वे अपने आपकी निन्दा करते है)।

(घ) **निज शब्द**—निज शब्द वस्तुत एक विशेषण है और इसका अर्थ है—निजी, स्वाभाविक, जन्मजात। इसका स्व शब्द के तुल्य प्राय आत्म-वाचक सर्वनाम विशेषण के रूप मे प्रयोग होता है।

(ऊ) स्वामित्वबोधक सर्वनाम (Possessive Pronouns)

११६ व्यक्तिवाचक सवनाम मद्, त्वद् आदि से ईय प्रत्यय लगाकर स्वा-मित्व-बोधक सर्वनाम बनते है। जैसे—मदीय (मेरा), त्वदीय (तेरा), अस्म-दीय (हमारा), युष्मदीय (तुम्हारा), तदीय (उमका, उनका)।

(क) षष्ठी-विभक्तयन्त रूप मम और तव से क प्रत्यय लगाकर भी स्वा-मित्व-बोधक सवनाम बनते है। जैसे—मामक (मेरा), तावक (तेरा)। (देखो नि० १०६, पादटिप्पणी २)। भवन् (आप) से भावत्क (आपका)।

(ऋ) समस्त सर्वनाम शब्द (Compound Pronouns)

११७ कतिपय सर्वनाम शब्दो के अन्त मे दृश्, दृश और दृक्ष शब्द जोड-कर निम्नलिखित समस्त सवनाम शब्द बनाए जाते है —तादृश्, तादृश,

	पु०			नपु०		
प्र०	पूर्व	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वा	पूर्वम्	पूर्वे	पूर्वाणि
द्वि०	पूर्वम्	,,	पूर्वान्	,,	,,	,,
प०	पूर्वस्मात् पूर्वात्	—	—	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	—	—
स०	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	—	—	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	—	—

(घ) अर्ध (आधा), अल्प (कम), कतिपय (कुछ), प्रथम (प्रथम), चरम (अन्तिम), द्वय (दुहरा), द्वितय (दुहरा) (इसीप्रकार य और तय अन्त वाले अन्य शब्द) के रूप सामान्य विशेषण शब्दो के तुल्य चलते है। इनके पु० प्र० ३ मे सर्वनाम शब्दो के तुल्य भी रूप बनते है। जैसे—चरम का पु० प्र० ३—चरमे, चरमा ।

(ङ) द्वितीय (दूसरा) और तृतीय (तीसरा) शब्दो के ङित् विभक्तियो (अर्थात् च० प० ष० स० के एक०) मे सर्वनामशब्दो के तुल्य भी रूप चलेगे। जैसे—पु० नपु० च० १—तृतीयाय, तृतीयस्मै, स० १—तृतीयायाम्, तृतीयस्याम्। पु० प्र० ३—तृतीया ।

(च) यदि ये सर्वनामज शब्द बहुव्रीहि समास (१८६) के अन्त मे होगे तो इनके रूप साधारण विशेषण शब्दो के तुल्य चलेगे।



अध्याय ४

धातुरूप (Conjugation)

१२१ सस्कृत की धातुओं मे दो प्रकार के तिङ् प्रत्यय लगते है—परस्मैपदी और आत्मनेपदी । **परस्मैपद** (सकर्मक, शब्दार्थ-दूसरे के लिए क्रियापद) को Active Voice कहते है । **आत्मनेपद** (स्वकर्मक, शब्दार्थ—अपने लिए क्रियापद) को Middle Voice कहते है । **कर्मवाच्य** मे आत्मनेपद वाले तिङ् प्रत्यय लगते है । कर्मवाच्य मे मुख्य अन्तर यह है कि सावधातुक लकारो (लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्) मे धातु मे य और लग जाता है । आर्धधातुक लकारो (शेष लकारो) मे आत्मनेपदी रूप चलेगे और लुङ् प्र०१ मे 'इ' अन्त वाला रूप बनेगा ।

(क) सस्कृत धातुओं के सभी लकारो के तीन वचन और तीन पुरुष मे रूप चलते है । **तीन वचन** है—एकवचन, (Singular), द्विवचन (Dual), बहुवचन, (Plural) । **तीन पुरुष है**—प्रथम पुरुष या अन्य पुरुष (Third Person), मध्यमपुरुष (Second Person), उत्तमपुरुष (First Person),

१२२ सस्कृत मे **५ काल** (**Tenses**) है । इनमे धातुओं के रूप चलते है । ये है —१ वर्तमान काल (Present) लट् (साथ ही लोट् और विधिलिङ् लकार भी), २ अपूर्णभूत या अनद्यतन भूत (Imperfect)—लङ्, ३ पूर्ण भूत या परोक्ष भूत (Perfect)—लिट्, ४ भूत काल (Aorist)—लुङ् (साथ ही एक प्रकार का लिङ्, जिसे आशीर्लिङ् कहते है), ५ भविष्यत् (Future)—लृट्, लुट् (साथ ही लृङ् लकार, जो हेतुहेतुमद् भविष्यत् या एक प्रकार से भूत-भविष्यत् है ।

वतमान, भूत और भविष्यत् कालो से सबद्ध कुछ कृदन्त रूप (Participles) भी है । इनके अतिरिक्त एक तुमुन्-प्रत्यय (Infinitive) (१६७) तथा किसी काल से असबद्ध धातुज सज्ञा शब्द है ।

(क) ग्रीक की अपेक्षा वेदोत्तरकालिक सस्कृत मे धातुरूपो की सख्या बहुत कम है । श्रेण्य(Classical)सस्कृत मे Pluperfect tense और Subjunctive

Mood नही है (लोट् उ० पु० मे इसके अवशेष मिलते है)। इसी प्रकार वतमानकाल को छोडकर अन्य कालो के आज्ञा या विधि सूचक लकार प्राप्य नही हे।

सार्वधातुक लकार (The Present System)

१२३ लिट्, लुङ्, लुट् लृट् और लृङ् मे तिङ् प्रत्यय धातु से साक्षात (या बीच मे ऊष्म वर्ण लगाकर) लगते है, किन्तु सावधातुक लकारो (लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्) मे एक विशेष अग (Stem) बन जाता हे। यह १० गणो के अनुसार १० प्रकार का होता है। अत भारतीय वैयाकरणो ने सभी धातुओ को १० गणो मे विभक्त किया है। दशम गण (चुरादिगण) वस्तुत प्रक्रियान्त गण है। चुरादिगण मे धातु से जो णिच् (अय्) प्रत्यय होता है, वह सभी स्थानो पर अपने णिच् को सुरक्षित रखता हे, जिस प्रकार अन्य प्रक्रियान्त धातुएँ (णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त, नामधातु) अपने प्रत्ययान्त रूप को सुरक्षित रखती है।

दस गण (The Ten Classes)

१२४ दस गण दो प्रकार के धातुरूपो मे विभक्त है। **प्रथम वर्ग** मे—भ्वादि, दिवादि, तुदादि और चुरादि गण है। इनका सार्वधातुक लकारो मे अग 'अ' अन्त वाला होता है और **इसमे कोई परिवर्तन नही होता है।**

द्वितीय वर्ग मे शेष सभी गण है। इनमे तिङ् प्रत्यय धातु से साक्षात् लगते है या उ, नु, ना, (नी, न्) विकरणो के बाद लगते है। **इनमे सार्वधातुक लकारो वाला अग परिवर्तनशील** होता है, कही **पित् (Strong)** और कही **ङित् (Weak)**।

(अ) गणो का प्रथम वर्ग (First Conjugation)

१२५ (१) **प्रथम गण या भ्वादिगण**—इसमे धातु के अन्तिम वर्ण के बाद 'अ' विकरण लगता है। इसमे धातु पर उदात्त स्वर रहता है, अत धातु के अन्तिम स्वर (ह्रस्व या दीर्घ) को तथा उपधा (उपान्त्य, अन्तिम व्यजन से पूर्ववर्ती स्वर) के ह्रस्व स्वर को गुण होता है। भू (होना) का सार्वधातुक लकारो मे अग 'भव' होता है। **बुध्** (जानना) का बोध।

(२) **षष्ठ गण या तुदादिगण**—इसमे धातु के अन्त मे उदात्त अ विकरण लगता है। धातु अनुदात्त रहती है, अत उसे गुण नही होता है। इस अ

विकरण से पूर्ववर्ती ऋ को इर् हो जाता है। इस प्रकार **तुद्** (दु ख देना) का तुद और **कॄ** (बखेरना) का किर अग होता है।

(३) **चतुर्थ गरण या दिवादिगरण**—इसमे धातु के अन्त मे य विकरण लगता हे। इसमे धातु पर उदात्त स्वर रहता है (किन्तु कुछ धातुओ मे गुण-रहित रूप रहता है, इससे प्रतीत होता है, कि मूलरूप मे य विकरण उदात्त रहा होगा)। जैसे—**नह्** (बाँधना) से नह्य, **दिव्** (खेलना) से दीव्य (१३३आ)।

(४) **दशम गरण या चुरादिगरण**—इसमे धातु के अन्त मे अय विकरण जुडता है। इससे पूववर्ती धातु के अन्तिम स्वर को वृद्धि होती है और उपधा के ह्रस्व स्वर को गुण होता है। जैसे—**चुर्** (चुराना) से चोरय। उपधा के अ को अधिकाश धातुओ मे आ हो जाता है। जैसे—**कम्** (चाहना) से कामय।

(आ) गणो का द्वितीय वर्ग (Second) Conjugation)

१२६ ये निम्नलिखित स्थानो पर **पित्** (Strong) होते है—

१ परस्मैपद मे लट्, लोट् और लङ् मे एकवचन।

२ परस्मैपद और आत्मनेपद मे लोट् का उत्तम पुरुष।

३ परस्मैपद लोट् प्रथम पुरुष एकवचन।

इन स्थानो पर धातु या प्रत्यय का स्वर उदात्त होता है, अत उसे गुण या वृद्धि होती है। शेष ङित् स्थानो पर तिङ् प्रत्यय पर उदात्त स्वर रहता है, अत धातु को गुण या वृद्धि नही होती।

(क) नवम, गण अर्थात् क्र्यादिगण मे विकरण ना लगता है। यह उदात्त होने पर ना रहता है और अनुदात्त होने पर नी या न्। सप्तम गण या रुधादिगण मे इसी प्रकार क्रमश न या न् रहता है।

१२७ (१) **द्वितीय गरण या अदादिगरण**—इसमे धातु से तिङ् प्रत्यय साक्षात् लगते है। पित् (Strong) वाले स्थानो पर यदि सभव होता तो धातु को गुण होता (२२५, १)। जैसे—**अद्** (खाना)—प्र १—अत्ति, म० १—अत्सि, उ० १—अद्मि। इ (जाना) एति, एषि, एमि। **लिह्** (चाटना)—लेढि (६९ ख) लेक्षि (६९ क), लेह्मि।

(क) धातुरूप चलाने की दृष्टि से द्वितीय (अदादि) और सप्तम (रुधादि) गण सबसे अधिक कठिन है, क्योकि इन गणो मे विविध व्यजनो से प्रारम्भ

होने वाले तिङ् प्रत्यय सीधे धातु से लगते है, अत पदान्तर्गत-सधि के नियम इन स्थानो पर लगते है।

(२)**तृतीय गण या जुहोत्यादिगण**—इसमे धातु को द्वित्व होता है और द्वित्व वाले अग से तिङ् प्रत्यय सीधे लगते है। यदि सभव हो तो धातु को पित् प्रत्ययो से पूर्व गुण होगा। जैसे—हु (हवन करना)—जुहोति (वह हवन करता है), जुहुत (वे दो हवन करते है), उ०१ जुहोमि, उ०३ जुहुम ।

(क) यङ् लुगन्त (१७२) धातुओ के रूप इस गण के तुल्य चलते है।

(३) **सप्तमगण या रुधादिगण**—इस गण मे तिङ् प्रत्यय धातु से साक्षात् लगते है। पित् प्रत्ययो वाले स्थानो पर धातु के अन्तिम व्यजन से पूर्व न लगेगा और ङित् स्थानो पर न्। जैसे—**युज्** (जोडना)—प्र० युनक्ति, युङ्क्त, युञ्जन्ति। उ०१—युनज्मि, उ०३—युञ्ज्म ।

(४) **पचमगण या स्वादिगण**—इसमे धातु के बाद 'नु' विकरण लगता है और पित् प्रत्ययो से पूर्व नु को गुण होकर नो होता है। जैसे—**सु** (निचोडना)—प्र० सुनोति, सुनुत । उ० सुनोमि, सुनुव, सुनुम ।

(५) **अष्टमगण या तनादिगण**—इसमे धातु के बाद 'उ' विकरण लगता है, उसे पित् प्रत्ययो से पूव गुण होकर ओ होता है। जैसे—**तन्** (फैलाना)—प्र० तनोति, तनुत । उ० तनोमि, तनुव ।

(क) **कृ** (करना) धातु को छोडकर इस गण की शेष सभी सात धातुएँ नकारान्त है। कृ धातु का सावधातुक लकारो मे अग अनियमित है। जैसे—प्र—१ करोति, उ०१ करोमि (१३४ उ)

(६) **नवमगण या क्र्यादिगण**—इसमे पित् स्थानो पर धातु के बाद 'ना' विकरण लगता है। ङित् स्थानो पर बाद मे व्यजन होगा तो 'नी' लगेगा और स्वर बाद मे होनेपर 'न्' लगेगा जैसे—**क्री** (खरीदना)—प्र०—क्रीणाति, क्रीणीत, क्रीणन्ति। उ० क्रीणामि, क्रीणीव, क्रीणीम ।

अडागम (The Augment)

१२८ लङ्, लुङ् और लृङ् लकारो मे धातु से पहले उदात्त **'अ'** का आगम होता है। इस अ को धातु के प्रारम्भिक स्वर के साथ वृद्धि हो जाती है (२३) जैसे **बुध्** (जानना)—लङ् प्र०१ अबोधत्। **उन्द्** (गीला करना)—लट् प्र०१

उनत्ति (गीला करता है), लङ् प्र० १—औनत् (उसने गीला किया), ऋ (जाना)—लट् प्र० १—ऋच्छति (वह जाता है), लङ् प्र० १—आच्छत् (वह गया)।

(क) निषेधाथक मा (मत) अव्यय के बाद लङ् और लुङ् लकारो मे धातु से पूववर्ती अ का लोप हो जाता है। तब धातु का प्रयोग आज्ञा अर्थ मे होता है। जैसा—मा कार्षीत्, मा करोत् (वह ऐसा न करे)।

द्वित्व कार्य (Reduplication)

१२६ सस्कृत मे पाच स्थानो पर धातुरूपो मे द्वित्व होता है —(१) जुहोत्यादि(तृतीय) गण मे सावधातुक लकारो के अग मे, (२) लिट् लकार मे, (३) लुङ् लकार के एक भेद मे, (४) सन् प्रत्ययान्त मे और (५) यङन्त तथा यङ् लुगन्त मे। इन पाचो मे प्रत्येक मे कुछ विशेष नियम लगते है, इनका 'द्वित्व के कुछ विशेष नियम' प्रकरण मे पृथक् वर्णन किया जाएगा (नि० १३०, १३५, १४६, १७०, १७३)। द्वित्व के सामान्य नियम निम्न-लिखित है —

द्वित्व के सामान्य नियम
(General Rules of Reduplication)

१ धातु के प्रथम एकाच् (अर्थात् वह अश जो प्रथम स्वर के साथ समाप्त होता है) को द्वित्व होता है। जैसे—बुध् > बुबुध्।

२ अभ्यास (द्वित्व हुए भाग का प्रथम अश) के महाप्राण वर्ण के स्थान पर उसी वग का अल्पप्राण वर्ण हो जाता है। जैसे—भिद् (काटना) > बिभिद्, धू (हिलाना) > दुधू।

३ कवग के स्थान पर समकक्ष चवर्ग होता है और ह् के स्थान पर ज् होता है। जैसे—कम् (प्रेम करना) > चकम्, खन् (खोदना) > चखन्, गम् (जाना) > जगम्, हस् (हँसना) > जहस्।

४ यदि धातु के प्रारम्भ मे अनेक व्यजन हैं तो केवल प्रथम व्यजन को द्वित्व होगा। जैसे—क्रुश् (चिल्लाना) > चुक्रुश्, क्षिप् (फेकना) > चिक्षिप्।

५ यदि धातु का प्रथम वर्ण ऊष्म (श्, ष्, स्) है और बाद मे कठोर व्यजन खर्, वर्ग के प्रथम और द्वितीय व्यजन) है तो कठोर व्यजन को ही द्वित्व होगा। जैसे—स्तु (स्तुति करना) > तुष्टु (नि० ६७), स्था (रुकना) >

तस्था, श्चुत् (चूना) > चुश्चुत्, स्कन्द् (उछलना) > चस्कन्द् । किन्तु स्मृ (याद करना) का सस्मृ होता है । इसमे म् कोमल वर्ण है ।

६ यदि धातु का अन्तिम या उपधा (उपान्त्य) का स्वर दीर्घ होगा तो उसे अभ्यास मे ह्रस्व स्वर हो जाएगा । जैसे—गाह् (प्रवेश करना) > जगाह्, क्री (खरीदना) > चिक्री, कूज् (कूजना) > चुकूज् ।

७ यदि धातु मे ए है तो उसे अभ्यास मे इ होगा और ओ तथा औ को उ होगा, यदि ए आदि अन्तिम वर्ण होगे तो नही । जैसे—सेव् (पूजा करना, सेवा करना) > सिषेव् (नि० ६७), ढौक् (पहुँचना) > डुढौक् ।

८ भारतीय वैयाकरणो ने ए, ऐ और ओ अन्तवाली धातुओ को सुविधा के लिए आकारान्त माना है और आकारान्त को ही द्वित्व किया जाता है । जैसे—गै (गाना) > जगौ (लिट् प्र० १, नि० १३६, ४) ।

जुहोत्यादि (तृतीय) गण के लिए द्वित्व के विशेष नियम

१३० ऋ और ॠ को अभ्यास मे इ हो जाता है । जैसे—भृ (धारण करना) > बिभर्ति, पॄ (पूरा करना) > पिपर्ति ।

तिङ् प्रत्यय (Terminations)

१३१ निम्नलिखित सारणी मे तिङ् प्रत्यय दिए गए है । ये सामान्यतया सभी धातुओ से सार्वधातुक लकारो (लट्, लोट्, लङ् विधिलिङ्) मे लगते है । मुख्य अन्तर केवल विधिलिङ् मे होता है । इसमे भ्वादिगण मे ए लगता है और अदादिगण मे 'या' या 'ई' लगता है । यदि निम्नलिखित बात स्मरण रखी जाए तो भ्रमनिवारण हो जाएगा—लट् मे ति, सि, मि आदि मुख्य तिङ् प्रत्यय होते है तथा लोट (कुछ अन्तर के साथ), विधिलिङ् और लङ् मे त्, स्, म् आदि गौण तिङ् प्रत्यय लगते है । शेष लकारो मे से लुट्, लृट् मे मुख्य तिङ् प्रत्यय लगते है तथा लुङ्, आशीर्लिङ् और लृङ् मे गौण तिङ् प्रत्यय लगते है । लिट् लकार मे परस्मैपद मे (कुछ परिवर्तनो के साथ) गौण तिङ् प्रत्यय लगते है और आत्मनेपद मे मुख्य तिङ् प्रत्यय लगते है ।

दोनो प्रकार के धातुरूपो मे अन्तर समझने के लिए यह आवश्यक है कि निम्नलिखित बातो को स्पष्टरूप से समझ लिया जाए । **प्रथम या अ-युक्त धातुरूप** मे (जैसा कि अकारान्त शब्द रूपो मे होता है) उदात्त स्वर कभी

भी तिङ् प्रत्ययो पर नही होता है, अपितु अग (धातु या विकरण युक्त धातु) पर रहता हे, अतएव अग मे कोई परिवतन नही होता है। इनमे उदात्तस्वर का प्रकार यह है —भ्वादि (प्रथम) गण और दिवादि (चतुथ) गण मे उदात्त स्वर धातु पर होता हे—और तुदादि (षष्ठ) गण तथा चुरादि (दशम) गण मे विकरण पर उदात्त स्वर होता है। द्वितीय या अ-रहित धातुरूप मे (जैसा कि परिवतन शील अग वाले शब्द रूपो मे होता है) पित् प्रत्ययो वाले (सबल) स्थानो पर धातु पर उदात्त स्वर रहता हे और अपित् प्रत्ययो वाले (निबल)स्थानो पर तिङ् प्रत्ययो पर उदात्त स्वर रहता है, इसलिए धातु अपने निर्बल रूप मे रहती है। अत **द्वितीय या अ रहित धातुरूप** मे सावधातुक लकारो के पित् (सबल) रूपो (१२६) को छोडकर शेष स्थानो पर **तिङ् प्रत्ययो पर ही उदात्त स्वर रहता हे।** यदि धातु से पूव अ (नि० १२८) नही होगा तो लङ् लकार मे भी यही नियम लगेगा।

परस्मैपद

	लट्	लङ्	विधिलिङ्		लोट्
			प्रथमधातु०	द्वितीय०	
प्र०१	ति	त्	एत्[४]	यात्	तु
२	तस्	ताम्	एताम्	याताम्	ताम्
३	अन्ति[१]	अन्[२]	एयुर्	युर्	अन्तु[१]
म०१	सि	स्	एस्	यास्	—(१),हि(२)[३]
२	थस्	तम्	एतम्	यातम्	तम्
३	थ	त	एत	यात	त
उ०१	मि[६]	अम्[५]	एयम्	याम्	आनि
२	वस्[६]	व[६]	एव	याव	आव
३	मस्[६]	म[६]	एम	याम	आम

आत्मनेपद

	लट्	लङ्	विधिलिङ्		लोट्
प्र०१	ते	त	एत[४]	ईत	ताम्
२	एते	एताम्	एयाताम्	ईयाताम्	एताम्

	आते	आताम्			आताम्
३	अन्ते	अन्त	एरन्	ईरन्	अन्ताम्
	अते	अत			अताम्
म० १	से	थास्	एथास्	ईथास्	स्व
२	एथे	एथाम्	एयाथाम्	ईयाथाम्	एथाम्
	आथे	आथाम्			आथाम्
३	ध्वे	ध्वम्	एध्वम्	ईध्वम्	ध्वम्
उ० १	ए	ए, इ	एय	ईय	ऐ
२	वहे[६]	वहि[६]	एवहि	ईवहि	आवहै
३	महे[६]	महि[६]	एमहि	ईमहि	आमहै

१ जुहोत्यादिगण तथा कुछ अन्य द्वित्व वाली धातुओ मे (देखो नि० १३४ अ ४, १७२) परस्मैपद मे लट् और लोट् प्र० ३ मे न् नही रहता। द्वितीय (अ-रहित) धातुरूप मे सर्वत्र आत्मनेपद मे लट्, लोट् और लड् प्र० ३ मे न् नही रहता।

२ जुहोत्यादिगण तथा कुछ अन्य द्वित्व वाली धातुओ मे (देखो नि० १३४ अ ४, १७२) परस्मैपद लड् के प्र० ३ मे अन् के स्थान पर उर (उ) लगता है। अदादिगण की आ—अन्तवाली तथा विद् (जानना) और द्विष् (द्वेष करना)धातुओ मे भी प्र० ३ मे उर् (उ) लगता है। उ से पूर्ववर्ती आ का लोप हो जाता है। यदि उ से पूर्ववर्ती ई, उ और ऋ होगे तो उन्हे गुण हो जाएगा। जैसे—भी (डरना) > अबिभयु, हु > अजुहवु, या > अयान्, अयु। अवेस्ता के समकक्ष रूपो की तुलना से स्पष्ट होता है कि इस उस् प्रत्यय का अन्तिम वर्ण स् न होकर व्युत्पत्ति की दृष्टि से र् है। यह उ परस्मैपद मे विधिलिड् प्र०३ और लिट् प्र०३ मे दृष्टिगोचर होता है।

३ प्रथम (अ-युक्त) धातुरूपो मे परस्मैपद मे लोट् म० १ मे अन्त मे कोई तिड् नही लगता है। (जैसा कि अकारान्त शब्दो के सबोधन एकवचन मे होता है)। अदादि (द्वितीय) गण मे पूर्ववर्ती स्वर होगा तो 'हि' लगेगा और यदि पहले व्यजन होगा तो 'धि' लगेगा। किन्तु—

(क) क्र्यादि (नवम) गण मे धि के स्थान पर आन लगता है। जैसे—मथ् > मथान।[1] किन्तु क्री का क्रीणीहि बनता है।

(ख) स्वादि (पचम) गण और तनादि (अष्टम) गण मे यदि उ से पूर्ववर्ती एक व्यजन होगा तो 'हि' का लोप हो जाएगा। जैसे—सु > सुनु। किन्तु आप् > आप्नुहि होगा।

(ग) जुहोत्यादि (तृतीय) गण मे हु धातु मे म०१ मे हि के स्थान पर धि लगता है। हु > जुहुधि।

४ प्रथम (अ-युक्त) धातुरूप की सारणी मे जो एत् आदि मे ए है, वह अन्तिम अ+ई=ए है। व्यावहारिक दृष्टि से यह माना जा सकता है कि ये= तिङ् ए से प्रारम्भ होते हैं।

५ प्रथम (अ-युक्त) धातु रूपो मे स्वर से प्रारम्भ होने वाले तिङ् प्रत्यय अन्तिम अ को हटाकर लगाने चाहिएँ। जैसे—अभवम्, भवेत्।

६ प्रथम (अ-युक्त) धातुरूपो मे व् और म् से पूर्ववर्ती अ को दीर्घ हो जाता है। जैसे—भवामि, भवाव।

धातुरूपावली

१३२ प्रथम (अ-युक्त) धातुरूप के अनुसार ही चार गणो (भ्वादि०, दिवादि०, तुदादि० चुरादि०) के रूप चलते है, अत उनके लिए एक धातु के रूप ही पर्याप्त होगे। स्वादि (पचम) गण और तनादि (अष्टम) गण के रूप भी इसी प्रकार चलते है। अदादि (द्वितीय) गण मे अद् धातु की अपेक्षा द्विष् धातु अन्तर्गत सधि तथा मबल (पित्) और निर्बल (अपित्) रूपो को अधिक स्पष्ट करती है, अत उदाहरण के रूप मे उसे ही अपनाया गया है।

---

१ लोट् लकार के इस 'आन' की उत्पत्ति सन्दिग्ध है। यह सम्भवत 'नान' के स्थान पर है। आन का आ सम्भवत क्र्यादिगण के विकरण ना का सक्षिप्त रूप है तथा वेद मे लोट् म० ३ मे त के स्थान पर लगने वाले तन का न यहाँ पर भी लगा है। अत आ+न=आन हो जाता है। वेद मे इ का इतन (लोट् म०३) रूप

धातुरूप—१ (first conjugation)

भ्वादिगण (first class) भू (होना)(विकरण-सहित रूप—भव् + अ = भव)

लट् (वर्तमान काल)

परस्मैपद				आत्मनेपद		
एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
भवति	भवत	भवन्ति	प्र०पु०	भवते	भवेते	भवन्ते
भवसि	भवथ	भवथ	म०पु०	भवसे	भवेथे	भवध्वे
भवामि	भवाव	भवाम	उ०पु०	भवे	भवावहे	भवामहे

लङ (भूतकाल, अनद्यतन)

अभवन्	अभवताम्	अभवन्	प्र०पु०	अभवत	अभवेताम्	अभवन्त
अभव	अभवनम्	अभवत	म०पु०	अभवथा	अभवेपाम्	अभवध्वम्
अभवम्	अभवाव	अभवाम	उ०पु०	अभवे	अभवावहि	अभवामहि

लोट् (आज्ञा अर्थ)

भवे ्	भवेताम्	भवेयु	प्र०पु०	भवेत	भवेयाताम्	भवेरन्
भवे	भवेतम्	भवेत	म०पु०	भवेथा	भवेयाथाम्	भवेध्वम्
भवेयम्	भवेव	भवेम	उ०पु०	भवै	भवावहै	भवामहै

विधिलिङ् (आज्ञा या चाहिए अर्थ)

भवेत्	भवेताम्	भवेयु	प्र०पु०	भवेत	भवेयाताम्	भवेरन्
भवे	भवेतम्	भवेत	म०पु०	भवेथा	भवेयाथाम्	भवेध्वम्
भवेयम्	भवेव	भवेम	उ०पु०	भवेय	भवेवहि	भवेमहि

धातुरूप—२ (Second conjugation)

अदादिगण (Second clsss) द्विष् (द्वेष करना) (सविकरणरूप—द्वेष, द्विष्)

द्वेष्टि (६४)	द्विष्ट	द्विषन्ति	प्र०पु०	द्विष्टे	द्विषाते	द्विषते
द्वेक्षि (६४क)	द्विष्ठ	द्विष्ठ	म०पु०	द्विक्षे	द्विषाथे	द्विड्ढ्वे(६४)
द्वेष्मि	द्विष्व	द्विष्म	उ०पु०	द्विषे	द्विष्वहे	द्विष्महे

लङ् (अनद्यतन, भूतकाल)

अद्वेट् (२८)	अद्विष्टाम्	अद्विष्ट	प्र०पु०	अद्विष्ट	अद्विषाताम् अद्विषत
अद्वेट् (२८)	अद्विष्टम्	अद्विष्ट	म०पु०	अद्विष्ठा	अद्विषाथाम् अद्विड्ढ्वम्
अद्वेषम्	अद्विष्व	अद्विष्म	उ०पु०	अद्विषि	अद्विष्वहि अद्विष्महि

लोट् (आज्ञा अर्थ)

परस्मैपद				आत्मनेपद	
द्वेष्टु	द्विष्टाम्	द्विषन्तु	प्र०पु०	द्विष्टाम्	द्विषाताम् द्विषताम्
द्विड्ढि(६४)	द्विष्टम्	द्विष्ट	म०पु०	द्विक्ष्व(६४क)	द्विषाथाम् द्विड्ढ्वम् (६४)
द्वेषाणि(६५)	द्वेषाव	द्वेषाम	उ०पु०	द्वेषै	द्वेषावहै द्वेषामहै

विधिलिङ् (आज्ञा या चाहिए अर्थ)

द्विष्यात्	द्विष्याताम्	द्विष्युः	प्र०पु०	द्विषीत	द्विषीयाताम् द्विषीरन्
द्विष्याः	द्विष्यातम्	द्विष्यात	म०पु०	द्विषीथाः	द्विषीयाथाम् द्विषीध्वम्
द्विष्याम्	द्विष्याव	द्विष्याम	उ०पु०	द्विषीय	द्विषीवहि द्विषीमहि

जुहोत्यादिगण (Third class) हु (यज्ञ करना) (सविकरणरूप—जुहो, जुहु)

लट् (वर्तमान काल)

जुहोति	जुहुतः	जुह्वति	प्र०पु०	जुहुते	जुह्वाते जुह्वते
जुहोषि	जुहुथः	जुहुथ	म०पु०	जुहुषे	जुह्वाथे जुहुध्वे
जुहोमि	जुहुवः	जुहुमः	उ०पु०	जुह्वे	जुहुवहे जुहुमहे

लङ् (भूतकाल, अनद्यतन)

अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवुः	प्र०पु०	अजुहुत	अजुह्वाताम् अजुह्वत
अजुहोः	अजुहुतम्	अजुहुत	म०पु०	अजुहुथाः	अजुह्वाथाम् अजुहुध्वम्
अजुहवम्	अजुहुव	अजुहुम	उ०पु०	अजुह्वि	अजुहुवहि अजुहुमहि

लोट् (आज्ञा अर्थ)

जुहोतु	जुहुताम्	जुह्वतु	प्र०पु०	जुहुताम्	जुह्वाताम् जुह्वताम्
जुहुधि	जुहुतम्	जुहुत	म०पु०	जुहुष्व	जुह्वाथाम् जुहुध्वम्
जुहवानि	जुहवाव	जुहवाम	उ०पु०	जुहवै	जुहवावहै जुहवामहै

विधिलिङ् (आज्ञा या चाहिए अर्थ)

जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयु	प्र०पु०	जुह्वीत	जुह्वीयाताम्	जुह्वीरन्
जुहुया	जुहुयातम्	जुहुयात	म०पु०	जुह्वीथा	जुह्वीयाथाम्	जुह्वीध्वम्
जुहुयाम्	जुहुयाव	जुहुयाम	उ०पु०	जुह्वीय	जुह्वीवहि	जुह्वीमहि

स्वादिगण (fifth class) सु (रस निकालना) (सविकरण रूप—सुनो, सुनु)

लट् (वर्तमान काल)

सुनोति	सुनुत	सुन्वन्ति	प्र०पु०	सुनुते	सुन्वाते	सुन्वते
सुनोषि	सुनुथ	सुनुथ	म०पु०	सुनुषे	सुन्वाथे	सुनुध्वे
सुनोमि	सुनुव	सुनुम	उ०पु०	सुन्वे	सुनुवहे	सुनुमहे

लङ् (भूतकाल, अनद्यतन)

असुनोत्	असुनुताम्	असुन्वन्	प्र०पु०	असुनुत	असुन्वाताम्	असुन्वत
असुनो	असुनुतम्	असुनुत	म०पु०	असुनुथा	असुन्वाथाम्	असुनुध्वम्
असुनवम्	असुनुव	असुनुम	उ०पु०	असुन्वि	असुनुवहि	असुनुमहि

लोट् (आज्ञा अर्थ)

सुनोतु	सुनुताम्	सुन्वन्तु	प्र०पु०	सुनुताम्	सुन्वाताम्	सुन्वताम्
सुनु	सुनुतम्	सुनुत	म०पु०	सुनुष्व	सुन्वाथाम्	सुनुध्वम्
सुनवानि	सुनवाव	सुनवाम	उ०पु०	सुनवै	सुनवावहै	सुनवामहै

विधिलिङ् (आज्ञा या चाहिए अथ)

सुनुयात्	सुनुयाताम्	सुनुयु	प्र०पु०	सुन्वीत	सुन्वीयाताम्	सुन्वीरन्
सुनुया	सुनुयातम्	सुनुयात	म०पु०	सुन्वीथा	सुन्वीयाथाम्	सुन्वीध्वम्
सुनुयाम्	सुनुयाव	सुनुयाम	उ०पु०	सुन्वीय	सुन्वीवहि	सुन्वीमहि

रुधादिगण (Seventh class)—रुध् (रोकना) (सविकरणरूप—रुणध्, रुन्ध्)

लट् (वतमान)

रुणद्धि	रुन्द्ध	रुन्धन्ति	प्र०पु०	रुन्द्धे	रुन्धाते	रुन्धते
रुणत्सि	रुन्द्ध	रुन्द्ध	म०पु०	रुन्त्से	रुन्धाने	रुन्द्ध्वे
रुणध्मि	रुन्ध्व	रुन्ध्म	उ०पु०	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे

लङ् (भूतकाल, अनद्यतन)

अरुणत्	अरुन्द्धाम्	अरुन्धन्	प्र०पु०	अरुन्द्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत

अरुणत्	अरुन्द्धम्	अरुन्द्ध	म०पु०	अरुन्द्धा	अरुन्धाथाम्	अरुन्ध्वम्
अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म	उ०पु०	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि

लोट् (आज्ञा अथ)

रुणद्धु	रुन्द्धाम्	रुन्धन्तु	प्र०पु०	रुन्द्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
रुन्द्धि	रुन्द्धम्	रुन्द्ध	म०पु०	रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्द्ध्वम्
रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम	उ०पु०	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै

विधिलिङ् (आज्ञा या चाहिए अर्थ)

रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्यु	प्र०पु०	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
रुन्ध्या	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात	म०पु०	रुन्धीथा	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्
रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम	उ०पु०	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि

क्र्यादिगण (Ninth class) क्री (खरीदना)

(सविकरणरूप—क्रीणा, क्रीणी, क्रीण्)

लट् (वर्तमान काल)

क्रीणाति	क्रीणीत	क्रीणन्ति	प्र०पु०	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
क्रीणासि	क्रीणीथ	क्रीणीथ	म०पु०	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
क्रीणामि	क्रीणीव	क्रीणीम	उ०पु	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे

लङ् (भूतकाल, अनद्यतन)

अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्	प्र०पु०	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणात
अक्रीणा	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत	म०पु०	अक्रीणीथा	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम	उ०पु०	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि

लोट् (आज्ञा अर्थ)

क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु	प्र०पु०	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत	म०पु०	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम	उ०पु०	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै

विधिलिङ् (आज्ञा या चाहिए अथ)

क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयु	प्र०पु०	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
क्रीणीया	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात	म०पु०	क्रीणीथा	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम	उ०पु०	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि

सार्वधातुक अग के कुछ अपवाद
(Irregularities of the Present Stem)
प्रथम (अ-युक्त) धातुरूप
(first conjugation)

१३३ (अ) **प्रथम या भ्वादिगण**—१ क्रम् (चलना), आ—चम् (आचमन करना), गुह् (छिपाना), ष्ठिव् (थूकना) मे धातु के स्वर को दीघ हो जाता है। जैसे—क्रम्>क्राम, आचम्> आचाम, गुह्>गूह, ष्ठिव्>ष्ठीव, मृज् (साफ करना) के ऋ को वृद्धि होकर मार्ज् होता है। मद् (बैठना) के अ को ई होकर सीद् हो जाता है। सद्>सीद (सि-सद के स्थान पर है, लेटिन—sīdo)।

२ गम् (जाना) और यम् (रोकना) को सार्वधातुक लकारो मे म् को छ् होने से गच्छ् और यच्छ् रूप होते है। (देखो नीचे इ २)

३ घ्रा (सूघना), पा (पीना), और स्था (रुकना) को द्वित्व होता है और अभ्यास (द्वित्व के प्रथम अश) मे इ हो जाता है। जैसे—घ्रा > जिघ्र्, पा > पिब् (लेटिन—bi-bo), स्था > तिष्ठ् (लेटिन—sisto)। ये धातुएँ मूलरूप मे जुहोत्यादि (तृतीय) गण मे थी। (अ १ मे पूर्वोक्त सद् धातु से इसको तुलना की जा सकती है)।

४ दश् (काटना), मन्थ् (मथना) और सञ्ज् (लगना, चिपकना) के नासिक्य का लोप हो जाता है। दश्>दश्, मन्थ्>मथ्, सञ्ज्>सज्।

५ दृश् (देखना) को पश्य, ध्मा (फूँकना) को धम् और म्ना (पढना) को मन् आदेश होते है।

(आ) **चतुर्थ या दिवादि गण**—१ तम् (थकना) भ्रम् (घूमना), शम् (रुकना), श्रम् (थकना), मद् (प्रसन्न होना) और दिव् (खेलना) के स्वर को दीर्घ हो जाता है। तम्>ताम्य, मद्>माद्य, दिव्>दीव्य।

२ भ्रश (गिरना) के न् का लोप हो जाता है। भ्रश्>भ्रश्य। व्यध् (बीधना) मे सप्रसारण होता है। व्यध्>विध्य। जन् (पैदा होना) को जा हो जाता है। जन्>जाय। (देखो १५४ क १)।

(इ) **षष्ठ या तुदादिगण**—१ कृत् (काटना), मुच् (छोडना), लुप्

(तोडना), लिप् (लीपना), विद् (पाना), सिच् (सीचना) मे न् का आगम होता है। कृत् > कृन्त, मुच् > मुञ्च, लुप् > लुम्प, लिप् > लिम्प, विद् > विन्द, सिच् > सिञ्च।

२ इष् (चाहना) धातु के ष् को छ् होता है और ऋ (जाना) धातु मे छ् का आगम होता है। इष् > इच्छ, ऋ > ऋच्छ (देखो नि० अ२)।

३ प्रछ् (पूछना), भ्रज्ज् (भूनना) और व्रश्च् (काटना) मे सम्प्रसारण होता है। प्रच्छ् > पृच्छ, भ्रज्ज् > भृज्ज, व्रश्च् > वृश्च।

द्वितीय (अ—रहित) धातुरूप
(Second Conjugation)

१३४ (अ) द्वितीय या अदादिगण

१ निम्नलिखित क्रियाओ मे धातु को अनियमित रूप से गुण या वृद्धि होती है—

(क) यु (जोडना) तथा अन्य सभी उ अन्त वाली धातुओ को हलादि (व्यजन से प्रारम्भ होने वाले) पित् (सबल) तिङ् से पूर्व गुण के स्थान पर वृद्धि होती है। यु > यौमि। किन्तु लङ उ० १ मे अयवम् होगा।

(ख) मृज् (साफ करना) को गुण के स्थान पर वृद्धि होती है। मृज > मार्ष्टि (लट् प्र० १) (देखो नि० ६३)। किन्तु प्र० ३ मे मृजन्ति होगा।

(ग) शी (सोना) आ० को अपित् (निर्बल) स्थानो पर गुण होता है और लट्, लोट्, लङ् मे प्र० ३ मे बीच मे र् का आगम होता है। शेते (प्र० १), शेरते (लट् प्र० ३), शेरताम् (लोट् प्र० ३), अशेरत (लङ् प्र०३)

२ निम्नलिखित क्रियाओ मे अनियमित रूप से धातु निबल हो जाती है—

(क) वश् (चाहना) धातु को अपित् स्थानो पर सम्प्रसारण हो जाता है। वष्टि (लट् प्र० १) नि० ६३ ख), उशन्ति (लट् प्र० ३)।

(ख) अस् (होना) धातु के प्रारम्भिक अ का विधिलिङ् तथा लट् और लोट् के सभी अपित् स्थानो पर लोप हो जाता है। जैसे—स्यात् (वि० लिङ् प्र० १), सन्ति (लट् प्र० ३)। इसका लोट् म० १ मे एधि रूप होता है। (यह Az dhı के स्थान पर है। अवेस्ता मे zdı है।) लङ् लकार मे प्र० और म० एक० मे तिङ् से पहले ई और लग जाता है। आसीत्, आसी।

(ग) हन् (मारना) पर० के न् का लोप हो जाता है, बाद मे अपित् त या थ हो तो। हन्ति (लट् प्र०१), किन्तु हत (प्र०२), हथ (म०३)। लट्, लोट् और लङ् प्र०३ मे धातु के अ का लोप हो जाता है और ह् को घ् हो जाता है। घ्नन्ति। (लट् प्र०३), घ्नन्तु (लोट् प्र०३), अघ्नन् (लङ् प्र०३)। इसका लोट् म०१ मे जहि रूप बनता है। (घ-हि को तालव्य करने पर झ-हि रूप होगा। उसके स्थान पर यह रूप है)।

३ निम्नलिखित क्रियाओ मे अनियमित रूप से किसी स्वर या अन्तस्थ का आगम होता है —

(क) अन् (सास लेना), जक्ष् (खाना), रुद् (रोना), श्वस् (सास लेना) और स्वप् (सोना) धातुओ मे य् को छोड कर अन्य हलादि तिङ् प्रत्यय बाद मे होने पर बीच मे इ का आगम होता है। किन्तु पर० लङ् के प्र० और म० एक० त् और स् से पहले ई या अ लगेगा रोदिति, रोदिमि। किन्तु रुदन्ति, रुद्याम्, लङ् प्र०१ मे अरोदीत् या अरोदत् बनेगा।

(ख) ईड् (आ०, स्तुति करना) और ईश् (आ०, स्वामी होना) धातुओ मे स् और ध् से प्रारम्भ होने वाले तिङ प्रत्यय (अर्थात् लट् और लोट् म०१, ३) बाद मे होने पर बीच मे इ का आगम होता है। ईशिषे, ईशिध्वे, ईशिष्व, ईशिध्वम्।

(ग) ब्रू (कहना) धातु मे पित् (सबल) हलादि तिङ् बाद मे होने पर बीच मे ई का आगम होता है। ब्रवीमि (किन्तु ब्रूम), अब्रवीत्।

(घ) अधि+इ (आत्मने०, पढना) मे अजादि तिङ् प्रत्यय बाद मे होने पर लट् मे ई को ईय् और लङ् मे ऐ (अडागम का अ+इ) को ऐय् हो जाता है। अधीये (लट् उ०१), किन्तु अधीषे। अध्यैयि (लङ् उ०१), किन्तु अध्यैथा (म०१)।

४ निम्नलिखित द्वित्व वाली धातुएँ यद्यपि अदादिगण मे उल्लिखित हैं, तथापि जुहोत्यादि (तृतीय) गण के तुल्य इनमे लट् और लोट् प्र०३ मे क्रमश अति और अतु लगते है तथा लङ् प्र०३ मे अन् के स्थान पर उर् (उ) लगता है—चकास् (चमकना), जक्ष् (घस् धातु के जघस् रूप से) (खाना), जागृ (जागना, गृ धातु का यङ् लुगन्त रूप), दरिद्रा (निर्धन होना) (दौडना अर्थ

बीच मे न विकरण लगता है और धातु के न् का लोप हो जाता हे, अनज्मि (लट् उ०१), भनज्मि (उ०१), हिनस्मि(उ० १)।

(उ) तनादि (अष्टम) गण

कृ (करना) धातु पित् सावधातुक तिङ् प्रत्ययो से पूव 'करो' हो जाती है और अपित् (निर्बल) स्थानो पर 'कुरु' होती है। म्, य् और व् बाद मे होगे तो कुरु के उ का लोप हो जाता है। करोमि, कुरुथ । किन्तु कुव, कुर्म, कुर्याम्। इस गण की अन्य धातुओ मे भी उ का लोप विकल्प से होता हे, बाद मे व् और म् हो तो, परि और सम् उपसर्गो के साथ कृ का समास होने पर कृ से पहले स् का आगम हो जाता है। परिष्कृत (अलकृत), सस्कृत (एकत्रित)। यह स् मौलिक नही है।

(ऊ) क्र्यादि (नवम) गण

१ धू (हिलाना), पू (पवित्र करना) और लू (काटना) को ह्रस्व हो जाता है। धुनामि, पुनामि, लुनामि।

२ ज्ञा (जानना) को जा और ग्रह् (पकडना) को गृह् हो जाता है — जानामि (लट् उ०१), गृह्णामि (लट् उ०१) (नि० ६५)।

३ बन्ध् (बाँधना) और मन्थ् (मथना) के न् का लोप हो जाता है। बध्नामि, मथ्नामि।

लिट् लकार (The Perfect Tense)

१३५ लिट् लकार धातु को द्वित्व करके या धातु के बाद आम् लगाकर बनाया जाता है। सामान्यतया धातुएँ प्रथम विधि को अपनाती है। णिच् आदि प्रत्ययान्त धातुएँ द्वितीय विधि को अपनाती है। चार धातुएँ ऐसी है, जिनके प्रथम स्वर दीर्घ है (१४० क, १), इनके लिट् के रूप आम् प्रत्यय लगाकर बनते हैं।

द्वित्व के विशेष नियम
(Special Rules of Reduplication)

१ अभ्यास (द्वित्व का प्रथम अश) के ऋ, ॠ और ऌ को अ हो जाता है। जैसे—कृ करना) > चकार, तॄ (पार करना) > ततार, क्लृप् (समर्थ होना) > चक्लृपे।

२ धातु के प्रारम्भिक अ और आ को आ होता है। जैसे—अद् (खाना) >आद, आप् (पाना) >आप (देखो नि० १०४ क, १)

३ यदि धातु का प्रथम स्वर इ है, तो उसे इ+इ=ई सवर्णदीर्घ होकर ई हो जाएगा। यदि धातु के इ को गुण या वृद्धि होगी तो अभ्यास और धातु के बीच मे य् का आगम हो जाएगा। जैसे—इष् (चाहना) >ईषु (लिट् प्र०३) (यह इ + इष्+उ के स्थान पर है)। किन्तु लिट् प्र०१ मे इयेष बनेगा।

४ जिन धातुओ के प्रारम्भ मे या मध्य मे य या व है और जिनमे सप्रसारण होता है(देखो नि० १३७, २ग), ऐसी धातुओ मे इ और उ के साथ ही धातु को द्वित्व होता है। जैसे—यज् (यज्ञ करना) > इयाज, वच् (कहना) >उवाच।

१३६ लिट् लकार परस्मैपद का एकवचन पित् (सबल) होता है, जैसा कि लट् और लङ परस्मैपद मे एकवचन पित् रहता है इसमे धातु पर उदात्त स्वर रहता है, लिट् के शेष प्रत्यय अपित् (निर्बल) है और इनमे तिङ् प्रत्ययो पर उदात्त स्वर रहता है।

परस्मैपद

	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	अ	अतुर्[1]	उर् (१३१,६)
म० (इ)	थ	अथुर्[1]	अ
उ०	अ	(इ) व	(इ) म

आत्मनेपद

	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	ए	आते	इरे
म०	(इ) षे	आथे	(इ) ध्वे
उ०	ए	(इ) वहे	(इ) महे

(क) द्रु (दौडना), श्रु (सुनना) स्तु (स्तुति करना), स्रु (बहना), कृ (करना), भृ (धारण करना), वृ (चुनना) और सृ (जाना) इन आठ धातुओ मे हलादि तिङ् प्रत्ययो से पहले इ नही लगता है। आत्मनेपद प्र०३ मे इन

१ अतुर् और अथुर् मे तुर् और थुर् लट के तस और थस्(प्र० २, म०२)के समकक्ष हैं,इनमे प्र०३ के उर् के सादृश्य पर उर् लगा है। अत तस्>तुर्, थस्>थर है।

धातुओ मे भी ई रहता है। शेष धातुओ मे हलादि प्रत्ययो से पहले इ लगता है।[1] परस्मैपद म०१ मे अन्य बहुत सी धातुओ स इ नही लगता है। आ अन्तवाली धातुओ मे थ से पहले इ विकल्प से लगता है। इ, ई और उ अन्त-वाली बहुत सी धातुओ से थ से पहले इ विकल्प से लगता है।

पित् (सबल) अग (The Strong Stem)

१ ह्रस्व स्वर के बाद यदि एक व्यजन होगा तो उसे एकवचन मे सर्वत्र गुण होगा। जैसे—इष् (चाहना) > इयेष, बुध् (जागना) > बुबोध्। किन्तु जीव् (जीना) का जिजीव् होगा।

२ अन्तिम स्वरो को प्र०१ मे वृद्धि होती है, म०१ मे गुण और उ०१ मे वृद्धि और गुण दोनो होते है। जैसे—इ (जाना) > इयाय। (प्र० १), इयेथ (म० १), इयाय, इयय (उ० १)। कृ (करना) > चकार (प्र० १), चकथ (म० १), चकार, चकर (उ० १)।

३ उपधा के अ को प्र० १ मे नित्य और उ०१ मे विकल्प से वृद्धि होती है। जैसे—हन् (मारना) > जघान (प्र० १), जघान, जघन (उ० १)।

४ आ अन्त वाली धातुओ (तथा ए ऐ ओ औ अन्तवाली धातुएँ, जिनको आ हो जाता है, नि० १२६,८) मे प्र०१ और उ०१ मे अन्त मे औ लगता है। म० १ मे आथ और इथ दोनो लगेगे (देखो नि० १३६ क)। जैसे—धा (रखना) > दधौ (प्र०१, उ० १), दधिथ, दधाथ (म० १)।

किन्तु ह्वा या ह्वे (पुकारना) के रूप हू धातु मानकर चलते है जुहाव (प्र०१) (देखो नि० १५४ क, ३)

अपित् (निर्बल) अग (The weak stem)

१३७ (१) इ, ई, उ, ऊ, और ऋ से युक्त धातुओ मे सन्धि-नियमो के अतिरिक्त अन्य कोई परिवतन धातु मे नही होता है। जैसे—बुध् > बुबुधिम, कृ > चकृम, स्तु > तुष्टुम।

---

१ यह 'इ' सभवत दा (देना) आदि धातुओ के अन्तिम आ के स्थान पर होने वाले इ से प्रारम्भ हुआ है और बाद मे अन्य धातुओ मे यह सयोजक स्वर के रूप मे प्रयुक्त होने लगा।

(क) यदि अन्तिम इ, ई और ऋ से पहले एक व्यजन हो और बाद मे कोई अजादि तिङ् हो तो इ ई को य् और ऋ को र् होगा। यदि एक से अधिक व्यजन पहले होगा तो इ ई को इय् और ऋ को अ‍्‌ होगा तथा उ ऊ को उव् और ऋ को अर् होगा। जैसे—नी (ले जाना) >निन्यु, श्रि (आश्रय लेना) >शिश्रियु, कृ (करना) >चक्रु, स्तृ (फैलाना) >तस्तरु, यु (जोडना) >युयुवु, कॄ (बखेरना) >चकरु।

(२) उपधा मे अ वाली तथा आ-अन्त वाली धातुओ के अ और आ निबल होते है।

(क) जिन धातुओ मे अ से पहले और बाद मे एक व्यजन होता है (जैसे पत् धातु) और जिनमे द्वित्व करने पर अभ्यास वाले अश मे कोई परिवर्तन नही होता है (महाप्राण वर्ण, कवर्ग और व् से प्रारम्भ होने वाली धातुओ को छोडकर), उनमे दोनो वर्णो को एक वर्ण हो जाता है और उनमे ए की मात्रा लग जाती है (लेटिन—(fac-io, fec-i)[१]। म० १ मे इ थ बाद मे होने पर भी यह नियम लगता है। (जब बिना इ के थ का प्रयोग होता है, तब सबल अग का प्रयोग होता है)। जैसे—पच (पकाना) >पेचतु (प्र० २), पेचु (प्र० ३), पेचिथ, पपक्थ (म० १), तन् (फैलाना) >तेनतु, तेनु, तेनिथ।

(ख) जन् (उत्पन्न होना) (१३९, २) तथा अ उपधा वाली एव कण्ठ्य वर्ण से प्रारम्भ होने वाली खन् (खोदना), गम् (जाना), घस् (खाना) और हन् (मारना), इन चार धातुओ मे धातु के अ का लोप हो जाता है। जैसे—जन् >जज्ञे (आत्मने० प्र०१), जगाम (पर० प्र०१), किन्तु जग्मु (प्र०३), जघास (प्र० १), किन्तु जक्षु (प्र०३), जघान (प्र०१), किन्तु जघ्नु (प्र० ३) (देखो १३४, २ ग)।

(ग) व से प्रारम्भ होने वाली वच् (कहना), वद् (कहना), वप् (बोना), वस् (रहना), वह् (ले जाना), इन पॉच धातुओ मे तथा यज् (यज्ञ करना),

---

१ यह ए स्वर सद (बैठना) आदि के लिट् के निबल अग sa-z-d (अवेस्ता hazd) आदि के सादृश्य पर होता है। इन स्थानो पर az को ए हो जाता है। (देखो १३४, २ ख और १३३ अ १)

व्यध् (बीधना), स्वप् (सोना) और ग्रह् (पकडना), इन धातुओ मे सप्रसारण होता है। प्रथम पाँच धातुओ मे उ+उ=ऊ (नि० १३५, ४) एकादेश होता है तथा षष्ठ यज् मे इ+इ=ई एकादेश होता है। जैसे—उवाच (प्र०१), किन्तु ऊचु (प्र० ३, उ+उचु के स्थान पर), इयाज (प्र०१), किन्तु ईजु (प्र०३, इ+इजु के स्थान पर), सुष्वाप (प्र०१, नि० ६७), किन्तु सुषुपु (प्र०३), जग्राह (प्र० १), किन्तु जगृहु (प्र०३)।

(घ) आकारान्त धातुओ के आ का लोप अपित् (निबल) तिडो मे नित्य होता है और पर० म०१ मे विकल्प से (देखो नि० १३६ क और (१३८, ३)।

(लिट् लकार के द्वित्व वाले धातुरूप
(Paradigms of the Reduplicated Perfect)

१३८ (१) तुद् (दु ख देना), पित् अग—तुतोद्, अपित् अग—तुतुद्।

परस्मैपद

प्र०	तुतोद	तुतुदतु	तुतुदु
म०	तुतोदिथ	तुतुदथु	तुतुद
उ०	तुतोद	तुतुदिव	तुतुदिम[1]

आत्मनेपद

प्र०	तुतुदे	तुतुदाते	तुतुदिरे
म०	तुतुदिषे	तुतुदाथे	तुतुदिध्वे
उ०	तुतुदे[2]	तुतुदिवहे	तुतुदिमहे

२ कृ (करना), पित् अग-चकर्, चकार्, अपित्-चक्र, चक्र्

परस्मैपद

प्र०	चकार	चक्रतु	चक्रु
म०	चकर्थ	चक्रथु	चक्र
उ०	चकार, चकर	चकृव	चकृम

१ लैटिन—tu-tud-i mus

२ ले०—tu-tud-i

आत्मनेपद

प्र०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
म०	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
उ०	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

३ **धा (रखना)**, पित्—दधा, अपित्—दध् ।

परस्मैपद

प्र०	दधौ	दधतु	दधु
म०	दधिथ, दधाथ	दधथु	दध
उ०	दधौ	दधिव	दधिम

आत्मनेपद

प्र०	दधे	दधाते	दधिरे
म०	दधिषे	दधाथे	दधिध्वे
उ०	दधे	दधिवहे	दधिमहे

४ **नी (ले जाना)**, पित् निने, निनै, अपित्—निनी ।

परस्मैपद

प्र०	निनाय	निन्यतु	निन्यु
म०	निनयिथ, निनेथ	निन्यथु	निन्य
उ०	निनाय, निनय	निन्यिव	निन्यिम

आत्मनेपद

प्र०	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
म०	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिध्वे
उ०	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे

५ **स्तु (स्तुति करना)**, पित्-तुष्टो, तुष्टौ, अपित् तुष्टु ।

परस्मैपद

प्र०	तुष्टाव	तुष्टुवतु	तुष्टुवु
म०	तुष्टोथ	तुष्टुवथु	तुष्टुव
उ०	तुष्टाव, तुष्टव	तुष्टुव	तुष्टुम

आत्मनेपद

प्र०	तुष्टुवे	तुष्टुवाते	तुष्टुविरे
म०	तुष्टुषे	तुष्टुवाथे	तुष्टुध्वे
उ०	तुष्टुवे	तुष्टुवहे	तुष्टुमहे

६ **तन्** (फैलाना), पित्-ततन्, ततान्, अपित्-तेन् ।

परस्मैपद

प्र०	ततान	तेनतु	तेनु
म०	तेनिथ, ततन्थ	तेनथु	तेन
उ०	ततान, ततन	तेनिव	तेनिम

आत्मनेपद

प्र०	तेने	तेनाते	तेनिरे
म०	तेनिषे	तेनाथे	तेनिध्वे
उ०	तेने	तेनिवहे	तेनिमहे

७ **गम्** (जाना), पित्-जगम्, जगाम्, अपित्-जग्म् ।

परस्मैपद

प्र०	जगाम	जग्मतु	जग्मु
म०	जगन्थ	जग्मथु	जग्म
उ०	जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम

आत्मनेपद

प्र०	जग्मे	जग्माते	जग्मिरे
म०	जग्मिषे	जग्माथे	जग्मिध्वे
उ०	जग्मे	जग्मिवहे	जग्मिमहे

८ **वच्** (कहना), पित्-उवच्, उवाच्, अपित्-ऊच् ।

परस्मैपद

प्र०	उवाच	ऊचतु	ऊचु
म०	उवचिथ, उवक्थ	ऊचथु	ऊच
उ०	उवाच, उवच	ऊचिव	ऊचिम

आत्मनेपद

प्र०	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे

म०	ऊचिषे	ऊचाथे	ऊचिध्वे
उ०	ऊचे	ऊचिवहे	ऊचिमहे

अपवाद-नियम (Irregularities)

१३९ (१) भज् (बाँटना) धातु यद्यपि महाप्राणवर्ण से प्रारम्भ होती है, तथापि नियम १३७ (२, क) के तुल्य इसमे भी अभ्यास (द्वित्व के प्रथम अश) का लोप और भ के अ को ए होता है, जैसे—प्र०१ मे बभाज, किन्तु प्र०३ मे भेजु । इसी प्रकार राज् (चमकना)(उपधा मे आ है) धातु को नित्य तथा त्रस् (डरना, प्रारम्भ मे २ व्यजन है) और भ्रम् (घूमना, प्रारम्भ मे महाप्राण और दो व्यजन है) को विकल्प से ए होता है और अभ्यास-लोप होता हे । जैसे—प्र०१ आत्मने० राज् > रेजे, त्रस् > तत्रसु , त्रेसु (प्र०३), भ्रम् > बभ्रमु , भ्रेमु (प्र०३) ।

(२) यम् (पहुँचना) और वम् (कै करना) धातुएँ यद्यपि य और व से प्रारम्भ होती है, तथापि इनमे सप्रमारण नही होता है और नि० १३७ (२, क) के तुल्य अभ्यास-लोप और ए होता है। यम् > ययाम (प्र०१), किन्तु येमे (आ०, प्र०१), वम् > ववाम (प्र०१), किन्तु वेमु (प्र०३)। वस् (आ०, पहनना) धातु मे न सप्रसारण होता है और न ए ही होता है। वस् > ववसे ।

(३) विद् (जानना) मे बिना द्वित्व के लिट् का रूप बनता है और लट् के तुल्य अर्थ होता है । वेद (उ०१, मैं जानता हूँ) (जर्मन—weiss), वेत्थ (म०१), वेद (प्र०१), विद्म (उ० ३, जर्मन—wissen), विद (म० ३), विदु (प्र० ३) ।

(४) चि (इकट्ठा करना), जि (जीतना), हि (भेजना) और हन् (मारना) मे धातु को मूल कवर्ग वर्ण हो जाता है। चि > चिकाय, जि > जिगाय, हि > जिघाय, हन् > जघान (देखो नि० १३७, २ ख) ।

(५) अह् (कहना) अपूर्ण धातु है और इसके रूप प्रथम पु० १, २, ३ और म० १, २ मे ही चलते है। प्र०—आह, आहतु , आहु , म०—आत्थ, आहथु ।

(६) अश् (पहुँचना) मे अभ्यास मे आन् रहता है और धातु के अनुस्वार

सहित स्वर अ को द्वित्व होता है, किन्तु अपित् स्थानो पर धातु के अनुस्वार का लोप हो जाता है। जैसे—पर० प्र०१ आनश, आ० प्र०३—आनशिरे। अच् (पूजा करना) मे भी इसी के अनुकरण पर अभ्यास मे आन् रहता है। अच् >आनच (प्र०१)।

(७) भू (होना) मे दो अनियमितताएँ है—(१) अभ्यास मे ऊ के स्थान पर अ रहता है, (२) धातु मे सर्वत्र ऊ बना रहता है।

प्र०	बभूव	बभूवतु	बभूवु
म०	बभूविथ, बभूथ	बभूवथु	बभूव
उ०	बभूव	बभूविव	बभूविम

आम् प्रत्ययान्त लिट् (Periphrastic Perfect)

१४० जिन धातुओ मे द्वित्व नही होता है, उनमे भाववाचक स्त्रीलिग शब्द का द्वितीया एक० का सुप् आम् लग जाता है और उसके बाद कृ (करना), अस् (होना) और भू (होना) के लिट् के रूप लग जाते है। यह रूप सकर्मक कृ (करना) धातु के सयोग से प्रारम्भ हुआ। जैसे—गमयाचकार (उसने जाने का काम किया, अर्थात् वह गया)। किन्तु श्रेण्य सस्कृत मे आम्-प्रत्ययान्त के बाद अस् धातु के लिट् का प्रयोग अधिक मिलता है, आम् के बाद कृ और भू का प्रयोग कम मिलता है, आम्-प्रत्ययान्त लिट् का प्रयोग अधिकाशत चुरादिगणी णिच्, प्रेरणार्थक णिच् और नामधातु णिच्(अय) के बाद मिलता है। जैसे—बोधयामास (उसने जगाया)। सन् और यङ् प्रत्ययान्त के बाद आम् वाले रूप बहुत ही कम मिलते है।

(क) निम्नलिखित कुछ धातुओ से आम्-प्रत्ययान्त लिट् बनते है —

(१) दीर्घ स्वर से प्रारम्भ होने वाली आस् (बैठना), ईक्ष् (देखना), उज्झ् (छोडना) और एध् (समृद्ध होना), इन चार धातुओ से। जैसे—आस् >आसा चक्रे (वह बैठा)

(२) द्वित्व हुई धातु चकास् (चमकना) और जागृ (जागना) (यह वस्तुत यङ्लुगन्त धातु है, नि० १३४ अ ४) धातु से। जैसे—चकास् >चकासा चकार, जागृ >जागरामास।

(३) भृ (धारण करना) तथा रामायण और महाभारत मे नी (ले जाना)

एव ह्वे (पुकारना) से विकल्प से आम्-प्रत्यय लगता है। भृ > बिभरा बभूव, बभार, (उसने धारण किया), (आ+) नी > (आ) नयामाम, निनाय (वह लाया), ह्वे > ह्वयामास, जुहाव (उसने पुकारा)।

आम्-प्रत्ययान्त धातुरूप
(Paradigm of the Periphrastic Perfect)

परस्मैपद

प्र०	बोधयामास	बोधयामासतु	बोधयामासु
म०	बोधयामासिथ	बोधयामासथु	बोधयामास
उ०	बोधयामास	बोधयामासिव	बोधयामासिम

लुङ् (Aorist)

१४१ ग्रीक के तुल्य सस्कृत मे भी दो प्रकार के लुङ् है। एक वर्ग मे धातु और तिङ् प्रत्ययो के बीच मे स् (ऊष्म वर्ण) लगाया जाता है और दूसरे वग मे धातु और तिङ् प्रत्ययो के बीच मे सयोजक अ लगाया जाता है या सयोजक अ के बिना ही रूप बनता है। दोनो वग के लुङ् मे धातु से पहले अ लगता है और इम अ पर उदात्त स्वर रहता है। इनमे गोण तिङ् प्रत्यय लगते है। प्रथम वग के लुङ् के चार भेद है और द्वितीय वग के तीन। इस प्रकार लुङ् के सात भेद होते है।

लुङ् का प्रथम वर्ग (first Aorist)

(क) **प्रथम भेद** मे धातु से पहले अ लगेगा और धातु तथा तिङ् के बीच मे स प्रत्यय लगेगा। इसके रूप भ्वादिगणी धातु के लङ् लकार (अभवत्) के तुल्य चलेगे। आत्मनेपद मे प्र०२, म०२ और उ०१ मे द्विष् के लङ् के तुल्य रूप चलेगे, अन्यत्र भ्वादिगण के तुल्य। यह स प्रत्यय श् और ह् अन्त वाली) इस ह् को क् होकर क्+स=क्ष होता है, देखो नि० ६३ ख, ६९ क) कुछ थोडी ही धातुओ से होता है, जिनकी उपधा मे इ, उ या ऋ होता है। इस इ उ या ऋ मे कोई परिवर्तन नही होता है। जैसे—दिश् (बताना) > अदिक्षत् (प्र० १)। लुङ् का यह भेद ग्रीक के लुङ् के प्रथम भेद से मिलता है। (लेटिन-dixi-t)।

परस्मैपद

प्र०	अदिक्षत्	अदिक्षताम्	अदिक्षन्
म०	अदिक्ष	अदिक्षतम्	अदिक्षत
उ०	अदिक्षम्	अदिक्षाव	अदिक्षाम

आत्मनेपद

प्र०	अदिक्षत	अदिक्षाताम्	अदिक्षन्त
म०	अदिक्षथा	अदिक्षाथाम्	अदिक्षध्वम्
उ०	अदिक्षि	अदिक्षावहि	अदिक्षामहि

(ख) इसी प्रकार दुह् (दुहना) धातु के रूप चलते है। इसका अग अधुक्ष (नि० ५५) होता है। जैसे—अधुक्षम् (पर० उ०१), अधुक्षि (आ० उ० १)।

१४२ प्रथम वग के अन्य तीन भेदो मे धातु से पहले अ लगता है और बाद मे स्, इष् और सिष् प्रत्यय क्रमश लगते है। इनके रूप अदादिगणी धातु के लड् के तुल्य (जैसे—द्विष् > अद्वेषम्) चलते है। कुछ आकारान्त धातुओ से पर० मे ही सिष् प्रत्यय लगता है, धातु मे कोई परिवर्तन नही होता है। स् और इष् प्रत्यय आ भिन्न अजन्त और हलन्त धातुओ से होते है। दोनो प्रकार के रूपो मे पर० मे सर्वत्र धातुओ को वृद्धि होती है। (इष्-प्रत्यय वाले रूपो मे उपधा के स्वर को वृद्धि न होकर गुण होगा)। आत्मनेपद मे सर्वत्र गुण होगा (स्—प्रत्ययवाले रूपो मे उपधा के स्वर और अन्तिम ऋ मे कोई परिवर्तन नही होता है)। इन तीनो भेदो मे पर० प्र०१ मे ईत् और म०१ मे ईस् लगता है। प्र०३ मे इनमे उर् लगता है।

द्वितीय (या स्) भेद (Second or S-form)

१४३ (१) **नी (लेजाना)**, अजन्त धातु का उदाहरण —

परस्मैपद

प्र०	अनैषीत्	अनैष्टाम्	अनैषु
म०	अनैषा	अनैष्टम्	अनैष्ट
उ०	अनैषम्	अनैष्व	अनैष्म

आत्मनेपद

प्र०	अनेष्ट	अनेषाताम्	अनेषत
म०	अनेष्ठा	अनेषाथाम्	अनेढ्वम् (६६ आ २)
उ०	अनेषि	अनेष्वहि	अनेष्महि

(२) छिद् (काटना), हलन्त धातु का उदाहरण —

परस्मैपद

प्र०	अच्छैत्सीत्	अच्छैत्ताम् (६६ आ २)	अच्छैत्सु
म०	अच्छैत्सी	अच्छैत्तम् (६६ आ २)	अच्छैत्त (६६ आ २)
उ०	अच्छैत्सम्	अच्छैत्स्व	अच्छैत्स्म

आत्मनेपद

प्र०	अच्छित्त (६६ आ २)	अच्छित्साताम्	अच्छित्सत
म०	अच्छित्था (६६ आ २)	अच्छित्साथाम्	अच्छिद्ध्वम् (६६ आ २)
उ०	अच्छित्सि	अच्छित्स्वहि	अच्छित्स्महि

(क) ऋ अन्तवाली कृ (करना) धातु के रूप भी इसी प्रकार चलते है — पर० अकार्षीत् (प्र०१), अकार्षी (म०१), अकार्षम् (उ०१) आदि। आत्मने० अकृत (प्र०१), अकृथा (म०१), अकृषि (उ० १)। अकृत और अकृथा, ये दोनो रूप वस्तुत स्-भेद के उदाहरण नही है। ये स्-रहित वर्ग (Root Aorist, १४८) के द्वितीय भेद से गृहीत है। इनमे आत्मनेपद मे गुण नही होता है।

स्—भेद के अपवाद-नियम
(Irregularities of the S-form)

१४४ (१) (क) स् प्रत्यय से पूर्ववर्ती धातु के अन्तिम न् और म् को अनुस्वार हो जाता है (देखो नि० ६६ अ २)। जैसे—मन् (सोचना) > अमस्त (प्र० १)। रम् (प्रसन्न होना) > अरस्त (प्र०१, नि० ४२ आ १)। (ख) वस् (रहना) के स् को त् हो जाता है। वस् > अवात्सीत् (प्र०१, नि० ६६ आ १)।

(२) ध्वम् प्रत्यय को ढ्वम् हो जाता है, यदि उससे पूर्ववर्ती स् का लोप

हुआ हो। यह स् यदि रहता तो ष् होकर रहता (नि० ६६ आ २)। जैसे—नी > अनेढ्वम् (अ-ने ष्-ध्वम् के स्थान पर)। कृ > अकृढ्वम्। अ कृ-ष्-ध्वम् के स्थान पर।

(३) (उ०) दा (देना), धा (रखना) और स्था (रुकना) के आ को इ हो जाता है, आत्मनेपदी तिङ् बाद मे हो तो (देखो नि० १३६ अ, टिप्पणी २)। परस्मैपद मे इनमे द्वितीय वग के तिङ् प्रत्यय लगते है। (नि० १४८)। जैसे—दा > अदित (प्र०१), अदिथा (म०१) (नि० १४३ क), अदिषि (उ० १), अदिष्वहि (उ०२) आदि।

(४) दृश् (देखना), सृज् (बनाना) और स्पृश् (छूना) धातुओ मे ऋ को वृद्धि और वर्ण-विपयय से परस्मैपद मे 'रा' हो जाता हे। जैसे—सृज > अस्राक्षीत् (प्र०१) (नि० ६३ क, टिप्पणी २), अस्राष्टाम् (प्र० २, नि० ६३ क, ६६ आ २), अस्राक्षु (प्र०३)। आत्मने० असृष्ट (प्र०१), असृष्ठा (म० १), असृक्षि (उ० १) आदि।

(५) दह् (जलाना) और रुध् (रोकना) धातुओ मे कुछ सन्धि नियम (नि० ६९ क, ६२ ख) लगते हे, अत इनके लुङ् के रूप कुछ कठिन है। जैसे—

दह् धातु (पर०)

प्र०	अधाक्षीत	अदाग्धाम्	अधाक्षु
म०	अधाक्षी	अदाग्धम्	अदाग्ध
उ०	अधाक्षम्	अधाक्ष्व	अधाक्ष्म

आत्मनेपद

प्र०	अदग्ध	अधक्षाताम्	अधक्षत
म०	अदग्धा	अधक्षाथाम्	अधग्ध्वम् (६२ क)
उ०	अधक्षि	अधक्ष्वहि	अधक्ष्महि

रुध् धातु—पर०

प्र०	अरौत्सीत्	अरौद्धाम्	अरौत्सु
म०	अरौत्सी	अरौद्धम्	अरौद्ध
उ०	अरौत्सम्	अरौत्स्व	अरौत्स्म

आत्मनेपद

प्र०	अरुद्ध	अरुत्साताम्	अरुत्सत
म०	अरुद्धा	अरुत्साथाम्	अरुद्ध्वम्
उ०	अरुत्सि	अरुत्स्वहि	अरुत्स्महि

तृतीय या इष्-भेद (Third or is-form)

१४५ इस भेद मे और स्-भेद मे अन्तर केवल यह है कि इसमे स् से पहले सयोजक 'इ' लग जाता है। इस 'इ' के कारण स् को ष् होकर इष् हो जाता है (नि० ६७)। प्र०१ और म०१ के अन्त्यावयव क्रमश ईत् और ईस् (इष्+त् और इष्+स् के स्थान पर, देखो नि० २८, २५०)। श्रेण्य सस्कृत मे इष्-भेद वाली परस्मैपदी अजन्त धातु सभवत कोई नही है, जिसका प्रयोग मिलता हो। प्राचीन सस्कृत मे केवल एक पू (पवित्र करना) धातु है, जिसके दोनो पदो मे इष्-भेद वाले रूप प्राप्त होते हे। अत दोनो पदो के धातुरूप के उदाहरणार्थ उसे ही अपनाया गया है।

पू धातु—परस्मैपद

प्र०	अपावीत्	अपाविष्टाम्	अपाविषु
म०	अपावी	अपाविष्टम्	अपाविष्ट
उ०	अपाविषम्	अपाविष्व	अपाविष्म

आत्मनेपद

प्र०	अपविष्ट	अपविषाताम्	अपविषत
म०	अपविष्ठा	अपविषाथाम्	अपविढ्वम् (१४४, २)
उ०	अपविषि	अपविष्वहि	अपविष्महि

(क) बुध् (जानना), हलन्त धातु का एक उदाहरण है। इसमे पर० मे वृद्धि नही होती है (नि० १४२)।

बुध् धातु—परस्मैपद

प्र०	अबोधीत्	अबोधिष्टाम्	अबोधिषु
म०	अबोधी	अबोधिष्टम्	अबोधिष्ट
उ०	अबोधिषम्	अबोधिष्व	अबोधिष्म

आत्मनेपद

प्र०	अबोधिष्ट	अबोधिषाताम्	अबोधिषत
म०	अबोधिष्ठा	अबोधिषाथाम्	अबोधिढ्वम् (१४४, २)
उ०	अबोधिषि	अबोधिष्वहि	अबोधिष्महि

(ख) मद् (प्रसन्न होना) और वद् (बोलना) धातुओ को परस्मैपद मे वृद्धि होती है। जैसे—अमादिषु (प्र० ३), अवादीत् (प्र०१)।

चतुर्थ या सिष्-भेद (Fourth or Sis-form)

१४६ इष्-भेद से इसमे अन्तर यह है कि इसमे इष् से पहले एक स् और लग जाता है। इसके परस्मैपद मे ही रूप चलते है। आ अन्त वाली धातुओ मे ही यह भेद लगता है। ऐमी धातुएँ सख्या मे ६ से अधिक नही है। उदाहरण के रूप मे 'या' (जाना) धातु ली जा सकती है।

या धातु— परस्मैपद

प्र०	अयासीत्	अयासिष्टाम्	अयासिषु
म०	अयासी	अयासिष्टम्	अयासिष्ट
उ०	अयासिषम्	अयासिष्व	अयासिष्म

लुङ् का द्वितीय वर्ग (Second Aorist)

१४७ यह भेद धातु से साक्षात् बने हुए लङ् लकार के तुल्य है। इसमे धातु और तिङ् प्रत्ययो के बीच मे सयोजक स्वर 'अ' लगता भी है और नही भी।

प्रथम भेद (अ वाला भेद)। यह भेद तुदादिगणी धातु के लङ् लकार के तुल्य होता है। इसमे धातु और तिङ् के बीच मे 'अ' लगता है और धातु मे कोई अन्तर नही होता। यह ग्रीक भाषा के लुङ् के द्वितीय भेद के समकक्ष है। सिच् (सीचना) धातु के अ-भेद के रूप —

सिच् धातु—परस्मैपद

प्र०	असिचत्	असिचताम्	असिचन्
म०	असिच	असिचतम्	असिचत
उ०	असिचम्	असिचाव	असिचाम

आत्मनेपद

प्र०	असिचत	असिचेताम्	असिचन्त
म०	असिचथा	असिचेथाम्	असिचध्वम्
उ०	असिचे	असिचावहि	असिचामहि

अपवाद-नियम (Irregularities)

(क) (१) ख्या (कहना) मे आ के स्थान पर अ हो जाता है। ख्या > अख्यत्। (२) दृश् (देखना) मे गुण होता है। दृश् > अदशत्। (३) अस् (फेकना) मे धातु और तिङ् के बीच मे थ् और लग जाता है। अस् > आस्थत्[1]। (४) पत् (गिरना) और वच् (कहना) मे द्वित्व होकर सक्षिप्त रूप रहता है। पत् > अपप्तत्, अपप्तम्, वच् > अवोचत्, अवोचम् (अ + व + उच् + अम् के स्थान पर)।

द्वितीय भेद (Second form)

१४८ इस भेद मे अ-रहित धातुरूपो मे लगने वाले लङ लकार के तिङ् प्रत्यय धातुओ से लगते है। यह भेद ग्रीक भाषा के अ-रहित धातुरूपो के लुङ् के द्वितीय भेद से मिलता हुआ है। जैसे—धा > अधात् (रखा), स्था > अस्थात् (वह रुका), गा > अगात् (वह गया), भू > अभूत् (वह हुआ)। आ अन्तवाली कुछ धातुओ और भू (होना) धातु मे यह भेद लगता है। प्र० ३ मे उर् से पहले आ नही रहता है, अन्यत्र धातुका आ शेष रहेगा। यह भेद आत्मनेपद मे नही होता है (देखो नि० १४३ क, १४४,३)

१ दा (देना)—परस्मैपद

प्र०	अदात्	अदाताम्	अदु
म०	अदा	अदातम्	अदात
उ०	अदाम्	अदाव	अदाम

२ भू (होना)—परस्मैपद

प्र०	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
म०	अभू	अभूतम्	अभूत
उ०	अभूवम्	अभूव	अभूम

---

१ आस्थत मे सभवत स्था (रुकना) धातु है और इसमे अख्यत् के तुल्य आ को अ हो गया है।

तृतीय या द्वित्ववाला भेद
(Third or Reduplicated form)

१४६ मूल धातु द्रु (दौडना) और श्रि (जाना) को छोडकर यह भेद अय प्रत्ययान्त (चुरादिगण और णिजन्त) धातु से होता है। धातु का द्वित्व वाला अग विचित्र प्रकार से बनता है और अन्त मे 'अ' लगता है। अ युक्त धातुओ के लङ् लकार के तुल्य इसके रूप चलते है। श्रेण्य सस्कृत मे ४० से अधिक धातुओ मे यह भेद लगता है।

द्वित्व के कुछ विशेष नियम

१ अभ्यास (द्वित्व का प्रथम अश) मे अ, आ, ऋ, ॠ और ऌ के स्थान पर इ हो जाता है।

२ यदि अभ्यास का स्वर दीर्घ नही है तो उसे दीर्घ हो जाता है।

धातुरूप के प्रथम तीन वर्णो मे जगण (लघु, गुरु, लघु, ।ऽ।) का क्रम रहता है। जैसे—जन् > अजीजनत्, ग्रह् > अजीग्रहत्, श्रि > अशिश्रियत्, विश् > अवीविशत्, दृश् > अदीदृशत्, दृ > अदीदरन्, द्रु > अदुद्रुवत्, मुच् > अमूमुचत्, क्लृप् > अचीक्लृपत्।

मुच् (छोडना) अग—अमूमुच

परस्मैपद

प्र०	अमूमुचत्	अमूमुचताम्	अमूमुचन्
म०	अमूमुच	अमूमुचतम्	अमूमुचत
उ०	अमूमुचम्	अमूमुचाव	अमूमुचाम

आत्मनेपद

प्र०	अमूमुचत	अमूमुचेताम्	अमूमुचन्त
म०	अमूमुचथा	अमूमुचेथाम्	अमूमुचध्वम्
उ०	अमूमुचे	अमूमुचावहि	अमूमुचामहि

अपवाद नियम (Irregularities)

(क) (१) राध् (सफल होना) और व्यध् (बीधना) मे धातु के स्वर को ह्रस्व हो जाता है, जिससे उनकी स्वर-गति सतुलित हो जाती है। रुध् > अरीरधत्, व्यध् > अवीविधत् (देखो नि० १३३ आ २)।

(२) दीप् (चमकना) और मील् (आख बन्द करना) मे धातु के दीघ स्वर को ह्रस्व नही होता और अभ्यास का ह्रस्व स्वर ह्रस्व ही रहता है। इस प्रकार दोनो स्वरो का परिमाण क्रमभेद से सामान्य परिमाण के बराबर ही रहता है, अर्थात् ह्रस्व और दीघ। दीप् >अदिदीपत, मील् >अमिमीलत्।

आशीर्लिङ् (Benedictive or Precative)

१५० श्रेण्य सस्कृत मे इनके परस्मैपद का प्रयोग बहुत कम मिलता है और आत्मनेपद का प्रयोग सवथा नही मिलता। यह वस्तुत विध्यर्थक लुङ् है और धातु के बाद तिङ् प्रत्यय साक्षात् मिलाकर बनाया जाता है। अ-रहित धातुरूपो के विधिलिङ् मे लगने वाले तिङ् प्रत्यय ही इसमे भी लगते है। अन्तर केवल इतना है कि या और तिङ प्रत्ययो के बीच मे स् और लग जाता है। प्र०१ और म०१ के अन्त्यावयव यास् (या-स् त्=यास् के स्थान पर, देखो नि० २८, १४५) और यान् (या-स्-स् के स्थान पर) है और ये दोनो अन्त्यावयव विधिलिङ् के अन्तिम अवयव मे सवथा मिलते है (नि० १३१)। बुध् (जागना) के पर० आशीर्लिङ् के रूप ये होगे —

बुध्-धातु—आशीर्लिङ्

प्र०	बुध्यात्	बुध्यास्ताम्	बुध्यासु
म०	बुध्या	बुध्यास्तम्	बुध्यास्त
उ०	बुध्यासम्	बुध्यास्व	बुध्यास्म

लृट् लकार (Simple future)

१५१ लृट् लकार के रूप धातु के बाद स्य लगाकर या इष्य लगाकर बनाए जाते है और इसके रूप भ्वादिगण के लट् के तुल्य (भवति) चलते है। ऋ अन्तवाली धातुओ को छोडकर अधिकाश अजन्त धातुओ के बाद 'स्य' लगता है। हलन्त धातुओ मे आधे से अधिक धातुओ मे 'इष्य' लगता है। णिच् आदि प्रत्ययान्त धातुओ मे 'इष्य' ही लगता है।

(क) धातु के अन्तिम स्वरो को तथा उपधा के ह्रस्व स्वर को गुण होता है। जैसे—इ (जाना) >एष्यति, बुध् (जागना) >भोत्स्यते, (नि० ५५), रुध् (रोकना) >रोत्स्यति, कृ (करना) >करिष्यति, भू (होना) >भविष्यति।

(१) बहुत सी धातुओ मे स्य और इष्य दोनो लगते है। जैसे—दह् (जलाना) > धक्ष्यति (५५) और दहिष्यति ।

(२) अय-प्रत्ययान्त धातुओ मे अय् शेष रहेगा और अन्तिम अ का लोप हो जाएगा । जैसे—चोरय (चुराना) > चोरयिष्यति ।

दा (देना)—परस्मैपद

प्र०	दास्यति	दास्यत	दास्यन्ति
म०	दास्यसि	दास्यथ	दास्यथ
उ०	दास्यामि	दास्याव	दास्याम

आत्मनेपद

प्र०	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
म०	दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
उ०	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे

अपवाद-नियम (Irregularities)

(ख) (१) स्य से पहले बहुत सी धातुओ मे अर् के स्थान पर 'र' शेष रहता है (नि० १४४,४) । ये धातुएँ है—दृश् (देखना), सृज् (छोडना, निकालना), सृप् (रेगना) और स्पृश् (छूना) । दृश् > द्रक्ष्यति (६३ ख), सृज् > स्रक्ष्यति, (६३ क), सृप् > स्रप्स्यति, स्पृश् > स्प्रक्ष्यति ।

(२) कुछ धातुओ मे स्य से पहले न् का आगम हो जाता है। नश् (नष्ट होना) > नङ्क्ष्यति और नशिष्यति, मज्ज् (डूबना) > मङ्क्ष्यति ।

(३) वस् (रहना) के स को त् हो जाता है, बाद मे स्य हो तो । वस् > वत्स्यति (६६ आ १) ।

(४) ग्रह् (पकडना) धातु मे स्य से पहले इ के स्थान पर ई लगता है। ग्रह् > ग्रहीष्यति (देखो नि० १६०, ३क) ।

लुट् लकार (Periphrastic Future)

१५२ यह लकार धातु से कर्तृ०-बोधक तृ-प्रत्यय (१०१) पु० प्रथमा एक० 'ता' के बाद अस् (होना) धातु के लट् लकार के रूप लगाने से बनता है। प्र० २ और ३ को छोडकर शेष सभी स्थानो पर 'ता' ही लगता है। प्र०२ और ३ मे तृ का द्वि० और बहु० अर्थात् तारौ, तार लगते है। परस्मै-

पद मे ही लुट् का प्रयोग मिलता है। लगभग ४० धातुओ से, मुख्यतया रामायण और महाभारत मे, लुट् लकार के रूप मिलते है।

(क) धातु को गुण होता है और बाद मे इ-सहित या इ रहित 'ता' लगता है। इ का आगम बहुत कुछ लृट् लकार (स्य से पूव) के तुल्य होता है। ऋ अन्तवाली धातुओ मे तथा—गम् (जाना) और हन् (मारना) मे ता से पहले इ नही लगता है। जैसे—कृ > कर्तास्मि (किन्तु लृट् मे करिष्यामि), गम् > गन्तास्मि (किन्तु लृट् मे गमिष्यामि)।

भू (होना) लुट्—परस्मैपद

प्र०	भविता	भवितारौ	भवितार
म०	भवितासि	भवितास्थ	भवितास्थ
उ०	भवितास्मि	भवितास्व	भवितास्म

इ (जाना) लुट्—परस्मैपद

प्र०	एता	एतारौ	एतार
म०	एतासि	एतास्थ	एतास्थ
उ०	एतास्मि	एतास्व	एतास्म

लृङ् लकार (conditional)

१५३ यह भविष्यत् का भूतकालिक प्रयोग है। अथ होगा—'ऐसा हुआ होता'। लृट् लकार को ही भूतकाल बना देने पर इस लकार के रूप बनेंगे और भ्वादिगण लङ् के तुल्य (अभवत् आदि) इसके रूप चलेगे। इसके पर० मे भी बहुत कम रूप मिलते है तथा आत्मनेपद मे तो और कम रूप मिलते हैं। इसका मुख्यतया प्रयोग रामायण, महाभारत और नाटको मे ही मिलता है। इसके उदाहरण है —भू (होना)।

(लृट—भविष्यति) लृङ—अभविष्यत् (प्र० १), अभविष्य (म०१), अभविष्यम् (उ०१) आदि। (लृङ् आत्मने०)—अभविष्यत (प्र०१), अभविष्ये (उ० १) आदि। इ (जाना) (लृट्-–एष्यति, एष्यामि) लृङ्—ऐष्यत् (प्र० १), ऐष्य (म० १), ऐष्यम् (उ०१) आदि। आत्मनेपद—ऐष्यत (प्र० १), ऐष्ये (उ० १) आदि।

कर्मवाच्य (Passive)

१५४ कर्मवाच्य मे आत्मनेपदी तिङ् प्रत्यय लगते है। सार्वधातुक लकारो मे और लुङ् प्र०१ मे इसका अग भिन्न होता है। दिवादिगण की आत्मनेपदी धातुओ से केवल स्वर मे अन्तर होता है। जैसे—नह् >नह्यते (वह बाँधता है), नह्यते (वह बाँधा जाता है)।

धातु मे 'य' लगता है। य से पहले धातुओ मे ये परिवतन होते है —

(१) धातु का अन्तिम आ (या एच् अर्थात् ए ओ ऐ औ के स्थान पर होने वाला आ, नि० १२९, ८) आ ही रहता है या उसे ई हो जाता है। जैसे—ज्ञा (जानना) >ज्ञायते, पा (पीना) >पीयते, गा (गाना) (या गै) > गीयते।

(२) धातु के अन्तिम इ और उ को दीर्घ हो जाता है। जैसे—इ (जाना) >ईयते, चि (इकट्ठा करना) >चीयते, श्रु (सुनना) >श्रूयते ।

(३) धातु के अन्तिम ऋ से पहले एक व्यजन होगा तो ऋ को रि होगा और दो व्यजन पहले होगे तो ऋ को अर् होगा। जैसे—कृ (करना) > क्रियते, किन्तु स्मृ (स्मरण करना) >स्मर्यते।

(४) धातु के अन्तिम ॠ को ईर् होता है, यदि पवर्ग पहले होगा तो ऊर् होगा। जैसे—कॄ (बखेरना) >कीर्यते, स्तॄ (फैलाना) >स्तीर्यते, किन्तु पॄ (पूरा करना) >पूर्यते।

(५) हलन्त धातुओ की उपधा मे न् होगा तो उसका लोप हो जाएगा। जैसे—भञ्ज् (तोडना) >भज्यते।

(६) जिन धातुओ मे सप्रसारण हो सकता है, (नि० १३७, २ग), उनमे सप्रसारण होगा। जैसे—यज् >इज्यते, वच् >उच्यते, ग्रह् >गृह्यते, स्वप् > सुप्यते।

(७) अय (णिच्)—प्रत्ययान्त धातुओ मे से 'अय' का लोप हो जाता है और धातु अपने पित् (सबल) रूप मे विद्यमान रहती है। जैसे—चोरय > चोर्यते, कृ+णिच्=कारय >कार्यते।

भू (होना), कर्मवाच्य

लट्

प्र०	भूयते	भूयेते	भूयन्ते
म०	भूयसे	भूयेथे	भूयध्वे
उ०	भूये	भूयावहे	भूयामहे

लङ्

प्र०	अभूयत	अभूयेताम्	अभूयन्त
म०	अभूयथा	अभूयेथाम्	अभूयध्वम्
उ०	अभूये	अभूयावहि	अभूयामहि

लोट्

प्र०	भूयताम्	भूयेताम्	भूयन्ताम्
म०	भूयस्व	भूयेथाम्	भूयध्वम्
उ०	भूयै	भूयावहै	भूयामहै

विधिलिङ्

प्र०	भूयेत	भूयेयाताम्	भूयेरन्
म०	भूयेथा	भूयेयाथाम्	भूयेध्वम्
उ०	भूयेय	भूयेवहि	भूयेमहि

अपवाद-नियम (Irregularities)

(क) (१) खन् (खोदना) और तन् (फैलाना) के दो रूप होते हैं। खन् >खन्यते, खायते, तन् >तन्यते, तायते। जन् (पैदा होना) का जायते (पैदा होता है) रूप बनता है। (वस्तुत यह दिवादिगणी आत्मनेपदी धातु है, देखो नि० १३३ आ २)।

(२) शास् (आज्ञा देना) के दो रूप होते हैं। शास् >शास्यते, शिष्यते (देखो नि० १३४, ४क)।

(३) ह्वा (पुकारना) (या ह्वे धातु) का हूयते रूप बनता है (देखो नि० १३६, ४) और वा (या वे) (बुनना) का ऊयते रूप होता है।

कर्मवाच्य लुङ् (Aorist Passive)

१५५ लुङ् आत्मनेपद के रूप कर्मवाच्य लुङ् का काम देते हैं, केवल प्र०१

मे कर्मवाच्य का विशेष रूप बनता है, लुङ् प्र०१ मे धातु से पहले अ लगता है और अन्त मे इ प्रत्यय लगता है। इस 'इ' से पहले धातु के अन्तिम स्वर को वृद्धि होती है और धातु की उपधा के ह्रस्व स्वर को गुण होता है। उपधा के अ को आ हो जाता है। धातु के अन्तिम आ के बाद य् का आगम होता है। जैसे—श्रु (सुनना) >अश्रावि, कृ (करना) > अकारि, पद् (चलना) > अपादि, विश् (प्रवेश करना) > अवेशि, मुच् (छोडना) > अमोचि, ज्ञा (जानना) > अज्ञायि।

(१) निम्नलिखित धातुएँ उपर्युक्त नियम की अपवाद है —

(१) रभ् (आरम्भ करना) धातु मे न् लग जाता है, अरम्भि।

(२) पॄ (पूरा करना) > अपूरि (देखो नि० १५४, ४)। (३) गम् (जाना), रच् (बनाना) और वध् (मारना) मे अ को आ नही होता। गम् > अगमि, रच् > अरचि, वध् > अवधि। (४) 'अय'-प्रत्ययान्त धातुओ के अय का लोप हो जाता है (देखो नि० १५४, ७)। जैसे—रुह् (चढना) से प्रेरणाथक रोपय >अरोपि।

कृत्-प्रत्यय: शतृ, शानच्, क्त्वा, ल्यप् और तुमुन्
(Participles, Gerunds and Infinitive)
(१) कर्तृवाच्य कृत् प्रत्यय (शतृ, क्वसु)
(Active Participles)

१५६ लट् (वर्तमान) और लृट् (भविष्यत्) परस्मैपद के शतृ-प्रत्ययान्त रूप बनाने के लिए धातु के बाद अत् लगाया जाता है (नि० ८५)। लट् और लृट् के प्र० पु० बहुवचन के रूप मे से अन्तिम इ हटा देने से सबल अग प्राप्त हो जाता है। अतएव जुहोत्यादि (तृतीय) गण की तथा अन्य द्वित्व होने वाली धातुओ (१३४ अ ४) मे लट् के स्थान पर शतृ (अत्) प्रत्यय करने पर अग मे न् नही मिलता है, परन्तु लृट् के स्थान पर अत् प्रत्यय करने पर न् अवश्य मिलता है, अत लृट् के स्थान पर होने वाला अन् अन्त रहता है। निम्न-लिखित प्रकार से रूप बनेंगे —

धातु	लट् प्र०३	शतृ का अग (सबल)	लृट् प्र०३	शतृ का अग (सबल)
भू (१)	भवन्ति	भवन्त्	भविष्यन्ति	भविष्यन्त्
क्री (९)	क्रीणन्ति	क्रीणन्त्	क्रेष्यन्ति	क्रेष्यन्त्
(हु) (३)	जुह्वति	जुह्वत्	होष्यन्ति	होष्यन्त्

(क) असु (होना) का वर्तमानकालिक शतृ-प्रत्ययान्त अग प्र०३ सन्ति के आधार पर सन्त् होता है और हन् (मारना) का घ्नन्ति (प्र०३)[1] के आधार पर घ्नन्त् होता है ।

१५७ लिट्-स्थानीय कृत्-प्रत्यय (The Reduplicated Perfect Participle) (नि० ८९) बनाने का सरल उपाय यह है कि पर० लिट् प्र०३ का रूप लेने पर भस्थान वाला अग तुरन्त बन जाता है । (केवल प्रत्यय के अन्तिम र्[2] को स् करना होगा और पूर्ववर्ती उ स्वर के कारण स् को ष् हो जाएगा) । पचस्थानीय और पदस्थानीय अग बनाने के लिए यदि लिट् प्र०३ वाले रूप मे उस के कारण धातु मे यण् हो तो उसे अपने पुराने स्वर के रूप मे रखना होगा और यदि उस् के हटाने पर धातु एकाच् (एक स्वर वाली) हो जाती हो तो वस् से पहले 'इ' का आगम हो जाएगा ।

धातु	लिट् प्र०३	भस्थान अग (weakest stem)	पचस्थान अग (strong stem)	पदस्थान अग (middle stem)
कृ	चक्रु	चक्रुषा	चकृवासम्	चकृवद्भि
भू	बभूवु	बभूवुषा	बभूवासम्	बभूवद्भि
तन्	तेनु	तेनुषा	तेनिवासम्	तेनिवद्भि
यज्	ईजु	ईजुषा	ईजिवासम्	ईजिवद्भि

(क) विद् (जानना) धातु से वस् प्रत्यय करने पर (लट् प्र० ३ विदु) बीच मे इ नही लगता है । विद् > विद्वस, तृ०१ विदुषा, द्वि०१ विद्वासम्, तृ० ३ विद्वद्भि ।

१ अत्-प्रत्ययान्त शब्दो के रूप के लिए देखो नियम ८५ । इनके स्त्रीलिंग शब्द बनाने के लिए देखो नियम ९५ क ।

२ देखो नि० १३१,६ ।

(२) आत्मनेपद और कर्मवाच्य कृत्-प्रत्यय
(Atmanepada and Passive Participles)

१५८ आत्मनेपद और कर्मवाच्य मे लट् तथा लृट् के स्थान पर कृत्-प्रत्यय 'मान' लगाया जाता है। यह प्र० ३ के न्ते के स्थान पर लगता है। जैसे—भू (आत्मने० लट् प्र०३) >भवन्ते का भवमान, लृट् प्र०३ भविष्यन्ते का भविष्यमाण, कर्मवाच्य लट् प्र० ३ भूयन्ते का भूयमान।

(क) अ-रहित धातुरूपो मे लट् आत्मने० मे आन लगता है। जु > जुह्वान (किन्तु लृट् मे होष्यमाण और कर्म मे हूयमान बनता है)। आस् (बैठना) मे एक विशेष प्रत्यय ईन लगता है। आस् >आसीन (बैठा हुआ)।

१५९ लिट आत्मनेपद से कृत्-प्रत्ययान्त रूप 'आन' प्रत्यय लगाकर बनाए जाते हैं। यह लिट् प्र० ३ वाले रूप मे से 'इरे' हटाकर 'आन' लगाने से बनता है। जैसे—भू लिट् प्र० ३ >बभूविरे से बभूवान। ऐसे प्रयोग लुप्तप्राय हो गए है। थोडे से आन-प्रत्ययान्त प्रयोग शेष है और ये सज्ञा-शब्द या विशेषण-शब्द के रूप मे प्रयुक्त होते है। जैसे—अनु+वच् (दुहराना) >अनूचान (विद्वान्)।

१६० **क्त-प्रत्यय** (**Perfect Passive Participle**)। यह अधिक प्रचलित 'त' प्रत्यय या 'न' प्रत्यय लगाकर बनाया जाता है।

(१) **'न' प्रत्यय**। यह मूल धातु से ही होता है और धातु के तुरन्त बाद लगता है। यह आ, ई, ऊ, ॠ (जिसे ईर् या ऊर् हो जाता है) और विशेषतया द् अन्त वाली धातुओ से होता है। जैसे—म्ला (मुरझाना) >म्लान, ली (चिपकना) >लीन, लू (काटना) >लून, स्तॄ (बिछाना) >स्तीर्ण, पॄ (पूरा करना) >पूर्ण (नि० १५४, ४), भिद् (तोडना) >भिन्न।

(क) नुद् (प्रेरणा देना) और विद् (पाना) धातुओ से विकल्प से त भी लगता है। नुद् >नुन्न, नुत्त, विद् >विन्न, वित्त।

(ख) ज् अन्तवाली कुछ धातुओ से 'न' होता है और ज् को मूलध्वनि कवर्ग अर्थात् ग् हो जाता है। जैसे—भञ्ज् (तोडना) >भग्न, भुज् (झुकना) भुग्न, मज्ज् (डूबना) >मग्न, विज् (घबडाना) >विग्न।

(२) **त प्रत्यय**। धातुओ से इ के साथ या बिना इ के त प्रत्यय लगता

है। जैसे—जि > जित (जीता), पत् > पतित (गिरा)। जहाँ पर धातु से साक्षात् त प्रत्यय जुडता है, वहाँ पर धातु स्वभावत अपने निबल अग मे होती है। जिन धातुओ मे सप्रसारण (१३७, २ ग) हो सकता है, उनमे सम्प्रसारण होता है। कुछ धातुओ मे अन्तिम आ को ई होता है और कुछ मे इ। बहुत-सी धातुओ मे अन्तिम नासिक्य वर्ण (न्, म्) का लोप हो जाता है।[1] जैसे—यज् (यज्ञ करना) > इष्ट, (६३क, ६४), वच (कहना) > उक्त, स्वप् (सोना) > सुप्त, पा (पीना) > पीत, स्था (रुकना) > स्थित (लेटिन-Sta-tu-s), गम् (जाना) > गत, हन् (मारना) > हत।

(क) धा (रखना) धातु मे दुहरी निर्बलता होती है। धा > हित (धित के स्थान पर)।

(ख) दा (देना) को सार्वधातुक निर्बल अग दद् हो जाता है। दा > दत्त। कुछ उपसर्गो के बाद दत्त का सक्षिप्त रूप त्त शेष रहता है। जैसे—आ + दा > आत्त (लिया) (आदत्त के स्थान पर)।

(ग) अम् अन्तवाली बहुत सी धातुओ मे म् का लोप नही होता और म् से पूर्ववर्ती स्वर को दीघ हो जाता है। जैसे—कम् (प्रेम करना) > कान्त।

(घ) ध्वन् (शब्द करना) मे कम् आदि के तुल्य उपधा के अ को आ होता है। ध्वन् > ध्वान्त। कुछ अन् अन्न वाली धातुएँ आकारान्त हो जाती है, अर्थात् अन् को आ हो जाता है। जैसे—खन् (खोदना) > खात, जन् (पैदा होना) > जात।

(३) **इत प्रत्यय।** एक या दो व्यजन अन्त वाली बहुत सी धातुओ से 'इत' प्रत्यय होता है। यह ऐसे स्थानो पर होता है, जहाँ मूलधातु का त के साथ सरलता से सयोग नही हो सकता है। सभी णिच् आदि प्रत्ययान्त धातुओ से इत लगता है और अन्तिम अ या अय का लोप होता है। जैसे—शङ्क् (शका करना) > शङ्कित, लिख् (लिखना) > लिखित, आप् (पाना) + स = ईप्स > ईप्सित, कृ (करना) + णिच् = कारय > कारित।

(क) 'इत' से पहले साधारणतया धातु का पूर्ण रूप रहता है, किन्तु इत से पहले वद् (कहना) और वस् (रहना) धातुओ मे सप्रसारण हो जाता है।

---

१ ह् अन्त वाली धातुओ मे ह + त मे सन्धि नियम के लिए देखें नि० ६९।

(३) **अनीय प्रत्यय।** अनीय प्रत्यय से पहले धातु मे गुण होता है। जैसे—चि >चयनीय (एकत्र करने योग्य), भू >भवनीय (होनहार), कृ > करणीय (करने योग्य), लुभ् >लोभनीय (चाहने योग्य)।

(क) प्रेरणार्थक 'अय' प्रत्यय का लोप हो जाता है। भू+णिच्= भावय >भावनीय (सभावित)।

(३) क्त्वार्थक प्रत्यय
(Gerund or Indeclinable Participle)

१६३ क्त्वा प्रत्यय। क्त्वार्थक रूप बनाने के लिए सामान्य धातु मे 'त्वा' प्रत्यय होता है (यह 'तु' शब्द का तृतीया एक० का प्राचीन रूप हे) त्वा-प्रत्ययान्त रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि भूतकालिक त-प्रत्ययान्त रूप मे त के स्थान पर त्वा कर दे। जैसे—कृ+त=कृत (किया) >कृत्वा (करके), वच् >उक्त (कहा) >उक्त्वा (कहकर), गम् >गत (गया) >गत्वा (जाकर)।

(क) त्वा-प्रत्यय करने पर प्रेरणाथक 'अय' प्रत्यय का लोप नही होता है। जैसे—चुर्+णिच्+त >चोरित (चुराया), किन्तु त्वा मे चोरयित्वा (चुराकर)।

१६४ ल्यप् प्रत्यय। यदि धातु से पहले उपसर्ग होगा और धातु का उपसर्ग के साथ समास होगा तो त्वा के स्थान पर 'य' लगेगा। जैसे—भू (होना) >भूत्वा, किन्तु सम्+भू >सभूय, वच् (कहना) >उक्त्वा, प्रोच्य, तॄ (पार करना) >अवतीर्य, पॄ (पूरा करना) >सपूर्य।

(क) यदि धातु मे ह्रस्व स्वर है तो य से पहले प्रेरणार्थक अय शेष रहेगा, केवल अय के अन्तिम अ का ही लोप होगा।[1] जैसे—सम्+गम्+णिच्=सगमय (एकत्र करना) >सगमय्य, किन्तु विचारय (सोचना) का विचार्य रूप बनेगा, अर्थात् अय का लोप होगा।

१६५ त्य प्रत्यय। उपसर्गयुक्त धातु यदि ह्रस्व स्वरान्त है तो य के स्थान पर त्य प्रत्यय लगेगा। जि >जित्वा, किन्तु विजित्य।

(क) इन धातुओ के सादृश्य पर ही 'अ' उपधा वाली और न् या म् अन्त

१ अन्यथा सामान्य और प्रेरणार्थक धातु से य प्रत्यय करने पर एक ही रूप बनता।

वाली धातुओ से विकल्प मे 'त्य' प्रत्यय लगता है। यदि भूतकालिक त-प्रत्यय करने पर न् या म् का लोप होता है (१६०, २) तो यहाँ पर भी न् या म् का लोप होगा। जैसे—गम् (जाना) > आगम्य, आगत्य (त मे गत), नम् (झुकना) > प्रणम्य (६५), प्रणत्य (त मे नत), मन् (सोचना) > अवमन्य, अवमत्य (त मे मत), हन् (मारना) > सहन्य, सहत्य (त मे हत), तन् (फैलाना) > विताय (नि० १५४ क १), वितत्य (त मे तत)। किन्तु क्रम् (चलना) का सक्रम्य ही होता है (त मे क्रान्त) और खन् (खोदना) का निखाय (त मे खात, नि० १५४ क १)।

१६६ **अम् प्रत्यय।** त्वा के अर्थ मे ही बहुत कम प्रयुक्त एक अम् प्रत्यय है। यह अव्यय होता है इसका रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि धातु का कर्मवाच्य लुङ् प्र० १ मे इ से पहले जो रूप बनता है (नि० १५५) उसमे ही अम् जोड दिया जाए। जैसे—श्रु (सुनना) > अश्रावि (कम० लुङ् प्र० १, ऐसा सुना गया) > श्रावम् (सुनकर)।

(४) तुम् प्रत्यय (Infinitive)

१६७ **तुम् प्रत्यय।** लुट् लकार (१५२) के 'ता' या कृत्य प्रत्यय 'तव्य' (१६२, २) से पहले धातु का जो रूप होता है, उससे ही तुम् प्रत्यय लगाया जाता है। (यह तुम् प्रत्यय मूलरूप मे तु शब्द का द्वि० १ का रूप है)। तुम्-प्रत्ययान्त रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि ता या तव्य के स्थान पर तुम् लगा दे जैसे—स्था (रुकना) > स्थातुम् (लेटिन—Sta-tum), बुध् > बोधितुम् (जागने को), भू > भवितुम् (होने को), कृ > कर्तुम् (करने को), दृश् > द्रष्टुम् (१५१ ख १) (देखने को), वह् > वोढुम् (६६ख) (ढोने को), सह् > सोढुम् (६६ ख) (सहने को), चुर् > चोरयितुम् (चुराने को)।

प्रक्रियाएँ (Derivative Verbs)

(१) णिजन्त प्रक्रिया (Causatives)

१६८ **णिच् (अय) प्रत्यय।** प्रक्रियाओ मे यह सबसे अधिक प्रचलित है। यह चुरादिगणी धातुओ (१२५, ४) के तुल्य धातु से 'अय' प्रत्यय लगाकर

बनाया जाता है और चुरादिगणी धातुओ के तुल्य ही इसके रूप चलते है। जैसे—नी (ले जाना) > नायय (लिवा जाना), कृ (कराना) > कारय (करना), विद् (जानना) > वेदय (बताना), सद् (बैठना) > सादय (बैठाना)।

(क) आ अन्त वाली बहुत सी धातुओ मे अय से पहले प् और लग जाता है। जैसे—दा (देना) > दापय = (दिलाना), स्था (रुकना) > स्थापय (स्थापित करना)।

(ख) यह प्रेरणाथक 'अय' प्रत्यय (चुरादिगण के तुल्य) द्वित्व वाले लुङ् को छोडकर अन्यत्र सभी जगह शेष रहता है। (द्वित्व वाला लुङ् केवल अथ की दृष्टि से ही प्रेरणार्थक से सम्बद्ध है, देखो नि० १४९)।

अपवाद नियम (Irregularities)

(१) निम्नलिखित धातुओ मे 'पय' से पहले धातु के आ को विकल्प से अ हो जाता है —ज्ञा (जानना), ग्ला (खिन्न होना), म्ला (मुरझाना), स्ना (नहाना)। जैसे—ज्ञा > ज्ञापय, ज्ञपय आदि।

(२) निम्नलिखित कुछ आकारान्त से भिन्न धातुओ मे भी 'पय' लगता है —जि (जीतना) > जापय (जिताना), अधि+इ (पढना) > अध्यापय (पढाना), ऋ (जाना) > अर्पय (देना, रखना), रुह् (उगना) > रोपय, रोहय (उगाना, उठाना)।

(३) निम्नलिखित धातुओ के अय प्रत्यय करने पर ये रूप होते है — धू (हिलाना), > धूनय (हिलाना) प्री (प्रेम करना) > प्रीणय (प्रसन्न करना), भी (डरना) > भीषय, भायय (डराना)।

(४) लभ् (पाना) मे अय से पहले न् का आगम होता है। लभ् > लम्भय। दश् (काटना) का न् शेष रहता है। दश् > दशय (नि० १३३ अ ४)।

(५) हन् (मारना) को अय करने पर नामधातु रूप 'घातय' (वध कराना)। हो जाता है।

(२) सन्नन्त प्रक्रिया (Desideratives)

१६९ **सन् प्रत्यय**। सन्-प्रत्ययान्त रूप बनाने के लिए धातु से स प्रत्यय

लगाया जाता है और धातु को एक विचित्र प्रकार से द्वित्व किया जाता है। लगभग ७० धातुओ मे धातु से साक्षात् 'स' लगता है और लगभग ३० धातुओ मे इष (सयोजक इ+स) लगता है। अत भू (होना)>बुभूष (होने की इच्छा), किन्तु जीव् (जीना) का जिजीविष होता है। भ्वादिगणी धातुओ (१३२) के तुल्य सन्-प्रत्ययान्त के रूप चलते है।

अभ्यास (द्वित्व का प्रथम अश) पर ही उदात्त स्वर रहता है और सामान्यतया धातु मे कोई परिवर्तन नही होता है। निम्नलिखित इसके अपवाद है —

(१) स से पूववर्ती इ को ई, उ को ऊ, ऋ और ॠ को ईर या ओष्ठ्यवर्ण पहले होने पर ऊर् होता है। जैसे—चि (इकट्ठा करना)>चिचीष, स्तु (प्रशसा करना)>तुष्टूष, तॄ (पार करना)>तितीर्ष, मृ (मरना) मुमूर्ष।

(२) 'इष' बाद मे होने पर धातु के अन्तिम ई, उ और ऋ को गुण होता है। उपधा के ऋ को भी गुण होता है। उपधा के उ को एक धातु मे गुण होता है और उपधा के इ को कही गुण नही होता। जैसे—शी (सोना)> शिशयिष, शॄ (नष्ट होना)>शिशरिष, नृत् (नाचना)>निनर्तिष, शुभ् (शोभित होना)>शुशोभिष, विद् (जानना)>विविदिष, विवित्स।

द्वित्व के मुख्य नियम
(Special Rules of Reduplication)

१७० (१) अभ्यास (द्वित्व का प्रथम अश) मे अ, आ और ऋ को इ होता है। किन्तु जहाँ पर ओष्ठ्य के बाद ऋ को उर् होता है, वहाँ अभ्यास मे उ रहता है)। जैसे—दह् (जलाना)>दिधक्ष (५५,६९ क), स्था (रुकना)> तिष्ठास, सृज् (उत्पन्न करना)>सिसृक्ष (६३ क), भृ (धारण करना> बुभूर्ष।

(क) जिन धातुओ मे उपधा मे इ और उ हैं उन्हे सामान्य रूप से द्वित्व होता है। जैसे—विश् (प्रवेश करना)> विविक्ष (६३ ख), बुध् (जानना)> बुभुत्स (५५), दुह् (दुहना)>दुधुक्ष (५५, ६९ क), रुह् (उगना)>रुरुक्ष इस प्रकार उ और ऊ से युक्त धातुओ को छोडकर शेष सभी मे अभ्यास मे इ रहता है।

(२) अजादि दो या तीन धातुएँ ऐसी है, जिनमे सन्नन्त रूप धातु मे इ लगाकर अभ्यास बनाया जाता है। जैसे—अश् (खाना) > आशिशिष, ईक्ष् (देखना) > ईचिक्षिष। आप् (पाना) मे एकादेश होकर ईप्स अग होता है।

अपवाद-नियम (Irregularities)

१७१ (१) गम् (जाना) और हन् (मारना) मे धातु के अ को आ होता है। मन् (सोचना) मे धातु के अ को आ होता है और अभ्यास के इ को ई होता है। जैसे—गम् > जिगास (जिगमिष भी होता है), हन् > जिघास (६६ अ २), मन् > मीमास (६६ अ २) (सोचना)।

(२) ग्रह् (पकडना), प्रच्छ् (पूछना) और स्वप् (सोना) मे सप्रसारण होता है। ग्रह् > जिघृक्ष (५५, ६९ क), प्रच्छ् > पिपृच्छिष, स्वप् > सुषुप्स।

(३) निम्नलिखित धातुओ मे प्रथम दो वर्णो को इस प्रकार एकादेश होता है कि अभ्यास शेष रहता है और धातु का एक व्यजन —दा (देना), धा (रखना), मा (तोलना), पद् (जाना), रभ् (आरम्भ करना), लभ् (पाना), शक् (सकना)। दा > दित्स, धा > धित्स (दिधास के स्थान पर, नि०५५), मा > मित्स, पद् > पित्स, रभ् > रिप्स, लभ् > लिप्स, शक् > शिक्ष।

(४) चि (चुनना), जि (जीतना) और हन् (मारना) (नि० १७१, १) धातुओ मे उनकी मूल कवर्ग ध्वनि आ जाती है। चि > चिकीष (चिचीष भी), जि > जिगीष, हन् > जिघास।

(५) घस् (खाना) मे स् को त् हो जाता है। घस् > जिघत्स (भूखा होना)।

(३) यडन्त और लुगन्त प्रक्रिया)

(Intensives or frequentatives)

१७२ सामान्य धातु से जो अर्थ बताया जाता है, उसके अतिशय या पौन पुन्य (बार बार होना) को बनाने के लिए यड् प्रत्यय होता है। हलादि और एक स्वर वाली धातुओ से ही यड् प्रत्यय होता है। अतएव चुरादिगणी धातुओ से तथा अद् आदि अजादि धातुओ से यड् प्रत्यय नही होता है। लगभग ६० धातुओ (वैदिक साहित्य मे प्राप्त होने वाली धातुओ के आधे से कम) से सस्कृत मे—यड् प्रत्यय होता है, किन्तु ये प्रयोग बहुत कम मिलते हैं।

इसमे धातु के दो अग होते है और एक विशेष प्रकार का सबल अभ्यास होता है। इनमे से एक मे द्वित्व हुए अग के तुरन्त बाद तिङ् प्रत्यय लगते है (सबल अग मे अभ्यास के प्रथम स्वर पर उदात्त स्वर होता है)। इसके रूप जुहोत्यादि (तृतीय) गण की धातुओ के तुल्य केवल परस्मैपद मे चलते है। जैसे—भू (होना) > बोभोति। दूसरे मे धातु को द्वित्व होता है और बाद मे कमवाच्य (१५४) के तुल्य उदात्त स्वर युक्त 'य' लगता है। इसके रूप कर्म-वाच्य के तुल्य केवल आत्मनेपद मे चलते है। जैसे—भू (होना) > बोभूयते।

(क) प्रथम भेद (यङ् लुगन्त) मे पित् स्थानो पर हलादि व्यजन से पहले विकल्प से ई लगता है। हलन्त धातुओ मे इस 'ई' से पहले या अजादि प्रत्यय बाद मे होने पर गुण नही होता है। जैसे—विद् (जानना) > वेवेद्मि, वेवि-दीमि, वेविद्म (उ० ३), लोट्—वेविदानि (उ० १), किन्तु हू (पुकारना) का जोहोमि, जोहवीमि (उ०१)—जोहवानि।

द्वित्व के विशेष नियम
(Special Rules of Reduplication)

१७३ अभ्यास मे स्वर को गुण होता है और अ को आ होता है। जैसे —निज् (स्वच्छ करना) > नेनेक्ति, नी (ले जाना) > नेनीयते, बुध् (जानना) (> बोबुधीति, प्लु (ऊपर बहना, तैरना) > पोप्लूयते, तप् (तपना) > तात-प्यते।

(क) अम्—अन्त वाली धातुओ मे अभ्यास मे अ को दीर्घ न होकर नासिक्य ध्वनि (न्, म्) का आगम होता है। जैसे—क्रम् (चलना) > चङ्-क्रमीति, चङ्क्रम्यते।

(ख) ऋ-युक्त धातुओ मे अभ्यास और धातु के बीच मे 'ई' का आगम हो जाता है। जैसे—मृ (मरना) > मरीमर्ति, दृश् (देखना) > दरीदृश्यते, नृत् (नाचना] > नरीनृत्यते।

अपवाद-नियम (Irregularities)

१७४ गृ (जागना) को द्वित्व करने पर अभ्यास मे आ होकर 'जागृ' अग बनता है। 'जागृ' ने प्राय एक धातु का स्वरूप ले लिया है (१३४ अ ४)

और सार्वधातुक लकारो मे इसका यही अग रहता है। जैसे—जागर्ति (लट् प्र०१), जाग्रति (प्र० ३)।

(क) दह् (जलाना) और जभ् (झपटना) धातुओ के अभ्यास मे न् लग जाता है और चर् (चलना) धातु मे अभ्यास मे न् तथा धातु के अ को ऊ हो जाता है। जैसे—दह् > दन्दहीति, दन्दह्यते, जभ् > जञ्जभ्यते, चर् > चञ्चूयते।

(ख) पद् (जाना) मे अभ्यास मे न् लगता है और उसके बाद ई लगता है, अर्थात् अभ्यास मे 'नी' लगता है। पद् > पनीपद्यते। द्रा (दौड़ना) धातु मे ऋ-युक्त धातुओ के तुल्य (१७३ ख) काय होता है और इसके अभ्यास मे रि (र्+इ) लगता है। (यह र् के बाद इ अपनी स्थिति के अनुसार अर्थात् सयुक्त व ं बाद मे होने से दीघ के तुल्य ही है)। द्रा > दरिद्राति (नि० १३४ अ ४)

(४) नामधातु प्रक्रिया (Denominatives)

१७५ शब्दो के अन्त मे या प्रत्यय लगाकर बहुत से नामधातु बनाए जाते है। इनके रूप अ-युक्त धातुओ (भू आदि) के तुल्य चलते हैं। यह य प्रत्यय 'होना' या तदनुकूल आचरण करना' 'तद्वत् मानना' 'बनाना' या 'चाहना' आदि अर्थो मे होता है। य प्रत्यय से पहले अन्तिम इ और उ को दीर्घ हो जाता है। अन्तिम अ को भी आ होता है, पर कभी-कभी उसे ई हो जाता है (नि० १५४, १)। जैसे—नमस् > नमस्य (नमस्कार करना), स्वामिन् > स्वामीय (स्वामी के तुल्य मानना), गोप > गोपाय (गोप या ग्वाले के तुल्य होना) (रक्षा करना), राजन् > राजाय (राजा के तुल्य कार्य करना), द्रुम > द्रुमाय (वृक्ष के तुल्य होना, पुत्र > पुत्रीय (पुत्र की इच्छा करना)।

(क) जिन नामधातुओ मे प्रेरणार्थक के तुल्य (अ य) अ पर उदात्त स्वर होता है, उन्हे भारतीय वैयाकरणो ने चुरादिगणी धातुओ मे समिलित किया है। जैसे—मन्त्र (मन्त्रणा) > मन्त्रय (मन्त्रणा करना), कीर्ति (यश) > कीर्तय (यश फैलाना), वर्ण (रग) वर्णय (चित्रित करना, वर्णन करना), कथम् (कैसे ?) > कथय (कहो कैसे ?, कहना)।

अध्याय ५

अव्यय (Indeclinable Words)

उपसर्ग (Prepositions)

१७६ अन्य आर्य-भाषाओ की अपेक्षा सस्कृत मे विभक्तियो के अर्थ अधिक स्वतन्त्र हो गए है, अत उपसर्गो की सख्या कम हो गई है और इनका प्रयोग भी बहुत सीमित है। ये सभी उपसर्ग प्राय परसग (Postpositions १) है और ये कारक का काम नही करते है, अपितु जिस विभक्ति के साथ सम्बद्ध होते हैं, उसके सामान्य अर्थ को परिष्कृत करते है। वेद मे लगभग एक दर्जन परसग थे। इनका क्रिया के उपसग या पूवसर्ग के तुल्य भी प्रयोग होता था), किन्तु सस्कृत मे केवल तीन का ही सामान्यतया प्रयोग होता है —

(१) अनु (बाद मे) और प्रति (ओर) का द्वितीया के बाद।

(२) आ (से या तक) का पचमी से पहले।

(क) निम्नलिखित उपसर्ग भी कभी कभी मिलते है। इनका प्रयोग प्राय विभक्ति के बाद होता है —अभि (ओर, द्वि०), पुरस् (सामने, षष्ठी), अधि(पर, सप्तमी), अन्तर् (अन्दर, बीच मे, सप्तमी, कभी षष्ठी भी) (लेटिन —Inter, इगलिश under)।

उपसर्गात्मक क्रियाविशेषण (Prepositional Adverbs)

१७७ वास्तविक वैदिक उपसर्गों का जो लोप या अप्रयोग हुआ है, उसकी क्षतिपूर्ति सस्कृत मे नए और अवास्तविक उपसर्गो की वृद्धि से की गई है। इसका अभिप्राय यह है कि ये क्रिया के साथ सबद्ध नही किए जा सकते है और विभक्ति की दृष्टि से इनकी उत्पत्ति अधिकाशत स्पष्ट है। ये चतुर्थी और सप्तमी विभक्तियो को छोडकर शेष सभी विभक्तियो के साथ प्रयुक्त होते है। सस्कृत मे चतुर्थी विभक्ति के साथ कोई भी उपसर्गात्मक शब्द कभी भी सबद्ध नही रहा है ये उपसर्गात्मक क्रिया विशेषण निम्नलिखित सूची मे दिए गए है और इनके साथ जो विभक्ति होती है, उसके साथ इनका वर्गीकरण है —

(क) **द्वितीया**—अन्तरा (बीच मे, बिना), अन्तरेण (बीच मे, बिना, बारे मे), निकषा (समीप), समया (समीप), अभित (दोनो ओर), परित (चारो ओर), सर्वत (चारो ओर), समन्तत (चारो ओर), उभयत (दोनो ओर), परेण (परे), यावत् (तबतक, तक, इसके साथ पचमी भी)।

(ख) **तृतीया**—सह (साथ), समम् (साथ), साकम् (साथ), साधम् (साथ), विना (बिना, सिवाय, इसके साथ द्वि० और कभी-कभी प० भी)।

(ग) **पचमी**—पचमी मे आने वाले सभी क्रियाविशेषण शब्द किसी न किसी रूप मे पचमी के मूल अथ विश्लेष (पृथक् होना) को प्रकट करते है —

(१) अर्वाक्, पुरा, पूर्वम्, प्राक् (समय की दृष्टि से पहले), (२) अनन्तरम्, ऊर्ध्वम्, परम्, परत, परेण, प्रभृति (यह मूलरूप मे 'प्रारम्भ' अर्थ-सूचक स्त्रीलिग शब्द है) (समय की दृष्टि से बाद मे)। (३) बहि (बाहर), (४) अन्यत्र (अतिरिक्त), ऋते (बिना, द्वि० भी)।

(घ) **षष्ठी**—षष्ठी के साथ प्रयुक्त होने वाले प्राय सभी क्रियाविशेषण शब्द स्थान-विषयक सम्बन्ध को सूचित करते है—(१) अग्रे, अग्रत, पुरत, पुरस्तात्, प्रत्यक्षम्, समक्षम् (आगे, सामने)। (२) पश्चात् (बाद मे), (३) परत, परस्तात् (परे) (४) उपरि (द्वि० भी), उपरिष्टात् (ऊपर, बारे मे)। (५) अध, अवस्तात् (नीचे)। षष्ठी के साथ कृते (लिए) का भी प्रयोग होता है।

१७८ द्वितीया (को, ओर, किधर), पचमी (से, स्थान से, कहाँ से), और सप्तमी (मे, कहाँ) विभक्तियो के भाव प्राय 'निकट' अर्थ के सूचक—अन्तिक, उपकण्ठ, निकट, सकाश, सनिधि, समीप और पाश्व (बगल) आदि शब्दो से प्रकट किये जाते है। द्वितीया मे ये शब्द 'ओर' 'को' 'समीप' अर्थ बताते है। पचमी मे 'से' अर्थ और सप्तमी मे 'समीप' 'सामने' अथ बताते है। प्रत्येक स्थान पर इनके साथ षष्ठी होगी। जैसे—राज्ञोऽन्तिक गच्छ (राजा के पास जाओ), रघो सकाशाद् अपासरत् (वह रघु के पास से हट गया), मम पार्श्वे (मेरे पास), तस्या समीपे नल प्रशशसु (उन्होने उसके सामने नल की प्रशसा की)।

उपसर्गात्मक क्त्वार्थक प्रत्यय
(Prepositional Gerunds)

१७९ कतिपय क्त्वा (त्वा) और ल्यप् (य) प्रत्ययान्त अव्यय उपसर्ग के तुल्य प्रयुक्त होते है —

(१) **द्वितीया विभक्ति के साथ**—उद्दिश्य (लक्ष्य मे रखकर, ओर, बारे मे, पर, वास्ते), आदाय (लेकर), गृहीत्वा (लेकर), नीत्वा (लेकर, से), अधिष्ठाय, अवलम्ब्य, आश्रित्य, आस्थाय (ग्रहण कर, लेकर, द्वारा), मुक्त्वा, परित्यज्य, वर्जयित्वा (छोडकर, सिवाय), अधिकृत्य (मुख्य स्थान पर रखकर अर्थात् विषय मे, बारे मे)।

(२) **पचमी के साथ**—आरभ्य (आरम्भ करके, तब से लेकर)।

सयोजक और क्रियाविशेषण निपात
(Conjunctive and Adverbial Particles)

१८० **अङ्ग** (हे श्रीमन्, प्रार्थनासूचक)। अङ्ग कुरु (श्रीमन्, यह कीजिए), किमङ्ग (१ श्रीमन्, ऐसा क्यो ? २ और (कितना ?)।

अथ—(१) वाक्य का प्रारम्भ-सूचक=तब, अब, बाद मे। (२) पुस्तक, अध्याय, परिच्छेद आदि के शीर्षक के प्रारम्भ मे, अर्थात् 'अब' या 'यहाँ से प्रारम्भ होता है'। यह 'इति' (यहा समाप्त होता है) का विलोम शब्द है। (३) वाक्य का सयोजक शब्द, अर्थात् 'और' या 'भी'। (४) 'यदि'—अथ तान्नानुगच्छामि गमिष्यामि यमक्षयम् (यदि मैं उनके पीछे नही जाता हूँ तो मैं यमलोक को जाऊँगा)। **अथकिम्**—और क्या ? अर्थात् ऐसा ही है 'हा'। **अथवा**—(१) अथवा, या। (२) पूर्व वक्तव्य मे सशोधन उपस्थित करना,—अर्थात् 'किन्तु' 'अपितु'। (३) कथन की पुष्टि मे कोई वक्तव्य प्रस्तुत करना, अर्थात् 'जैसा कि' 'यथा' 'इस प्रकार' अथवा साध्विदमुच्यते (इस प्रकार यह ठीक ही कहा जाता है)।

अथो—तब, बाद मे (देखो उ भी)।

अन्यच्च—और भी, इसके अतिरिक्त।

अपरम्—और, आगे, इसके अतिरिक्त, और भी।

अपि—(१) 'च' के तुल्य वाक्य के दो अगो को मिलाता है, अर्थात्—इसी

पठतीति कारणम् (यह जानते हुए भी वह धर्मशास्त्र पढता है, कोई कारण नही कि उस पर विश्वास किया जाए)।

(२) इति=यहाँ समाप्त होता है। यह पुस्तक, अध्याय, सर्ग, अक आदि के बाद समाप्तिसूचक निपात के रूप मे प्रयुक्त होता है। इति तृतीयोऽङ्क (यहाँ तीसरा अक समाप्त हुआ)।

(३) इति=इस रूप मे, जहाँ तक यह बात है, जहाँ तक। शीघ्रमिति सुकर निभृतमिति चिन्तनीय भवेद् (जहाँ तक शीघ्र करने की बात है, यह सुकर है और जहाँ तक गुप्त रूप से करने की बात है, यह विचारणीय है)। (किम् और तथा को भी देखे)।

इव—यह अनुदात्त निपात है और इसका जिस शब्द के साथ सबन्ध होता है, उसके बाद आता है। (१) 'जैसे' 'सा' 'तुल्य'—अय चोर इवाभाति (यह आदमी चोर सा प्रतीत होता है)। (२) 'मानो' 'जैसे'—साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम् (मानो साक्षात् शिव को देख रहा हूँ)। (३)'कुछ'—सरोषमिव—कुछ क्रोध से। (४) 'लगभग'—मुहूर्तमिव (लगभग एक घटा)। (५) 'बिल्कुल'—अकिंचिदिव—(थोडा सा ही), नचिरादिव। (अविलम्ब, बिल्कुल अभी)। (६) 'वस्तुत 'ही'—किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीनाम् (वस्तुत क्या चीज है, जो मधुर आकृति वालो के लिए आभूषण नहीं होती?)।

उ—यह एक प्राचीन निपात है। इसका वेद मे बहुत प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ 'और' है। यह सस्कृत मे **किमु** (किम्+उ, क्या?), **अथो** (अथ+उ, और भी, तब) और **नो** (न+उ, और नही अर्थात् नही) शब्दो मे समस्त होकर शेष है।

उत—यह वेद मे बहुत प्रचलित निपात है। इसका अर्थ है—'और', 'भी' 'या'। यह अब निम्नरूप से शेष है —(१) प्रति और किम् के साथ सयुक्त होकर—**प्रत्युत** (अपि तु), **किमुत** (कितना अधिक, कितना कम)। २ किसी दुहरे प्रश्न मे द्वितीय अश मे **किम्—उत**(क्या क्या)। यह रामायण और महाभारत मे पाद के अन्त मे पाद-पूर्त्यर्थक के रूप मे भी प्राय मिलता है।

एव—यह एक निपात है और जिस शब्द पर बल देना होता है, उसके बाद इसका अनुवाद 'ही' 'केवल' 'वस्तुत' तथा अन्य कई प्रकार से होता है।

कही पर केवल बल देने के लिए ही प्रयुक्त होता है। **एक एव** (अकेला ही), दर्शनमेव (दर्शनमात्र), अहमेव (मैं अकेला ही), तदेव (वही), मृत्युरेव (वस्तुत मृत्यु, मृत्यु ही), वसुधैव—(सारी पृथ्वी), **चैव** (च+एव, और भी), **तथैव** (उसी प्रकार), **नैव** (सर्वथा नही, किसी प्रकार से नही)।

एवम्—(ऐसा, वैसा)—एवमस्तु (ऐसा हो), मैवम्—(ऐसा नही)।

कच्चित् (कद्+चित्)—(यह वैदिक प्रश्नवाचक किम् के नपुसक लिंग शब्द कद्+चित् से बना है)। इसका प्रश्नवाचक के रूप मे प्रयोग होता है और आशा की जाती है कि 'हाँ' का उत्तर मिलेगा, अर्थात्—मुझे आशा है कि। कच्चिद् दृष्टा त्वया राजन् दमयन्ती (हे राजन्, मुझे आशा है कि तुमने दमयन्ती देखी है?)। न कच्चित् का अर्थ होगा मुझे आशा नही है। कच्चित्तु नापराध ते कृतवानस्मि (मुझे आशा है कि मैंने आपका कोई अपराध नही किया है?)।

कामम्—(काम 'इच्छा' शब्द का द्वि०१) इसका मुख्य रूप से 'भले ही' प्रसन्नता से' अर्थो मे क्रिया-विशेषण के रूप मे प्रयोग होता है। किन्तु सबद्ध निपात के रूप मे भी इसका बहुत से स्थानो पर प्रयोग मिलता है। (१) 'अवश्य' 'निश्चित रूप से' 'वस्तुत', (२) 'माना कि' 'सभवत' (इसके साथ प्राय लोट् लकार आता है), इसके बाद प्रतिकूलार्थक क्रियाविशेषण होता है—**'कामम्—तु, किन्तु, तथापि या पुन'** ('यह सत्य है कि किन्तु', 'यद्यपि—'फिर भी', **कामम् न तु** (वस्तुत . किन्तु नही, अच्छा है अपेक्षाकृत इसके कि) (जैसे—वरम् न का प्रयोग होता है।)

किम्—(१) क्या ?, (२) क्यो ? (३) केवल प्रश्नवाचक निपात, जिसका अनुवाद नही किया जाता और आशा की जाती है कि 'नही' उत्तर मिलेगा (लेटिन—num)। (४) 'क्या यह ? या 'अथवा' अर्थ के सूचक उत, वा आहोस्वित् शब्दो का प्रयोग होता है।

किम् का निम्नलिखित निपातो के साथ सयुक्त रूप से प्रयोग होता है—**किं च** (और भी), **किन्तु** (किन्तु, परन्तु), **किमिति, किमिव** (क्यो ? किस लिए ?), **किंस्विद्** (क्या ? क्या भला ?), **किमपि**—(१) बहुत, जोर से। किमपि रुदती—जोर से रोती हुई। (२) और अधिक। किमु, किमुत, किं

पुन ।(कितना अधिक, कितना कम)—एकैकम् अप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् (इनमे से एक एक चीज भी अनथ के लिए है, जहाँ पर चारो चीज होगी वहाँ कितना अधिक अनथ होगा ?) ।

किल—(१) वस्तुत, अवश्य, निश्चित रूप से । यह जिस शब्द पर बल देता है, उसके बाद आता है । अर्हति किल कितव उपद्रवम् (दुष्ट वस्तुत विनाश चाहता है) । 'किल' का कभी कभी केवल बल देने के लिए प्रयोग होता है, एकस्मिन् दिने व्याघ्र आजगाम किल (एक दिन एक व्याघ्र आया) । (२) 'कहा जाता है कि' 'मानते है कि'—बभूव योगी किल कातवीय (कहा जाता है कि कार्तवीर्य नाम के एक योगी हुए थे) ।

कृतम्—(क्त प्रत्ययान्त का नपु० १) 'किया' । इसका अलम् के तुल्य 'बस' 'मत' अर्थ मे तृतीयान्त के साथ प्रयोग होता है । कृत सन्देहेन—सन्देह मत करो ।

केवलम्—'केवल' । केवल स्वपिति (वह केवल सोता है) । **न केवलम्—अपि** (न केवल—अपि तु)। **क्व** —कहाँ ? यदि यह दुहराया जाता है तो इसका अभिप्राय होता है कि दोनो बातो मे बहुत अन्तर है, या दोनो बातो मे कोई मेल नही है । क्व सूर्यप्रभवो वश क्व चाल्पविषया मति —कहाँ तो सूर्य से उत्पन्न होने वाला महान् वश और कहाँ मेरी तुच्छ बुद्धि ? अर्थात् सूर्य-वश का वैभव इतना अधिक है कि मेरी तुच्छ बुद्धि के लिए सभव नही है कि उसका वर्णन कर सकू ।

खलु—(१) वस्तुत, अवश्य । यह प्राय पूववर्ती शब्द पर केवल बल देने के लिए प्रयुक्त होता है। (२) 'कृपया' 'प्रार्थना है कि' निवेदन अर्थ वाले स्थानो पर। देहि खलु मे प्रतिवचनम् (कृपया मुझे उत्तर दे) (जर्मन—Doch)। (३) क्त्वा-प्रत्ययान्त के साथ—'बस, मत'। अलम् के तुल्य ही खलु निषेधार्थक है। अल रुदित्वा—मत रोओ। **न खलु**—'नही' 'मुझे' आशा है कि आप नही' ।

च—अनुदात्त निपात (लेटिन—que) 'और' 'भी' । गोविन्दो रामश्च (गोविन्द और राम) । कविता मे इस 'च' का प्रयोग कभी-कभी प्रथम शब्द के बाद भी किया जाता है । जैसे—'इहामुत्र च' के स्थान पर 'इह चामुत्र' प्रयोग

(इस लोक मे और परलोक मे)। जहाँ पर दो से अधिक शब्दो को 'च' के द्वारा जोडना होता है, वहाँ पर 'च' अन्तिम शब्द के बाद लगता है, जैसाकि अग्रेजी मे भी होता है। **च—च** (१) 'दोनो—और', (२) 'एक ओर—दूसरी ओर', 'यद्यपि—तथापि', (३) 'ज्योही—त्योही'।

चेद्—(च+इद्) (यदि) यह कभी भी वाक्य या पाद के प्रारम्भ मे नही आता (परन्तु 'यदि' प्रारम्भ मे आता है)। **अथ चेत्** (परन्तु यदि)। **'न चेद्'** या **'नो चेद्'** (यदि नही=अन्यथा)—सर्व विमृश्य कर्तव्य नो चेत् पश्चात्ताप व्रजिष्यसि (ठीक विचार करके ही सब काम करना चाहिए, अन्यथा पश्चात्ताप करना पडेगा)। **'चेन्न'**—यदि नही)—भावि चेन्न तदन्यथा (यदि ऐसा होनहार है, तो इसके विपरीत नही होगा)। **इति चेन्न**—यदि आपकी यह आपत्ति है तो यह ठीक नही है।

जातु—(१) सर्वथा, कभी। (२) सभवत, शायद, (३) एक बार, एक दिन। **'न जातु'** (कभी नही, मर्वथा नही, किसी प्रकार नही)।

तत—(१) वहाँ से, (२) तब, उसके बाद। **'ततस्तत'**—इसके बाद, कहते रहिए (जो आप कह रहे थे, उसे कहते रहिए)।

तथा—(१) वैसे इस प्रकार, तदनुसार। (२) इसी प्रकार, भी, और भी, और (=च, और अर्थ)। (३) (ऐसी ही बात है, हाँ ऐसा हो जाएगा। **'तथा च'**—और भी, इसी प्रकार। **'तथापि'**—तथापि, फिर भी। **'तथा हि'**—क्योकि, उदाहरण के रूप मे, अर्थात्, नामत। **'तथेति'**—हाँ।

तद्—(तद् शब्द का नपु० प्र०१)—तब, उस अवस्था मे, (२) इसलिए, तदनुसार। राजपुत्रा वय, तद् विग्रह श्रोतु न कुतूहलमस्ति—हम राजकुमार है, अत हमारी उत्सुकता है कि हम युद्ध का वर्णन सुने।

तावत्—(१) तब तक (यावत्—जब तक, का यह सबद्ध शब्द है), (२) तब तक, इस बीच मे, (३) पहले, प्रथमत, (४) त्योही, ठीक इसी समय, तुरन्त (इसके साथ लोट् लकार का प्रयोग होता है, अर्थ होता है—सबसे पहले, सब काम छोडकर)। इतस्तावदागम्यताम्—कृपया तुरन्त इधर आइए। (५) अभी, तो (यह 'कभी' का विलोम शब्द है)। (६) केवल,

(७) तो, कम से कम, सर्वथा—न तावन्मानुषी (वह मानव स्त्री तो सर्वथा नही है)। (८) (पादपूर्त्यर्थक) वस्तुत , अवश्य, यह सत्य है कि, (इसके बाद 'तु' लगता है—'किन्तु' आदि)। (९) किसी विचार को पुष्ट करता है (जैसे—'एव' करता है)—जहाँ तक, जहाँ तक इसका सबन्ध ह, केवल, अभी, या अर्थ पर जोर देने का ही काम करता है।

तावत् च (कठिनाई से तब), न **तावत्** (अभी नही)।

तु—(यह वाक्य के प्रारम्भ मे नही आता)। किन्तु, तथापि। यह कभी-कभी 'च' या 'वा' के अथ मे आता है या केवल पादपूर्त्यथ होता है। यह कभी कभी 'च' के साथ भी आता है और कभी कभी उसी वाक्य मे दो बार भी आता है। **अपि तु**—अपि तु, बल्कि, **न तु**—न कि, **न त्वेव तु**—सवथा नही, **परन्तु**—किन्तु, फिर भी, **तु—तु**—वस्तुत —किन्तु, **च– न तु**—यद्यपि—तथापि नही।

न—नही। अनिश्चयसूचक सर्वनाम के साथ इसका अर्थ 'नही' होता है। जैसे—**न कोऽपि**—कोई नही, अर्थात् कोई आदमी नही। **न किंचित्**—कुछ नही। **न क्वचित्**—कही नही। **न कदाचित्**—कभी नही। दो 'न' आने पर (**न—न**) बलपूवक 'हाँ' का अर्थ होता है। जैसे—न तत्र कश्चिन्न बभूव तर्पित—वहाँ कोई ऐसा व्यक्ति नही था, जो सन्तुष्ट न हुआ हो, अर्थात्—वहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति सर्वथा सन्तुष्ट हो गया था। **नापि**—न तो। **नैव**—सवथा नही।

ननु—(न+नु) (१) नही ? ऐसे प्रश्नवाचक वाक्यो मे जिनके उत्तर की 'हाँ' मे आशा की जाती हो (लेटिन nonne)=अवश्य, वस्तुत । नन्वह ते प्रिय—क्या मैं वस्तुत आपका प्रिय हूँ ? (२) ननु का प्रश्नवाचक सर्वनामो और लोट् लकार के साथ अर्थ होता है—कृपया बताइए। ननु को भवान्—कृपया बताइए आप कौन हैं ? ननु उच्यताम्—कृपया बताइए। (३) तर्क या युक्ति मे इसका अर्थ है—'क्या ऐसा नही है कि' अर्थात्—'इस पर यह आपत्ति है कि' इसके बाद अत्रोच्यते' का प्रयोग होगा, जिसका अर्थ है—आपकी बात का उत्तर है।

नाम—इसका क्रिया-विशेषण के रूप मे अर्थ होता है—'नाम वाला'। जैसे—नलो नाम—नल नाम वाला। इसके अतिरिक्त निपात के रूप मे इसके निम्नलिखित अथ होने है —(१) वस्तुत, अवश्य, निश्चित रूप से। जैसे—मया नाम जितम्—मैने वस्तुत जीता है। (२) सभवत। दृष्टस्त्वया कश्चिद् धर्मज्ञो नाम—तुमने सभवत कोई धर्मात्मा व्यक्ति देखा है। (३) व्यग्य के रूप मे, प्रश्नवाचक शब्दो के साथ=भला कौन। को नाम राज्ञा प्रिय —भला कौन राजाओ का प्रिय है? (४) लोट् लकार के साथ=माना कि, भले ही, इतना अधिक। स धनी भवतु नाम—वह भले ही धनी हो।

अपि नाम—(१) वाक्य के प्रारम्भ मे विधिलिङ् के साथ='सभवत'। (२) अकेला 'अपि' शब्द जितना बल दे सकता है, उससे अधिक यह पूर्ववर्ती शब्द पर बल देता है। **ननु नाम**—अवश्य, वस्तुत। ननु नामाहमिष्टा किल तव—मैं वस्तुत तुम्हारी प्रिया हूँ।

नु—'अब' प्रश्नवाचक शब्दो के साथ=भला कौन? को नु—भला कौन? **नु—नु**=जहाँ पर यह दुहरा प्रश्नवाचक के रूप मे प्रयुक्त होता है, वहाँ इसका अर्थ होता है, 'यह अथवा वह'। अय भीमो नु धर्मो नु—क्या यह भीम है अथवा धर्म है?

नूनम्—यह प्राय वाक्य के प्रारम्भ मे आता है=अवश्य, निश्चित रूप से असदिग्ध रूप से। नून मन्ये न दोषोऽस्ति नैषधस्य—मैं यह निश्चितरूप से मानता हूँ कि इसमे निषध के राजा (नल) का कोई दोष नही।

नो—(न + उ) इसका वेद मे अर्थ था—'और नही', 'अथवा नही',। किन्तु सम्कृत मे इसका अथ केवल 'नही'। (देखो—चेद्)।

परम्—(१) बहुत अधिक बहुत, पूर्णतया। परमनुगृहीतोऽस्मि—मैं बहुत अधिक कृतज्ञ हूँ। (२) अधिक से अधिक। आयुस्तत्र मर्त्याना पर त्रिशद् भवति—वहाँ पर मनुष्यो की आयु अधिक से अधिक ३० (वर्ष की) होती है। (३) केवल, सिर्फ। विषाणे स्त पर न ते—तुम्हारे केवल सीग ही नही हैं। (४) किन्तु, परन्तु, तथापि। सर्वशास्त्रपारगा पर बुद्धिरहिता—वे सभी शास्त्रो मे पारगत हो गए है, किन्तु बुद्धि से रहित है।

पुन—(१) फिर, दुबारा, (२) दूसरी ओर, इसके अतिरिक्त, इसके विपरीत, किन्तु। **पुन पुन.** या केवल **पुन** =बार बार, कई बार।

प्राय , प्रायश , प्रायेण—(१) प्राय , अधिकाशतः, सामान्यतया । (२) अधिक सभव है ।

बाढम्—(१) अवश्य, निश्चित रूप से, वस्तुत । (२) स्वीकृति-सूचक—'बहुत अच्छा' । (३) अनुमतिसूचक—' 'हाँ' यह ऐसा ही है' ।

मा—यह निषेधार्थक निपात है और सामान्यतया इसका प्रयोग लोट् लकार तथा अ-रहित लुङ् लकार के रूप के साथ होता हे । जैसे—मा गच्छ या मा गम —मत जाओ । **मा स्म**—पूर्वोक्त अथ मे ही उक्त प्रकार से प्रयुक्त होता है । **मा** और **मैवम्** (मा एवम्) दोनो अनुदात्त रूप मे प्रयुक्त होते है, अर्थात् ऐसा नही, मत। इसी प्रकार **मा तावत्**—'ऐसा न हो कि', 'परमात्मा न करे कि', **मा नाम**—इसका विधिलिङ् के साथ प्रयोग होता है—ऐसा न हो कि, कही ऐसा न हो । मा नाम रक्षिण —कही ऐसा न हो कि वहाँ सिपाही हो ।

मुहु—(१) प्रतिपल, निरन्तर, बार-बार (यह प्राय द्विरुक्त 'मुहुर्मुहु' प्रयुक्त होता है) । (२) इसके विपरीत। **मुहु —मुहु** —अब ऐसा—अब ऐसा, कभी ऐसा—कभी ऐसा ।

यत —(यत् शब्द का पचमी एक० का रूप है) । (१) जहाँ से (इसका अर्थ प्राय —'कहाँ' और 'किधर भी होता है) । (२) किसलिए, क्यो । (३) क्योकि, चूकि (पूव वक्तव्य की पुष्टि के लिए कोई श्लोक उद्धृत करते समय इसका प्राय प्रयोग होता है) । (४) कि' क्योकि' प्रश्न के बाद या तथ्य-कथन से पहले । किं नु दु खमत परम्, इच्छासपद् यतो नास्ति—इससे अधिक और क्या दु ख हो सकता है कि इच्छा की पूर्ति नही हुई ?

यत्र—(१) जहाँ, (२) यदि, (३) जब, (४) जहाँ से लेकर ।

यथा—(१) 'जैसे' यथाज्ञापयति देव —जैसी महाराज की आज्ञा । (२) तुल्य, सदृश (=इव)—राजते भैमी सौदामिनी यथा—राजा भीम की पुत्री (दमयन्ती) ऐसी शोभित होती थी, जैसे बिजली । (३) जैसे, उदाहरण के रूप मे । (४) जिस प्रकार कि, क्योकि—यथा त्वदन्य पुरुष न मस्यति—(क्योकि वह तेरे अतिरिक्त अन्य पुरुष को नही सोचेगी । (५) जैसे, जिस प्रकार—अह तथा करिष्ये यथा स वध करिष्यति—मैं वैसा प्रकार करूँगा, जिस प्रकार व उसका वध कर देगा । (६) कि—यह वाक्य के अन्त मे आता है । इसके

साथ मे 'इति' आता भी है और नही भी। यह (यत् के तुल्य) स्वीकृति-सूचक वाक्य का सयोजक होता है। जैसे—त्वयोक्त मे यथा—तुमने मुझ से कहा कि .। **यथा यथा . तथा तथा**—(जैसे जैसे वैसे वैसे)। **तद्यथा**—जैसे कि, जैसे उदाहरणार्थ।

यद्—(१) 'कि' यह अग्रिम वक्तव्य को प्रस्तुत करता है। इसके साथ अन्त मे 'इति' आता भी है और नही भी। जैसे—वक्तव्य यदिह मया हता प्रियेति (कह देना कि मैने अपनी प्रिया का यहाँ वध किया है)। (२) 'जिससे कि' 'कि'। कि यन्न वेत्सि त्वम् (क्या कारण है कि तुम नही जानते हो ?)। (३) 'जिससे कि'। कि शक्य कर्तु यन्न क्रुध्यते नृप (क्या किया जा सकता है, जिससे कि राजा क्रुद्ध न हो ?)। (४) 'क्योकि' 'चूकि'।

यदि—(१) यदि (देखो—चेद्), **यदि वा**—'अथवा' 'या'—अज्ञानाद् यदि वा ज्ञानात् (जानते हुए अथवा अनजाने)। (२) 'फिर भी'। **यद्यपि**—यदि+अपि, 'यद्यपि'।

यावत्—(१) (सबद्ध शब्द तावत् के साथ)। 'जबतक' 'तक' 'ज्योही'। (२) 'इस बीच' 'अभी' अभिप्रेत कार्य को प्रकट करते हुए —यावदिमा छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि ताम् (इस छाया का आश्रय लेकर मैं अभी उसकी प्रतीक्षा करता हूँ। **यावन्न**—यावत्+न, (१) 'जब तक नही='तक'। (२) 'यदि नही'। **न यावत्—तावत्** 'जब तक नही तब तक' 'ज्योही तभी'।

येन—(१) 'जिससे' 'जैसे' (इसका सबद्ध शब्द 'तेन' है)। (२) 'जिस कारण से' 'जिस लिए' 'जिससे'। श्रृणु येन न दृश्यन्ते महीक्षित (सुनो, जिस कारण से राजा लोग दिखाई नही पडते हैं)। (३) 'क्योकि 'चूकि' (सामान्यतया यह सबद्ध शब्द तेन के साथ आता है)। दूरस्थामपि येन पश्यसि कान्ता त योग मम चक्षुषोऽप्युपदिश(क्योकि तुम मेरी दूर स्थित पत्नी को देख रहे हो, अत मेरी दृष्टि को भी उस योग का उपदेश दो)। (४) 'जिससे कि'। उपायो दृष्टो येन दोषो न भविता (एक उपाय सोच लिया गया है, जिससे कोई बुराई नही होगी)। (५) 'जिस कारण से' 'जिससे'। तस्य च्छात्रता व्रजामि येन विश्वस्तो भवति (मैं उसका छात्र बन जाऊगा, जिससे वह विश्वस्त हो जाए)।

वत्—'तुल्य'। यह समस्त पद के अन्त मे लगता है और इसका 'इव' के अर्थ मे प्रयोग होता है। मृतवत् (मृत व्यक्ति के तुल्य)।

वर न—शब्दार्थ—'यह अच्छा है न कि='इसकी अपेक्षा अच्छा है'। सामान्यतया 'न' के बाद च, तु या पुन का प्रयोग होता है)। वर प्राणत्यागो न पुनरधमानाम् उपगम (नीचो से समागम की अपेक्षा मर जाना अच्छा है)।

वा—अनुदात्त निपात (लेटिन—ve)। यह सबद्ध शब्द के बाद आता है (छन्द की आवश्यकता के अनुसार यह सबद्ध शब्द से पहले भी आता है) (१) 'अथवा' (२) 'विकल्प से' 'या'। जातदन्तस्य वा कुर्यु (बच्चे के दाँत निकलने पर ऐच्छिक रूप से हवि देने का कार्य करे)। (३) 'तुल्य' 'सदृश' (=इव) जाता मन्ये शिशिरमथिता पद्मिनी वाऽन्यरूपाम् (मैं समझता हूँ कि वह पाले से मारी हुई कमलिनी के तुल्य दूसरी ही आकृति की हो गई होगी)। (४) प्रश्नवाचक शब्द के साथ, 'क्या लाभ'। कारोन चक्षुषा किं वा (कानी आँख से क्या लाभ ?)। **वा—वा**—(यह. या यह)।

वै—प्राचीन सस्कृत मे इसका प्रयोग पूववर्ती शब्द पर बल देने के लिए होता था। यह अब सस्कृत-काव्यो मे केवल पादपूर्ति के लिए प्राय प्रयुक्त होता है।

सत्यम्—(१) वस्तुत, अवश्य, निश्चय से। (२) ठीक ढग से, वस्तुत, उचित रूप से। (३) सत्य है, यह ऐसा ही है। (४) आपका कहना ठीक है। (उत्तर के रूप मे)। (५) यह ठीक है किन्तु (तु, कि तु, तथापि के साथ)।

ह—यह अनुदात्त निपात है। प्राचीन सस्कृत मे यह पूर्ववर्ती शब्द पर कुछ बल देता था, किन्तु परकालीन सस्कृत मे यह केवल पादपूर्ति के लिए प्रयुक्त होता है और अधिकाशत पद्य के अन्त मे रहता है।

हि—यह वाक्य के प्रारम्भ मे कभी नही आता, किन्तु प्रथम शब्द के बाद प्राय प्रयुक्त होता है (१) क्योकि। (२) वस्तुत, अवश्य। त्व हि तस्य प्रियवयस्य (तुम वस्तुत उसके प्रिय मित्र हो)। (३) प्रश्नवाचक शब्दो या लोट् लकार के साथ—'भला'। कथ हि देवाञ्जानीयाम् (मैं भला देवताओ को कैसे जान सकता हूँ ?) तद्धि दर्शय (भला, उसको दिखाओ)। (४) इसका प्रयोग प्राय पादपूर्ति के लिए होता है, विशेषरूप से प्रकृतिभाव को दूर करने के लिए

या पद्य मे पूववर्ती वर्ण को गुरु वर्ण करने के लिए। कभी कभी एक ही वाक्य मे दो बार 'हि' का प्रयोग होता है।

विस्मयबोधक अव्यय (Interjections)

१८१ **अपि**—यह सबोधन के साथ प्रयुक्त होता है या सबोधन का स्थान ग्रहण करता है। अपि=हे, अरे, अजी, हे मित्र। अपि मकरोद्यान गच्छाव (हे मित्र, हम दोनो प्रेमवाटिका मे जाते है)।

अये—(१) यह आश्चयसूचक निपात है। मुख्यतया यह नाटको मे आता है। अये बसन्तसेना प्राप्ता (आह, वसन्तसेना आ गई है !)। (२) कभी कभी इसका प्रयोग अपि के तुल्य सबोधक-सूचक निपात के रूप मे होता है—

अरे—यह सबोधन-सूचक निपात है। अरे=अरे, ओ, हे।

अहह—(१) यह आनन्दसूचक अव्यय हे। (२) दु ख या हाय का अर्थ प्रकट करना है। अहह महापङ्के पतितोऽस्मि (हाय, मैं गहरे कीचड मे फँस गया हूँ)।

अहो—यह आश्चर्य, प्रसन्नता, दु ख, क्रोध, प्रशसा या आक्षेप-सूचक अव्यय है। यह साधारणतया प्रथमान्त के साथ प्रयुक्त होता है। अहो गीतस्य माधुर्यम् (ओह, गीत की मधुरता !)। अहो हिरण्यक श्लाघ्योऽसि (ओह, हे हिरण्यक, तुम प्रशसनीय हो !)।

आ—(देखो नि० २४) सहसा स्मरण को सूचित करने के लिए मुख्यतया इसका प्रयोग होता है। आ एव किल तत् (ओह, वस्तुत यह ऐसा था !)।

आ—(देखो नि० २४) यह आनन्द या रोष को सूचित करता है। आ अतियिपरिभाविनि (आह, ओ अतिथि का तिरस्कार करने वाली !)।

कष्टम्—खेद है, दु ख है। यह प्राय धिक् या हा धिक् के साथ मिला हुआ प्रयुक्त होता है।

दिष्टया—(तृ०, भाग्य से) सौभाग्य से। इसका प्राय वृध् धातु (बढना) के साथ प्रयोग होता है। 'तुम समृद्ध हो रहे हो' अर्थात् 'प्रसन्नता की बात है' बधाई है'। दिष्ट्या महाराजो विजयेन वर्धते (विजय के लिए महाराज को बधाई है)।

धिक्—यह असन्तोष, घृणा और खेदसूचक अव्यय है। धिक्कार है।

इसके साथ नियमितरूप से द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। प्रथमा, सबोधन और षष्ठी भी इसके साथ मिलती है। धिक् त्वामस्तु, तुझे धिक्कार है !) ।

बत—यह आश्चय और खेद को सूचित करता है। इसी अर्थ मे अन्य विस्मयसूचक अव्यय भी इसके साथ सबद्ध हो जाते है। बता रे, अहो बत, अपि बत ।

भो—(१) सामान्यतया किसी व्यक्ति को सबोधन करने का सूचक अव्यय है, 'हे' 'अरे'। यह भवत् शब्द पुंलिग सबोधन एकवचन (भवस्) का सक्षिप्त रूप है। यह पुरुष और स्त्री दोनो को सबोधन करने मे प्रयुक्त होता है। इसके साथ बहुवचन का प्रयोग होता है। यह प्राय दो बार पढा जाता है —भो भो पण्डिता (ओ पण्डितो !)। (२) इसका कभी-कभी आत्मभाषण मे भी 'हाय' अथ मे प्रयोग होता है।

साधु—(१) बहुत अच्छा, शाबाश। (२) लोट् के साथ—'आओ'। दमयन्त्या पण साधु वर्तताम् (आओ, दमयन्ती को बाजी पर लगाओ)। (३) अच्छा, इसके साथ लट् उ० पु० का प्रयोग होता है। साधु यामि (अच्छा, मैं अभी जा रहा हूँ)। (४) अवश्य, निश्चित रूप से। यदि जीवामि साध्वेन पश्येयम् (यदि मैं जीवित रहा तो उसे अवश्य देखूगा)।

स्वस्ति—(१) कल्याण हो, शुभ हो। (२) जय हो।

हन्त—(१) उपदेशादि सुनने के लिए आह्वान -'आओ' 'देखो' 'प्रार्थना करता हूँ'। हन्त ते कथयिष्यामि (आओ, मैं तुम्हे बताऊगा), शृणु हन्त (मेरी प्रार्थना है, सुनो)। (२) यह खेदसूचक है—हाय। ३ यह प्रसन्नता, आश्चर्य और शीघ्रता को सूचित करता है ओह, आह।

हा—१ यह आश्चर्य या सन्तोष को प्रकट करता है —आह !,(२) यह दुखसूचक है —हाय। हा हतास्मि (हाय, मैं मर गया)। यह प्राय सबोधन के साथ आता है। कभी कभी इसका प्रयोग द्वितीयान्त के साथ होता है—अफसोस है। इसके साथ कष्टम्, धिक्, या हन्त का भी प्राय प्रयोग होता है।

अध्याय—६

कृदन्त और तद्धित रूप तथा समास

(Nominal Stem formation and Compounds)

(अ) कृदन्त और तद्धितरूप (Nominal Stems)

१८२ यद्यपि कुछ कृदन्त शब्द केवल शुद्ध धातु ही होते है, तथापि कृदन्त और तद्धित शब्द मुख्यतया धातु के बाद प्रत्यय लगाकर बनाए जाते हैं। ये प्रत्यय दो प्रकार के है —(१) **कृत् प्रत्यय** (Primary Suffixes), ये धातु के बाद तुरन्त लगते है (धातु से पूर्व उपसर्ग भी हो सकते हैं)। (२) **तद्धित प्रत्यय** Secondary Suffixes), ये प्रत्ययान्त शब्दो से होते हैं।

(१) **कृदन्त रूप**—कृदन्त रूपो मे धातु प्राय अपने सबल (Strong) रूप मे रहती है। जैसे—विद् (जानना) > वेद (ज्ञान)। अर्थ की दृष्टि से इन्हे दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—(१) भाववाचक सज्ञा शब्द, (२) कर्तृवाचक सज्ञा शब्द। इनका कर्ता और कर्म के रूप मे प्रयोग होता है। जैसे—मन् (सोचना) > मति (स्त्रीलिंग, बुद्धि)। युध् (लडना) > योध (पु०, योद्धा, लडने वाला)। अन्य अथ इनके ही परिवर्तित रूप है। अत कुछ भाव-वाचक सज्ञा शब्द मूर्त अर्थ के द्योतक हो जाते हैं। जैसे—नी (ले जाना) > नयन (नपु०, ले जाना) का अर्थ नयन (नेत्र, ले जाने वाला अग) हो जाता।

(क) जब केवल शुद्ध धातु ही प्रातिपदिक (सज्ञा शब्द) के रूप मे प्रयुक्त होती है, तब प्राय इसमे कोई अन्तर नही होता है। जैसे—द्विष्(पु०, द्वेष करने वाला, शत्रु) (८०)। युध् (स्त्री० युद्ध, पु० योद्धा)। इस प्रकार के बहुत से शब्द समस्त शब्द के अन्त मे प्रयुक्त होते हैं। जैसे—०दुह् (दुहने वाला) (नि० ८१)। आ अन्त वाली धातुओ के आ को ह्रस्व होकर अ हो जाता है तथा इ, उ और ऋ अन्त वाली धातुओ के बाद त् लग जाता है। ये शब्द समास के

अन्तिम पद के रूप मे ही रहते है। जैसे—सुकृत् (अच्छा कार्य, सत्कर्म, पुण्य) (देखें नि० १८७ ख)।

(ख) धातु से होने वाले बहुत से कृत् प्रत्ययो का पर्याप्त विस्तार के साथ वर्णन हो चुका है। जैसे—वर्तमान और भविष्यत् अर्थ मे होने वाले कृत् प्रत्यय—अत् (नि० ८५, १५६), आन और मान (१५८), लिट् के स्थान मे होने वाला वास् (८६, १५७), कर्मवाच्य भूतकाल मे होने वाले त और न (१६०), कृत्य प्रत्यय—अनीय[1], तव्य १,[2] और य (१६२)। जिन शब्दो से तुलनार्थक ईयस् और इष्ठ कृत् प्रत्यय लगाकर कृदन्त शब्द बनाए जाते है, उनका वर्णन पहले किया जा चुका है (८८, १०३, २)। शेष मे से निम्नलिखित कृत् प्रत्यय आवश्यक है और अधिक प्रयुक्त होते है। ये अकारादि—क्रम से नीचे दिए जा रहे है —

अ—इससे प्रातिपदिक और विशेषण शब्द बनते है। जैसे—सृज् (बनाना) >सर्ग। (पु०, सृष्टि), मिह् (क्षरित होना) >मेघ (पु०, बादल, शब्दार्थ—बरसने वाला), भज् (बाटना) >भाग (पु०, हिस्सा), प्री (प्रसन्न करना) > प्रिय (प्रसन्न करने वाला, प्यारा)। ये अ-प्रत्ययान्त प्राय सभी शब्द नियमित रूप से पुलिग है, किन्तु युग(नपु०, जुआ) शब्द नपु० है (लेटिन—yog-u-m)।

अन्—पु० कर्ता-बोधक सज्ञा शब्द। कुछ अपूर्ण नपु० शब्द भी है। जैसे—राजन् (पु०, शासन करने वाला, राजा) (९०, १)। अहन् (नपु०, दिन) (९१, २)।

अन—नपु०, भाववाचक सज्ञाशब्द। जैसे—दृश् (देखना) >दर्शन (नपु०, दृष्टि), भुज् (खाना) >भोजन (नपु, भोजन)। ये कर्तृ-बोधक सज्ञाशब्द भी होते है। जैसे—वाहन (नपु० ले जाने वाला, सवारी)। बहुत कम अवस्थाओ मे इसमे गुण का अभाव रहता है। जैसे—कृपण (रोना, दयनीय)।

अस्, इस्, उस्—नपु०, भाववाचक सज्ञा शब्द, प्राय मूर्त अर्थ वाले। (नि० ८३)। जैसे—वचस् (वाणी), ज्योतिस् (प्रकाश), धनुष् (धनुष)।

---

१ इन दो कृत्य प्रत्ययो का उत्तरभाग ईय और य तद्धित प्रत्यय है (१८२,२), किन्तु ये पूरे प्रत्यय कृत् प्रत्यय के तुल्य प्रयुक्त होते हैं (१६२,३)।

२ तव्य का पूर्वभाग सम्भवत प्राचीन तुमर्थक प्रत्यय तवे से लिया गया है। (परिशिष्ट ३, १३ ख)।

इ—स्त्री०, भाववाचक सज्ञाशब्द, कर्तृवाचक सज्ञाशब्द भी। विशेषण और सज्ञाशब्द, तथा कुछ अज्ञात उत्पत्ति वाले नपुसकलिंग भी। जैसे—कृषि (स्त्री०, जोतना), शुचि (चमकने वाला), पाणि (पु०, हाथ), अक्षि (नपु०, आँख), अस्थि (नपु०, हड्डी), दधि (नपु०, दही) (देखो नि० ६६,३)।

उ—कर्तृवाचक सज्ञाशब्द, विशेषण और सज्ञाशब्द। सज्ञाशब्द अधिकाशत पुलिंग होते है, किन्तु इनमे बहुत से स्त्री० और नपु० शब्द भी होते है। जैसे—तनु (पतला) (लेटिन—ten-u-1-s), बाहु (पु०, हाथ), हनु (स्त्री०, ठोडी), जानु (नपु०, घुटना)।

उन—विशेषण शब्द और पु० तथा नपु० सज्ञाशब्द। जैसे—तरुण (युवक), मिथुन (पु०) (नपु०, जोडा), शकुन (पु०, पक्षी)।

ऊ—स्त्री०, अधिकाश शब्द पुलिग और उ अन्त वाले स्त्रीलिग शब्दो से मिलते- जुलते है। जैसे—तनू (शरीर, स्वतत्ररूप से बना हुआ शब्द), चमू (सेना), वधू (बहू)।

त—यह सामान्यतया कर्मवाच्य भूतकालिक प्रत्यय है, साथ ही यह व्यापकरूप से, विशेषण और सज्ञाशब्दो मे प्रत्यय का काम करता है। जैसे—शीत (ठडा), असित (काला), दूत (पु, दूत), हस्त (पु०, हाथ)।

ति—स्त्रीलिंग, भाववाचक सज्ञाशब्द। जैसे—भूति (कुशलता, कल्याण), जाति (जन्म), ज्ञाति (सबन्धी)। यह कभी-कभी मूर्त वस्तु पुरुष को द्योतित करता है, अत पुलिंग भी माना जाता है।

तु—यह मुख्यरूप से तुम्-प्रत्ययान्त शब्दो का आधार है। जैसे—गन्तुम् (जाने को)। तु-प्रत्ययान्त कुछ पु० और नपु० सज्ञा शब्द भी होते है। जैसे—तन्तु (पु०, धागा), हेतु (पु०, कारण), (प्रेरणा देना अर्थ वाली हि धातु से यह शब्द बना है), वास्तु (नपु०, निवास स्थान)।

तृ—पु०, कर्तृवाचक सज्ञा शब्द। जैसे—कर्तृ (करने वाला)। सबन्धबोधक नामो वाले स्त्रीलिग और पुलिग शब्द भी तृ-प्रत्ययान्त हैं। जैसे—मातृ (स्त्री०, माता), पितृ (पु०, पिता)।

त्र—(पु०, नपु०), त्रा (स्त्री०), साधन या हेतुवाचक शब्द। जैसे—पा (पीना) धातु से पात्र (नपु०, पात्र), दश् (काटना) से दष्ट्र (पु०, काटने

वाला, दाढ), मन् (सोचना) से मन्त्र (पु०, प्राथना), मा (नापना) से मात्रा (स्त्री०, मात्रा, परिमाण) ।

थ—(पु०, नपु०), **था** (स्त्री०)—अर्थ (पु०, अथ, लक्ष्य,), तीथ (नपु०, घाट), गाथा (स्त्री०, गीत, गान) ।

न—(पु०, नपु०), **ना** (स्त्री०)—ये कर्मवाच्य भूतकालिक कृदन्त रूप बनाते है (१६०, १), साथ ही विशेषण ओर सज्ञा शब्द भी होते है । जैसे—कृष्ण (काला), वर्ण (पु०, रग), पर्ण (नपु०, पख), तृष्णा (स्त्री०, प्यास) ।

नि—(पु०, स्त्री०)— जैसे—अग्नि (पु०, अग्नि) (लेटिन—Ig-ni-s), श्रेणि (स्त्री०, पक्ति) ।

नु—(पु०, स्त्री०) जैसे—भानु (पु०, प्रकाश), सूनु (पु०, पुत्र), धेनु (स्त्री०, गाय) ।

म—विशेषण, पु० सज्ञाशब्द । जैसे—भीम (भयकर), धूम (पु०, धुआँ)।

मन्—(पु०, नपु०) मुख्यतया नपु० भाववाचक सज्ञाशब्द । जैसे—कर्मन् (नपु०, कर्म), ब्रह्मन् (नपु०, प्राथना), अश्मन् (पु०, पत्थर), ब्रह्मन् (पु०, प्रार्थना करने वाला, स्तोता) (९०,३) ।

मि—(पु०, स्त्री०), **मी** (स्त्री०) जैसे—रश्मि (पु०, किरण), भूमि (स्त्री०, पृथ्वी), भूमी (स्त्री०, भूमि), लक्ष्मी (स्त्री०, समृद्धि) ।

यु—(पु०) जैसे—मन्यु (क्रोध), मृत्यु (मृत्यु) ।

र—(विशेषण), (पु०,नपु० सज्ञाशब्द) जैसे—उग्र(भयकर), रुद्र (पु०,) शिव, (एक देवता का नाम), अभ्र (नपु०, बादल) ।

रु—(विशेषण), (नपु०, सज्ञा शब्द) जैसे—भीरु (डरपोक), अश्रु (नपु०, आँसू) ।

व—(विशेषण)(पु० सज्ञा शब्द) जैसे—सर्व (सब) (लेटिन—Sal-vo-s), अश्व (पु०, घोडा) (लेटिन—eq-uo-s) ।

वन्—(विशेषण), (पु०, नपु०, सज्ञा शब्द) जैसे—पीवन् (मोटा) , ग्रावन् (पु०, पत्थर) (९०, ४), पवन् (नपु०, गाठ, जोड) ।

२. तद्धित प्रत्यय (Secondary Nominal Suffixes)

अ—(विशेषण), (पु०, नपु० सज्ञाशब्द) इससे विशेषण शब्द बनते है। इनमे प्रथम स्वर को वृद्धि होगी। ये शब्द मूल शब्द से सबन्ध या पुत्रादि सबन्ध को सूचित करते है। जैसे मनु (मनु व्यक्ति या मनुष्य) से मानव (मनुष्य-सबन्धी)। इनमे से बहुत से शब्द पु० सज्ञावाचक शब्द हो जाते है। और ये जब भाववाचक होने हे तो नपु० होते हे। जैसे—मानव (पु०, मनुष्य), वैश्वामित्र (पु० विश्वामित्र का वशज), पौरुष (पुरुष-सबन्धी, नपु० पुरुषार्थ)। इन शब्दो मे जब प्रथम स्वर को वृद्धि होती है तो स्त्रीलिंग मे इनके रूपो मे अन्त मे ई अवश्य लगती है।

आ—अकारान्त पु० और नपु० शब्दो को स्त्रीलिंग विशेषण शब्द बनाने के लिए आ लगाया जाता है। जैसे—कान्त (प्रिय) से कान्ता (प्रिया)(९७)।

आनी—अकारान्त देवतावाचक शब्दो से स्त्रीलिंग शब्द बनाने के लिए अन्त मे 'आनी' लगता है। जैसे—इन्द्राणी (इन्द्र की पत्नी)।

आयन—(पु०) इससे अपत्याथक (सन्तानबोधक) शब्द बनते है और प्रथम स्वर को वृद्धि होती है। जैसे—(आश्वलायन अश्वल का पुत्र)।

इ—पु०, अपत्यार्थक शब्द, प्रथम स्वर को वृद्धि। मारुति (मरुतो का पुत्र)। इसी प्रकार सरथ (एक रथ पर घूमने वाला) शब्द से सारथि (सारथि, रथवाहक)।

इन्—युक्त या रखने वाला अर्थ मे अकारान्त शब्दो से इन् होकर विशेषण शब्द बनते हैं। जैसे—बल (पु०, शक्ति) से बलिन् (बलवान्) (नि० ८७)।

ई—यह स्त्रीलिंग प्रत्यय है। हलन्त (व्यजन अन्त वाले) प्रत्ययो म बने हुए पुलिग शब्द (९५), तृ-प्रत्ययान्त (१०१ उ०), उ—अन्तवाले अधिकाश शब्द (९८ ग) और अ—अन्तवाले शब्दो (यदि शब्द मे वृद्धि हुई है तो अवश्य) स्त्रीलिग मे ई लगता है। जैसे—देव (देवता) से देवी (देवी) (देखो नि० १०७)।

ईन—इससे विशेषण शब्द बनते हैं, मुख्यतया अञ्च् धातु से बने हुए शब्दो से दिशावाचक शब्द। जैसे—प्राञ्च् (पूव की ओर) से प्राचीन (प्राचीन, पूर्वी)।

ईय—इससे सामान्य विशेषण शब्द बनते है। जैसे—पर्वत > पवतीय (पहाडी), तद् > तदीय (उसका)।

क—इससे विशेषण और अल्पाथक शब्द बनते है। जैसे—अन्त > अन्तक (समाप्ति)। वृद्धि के साथ बना शब्द —वर्षा > वार्षिक (वर्षा-सबन्धी)। राजन् > राजक (पु०, छोटा राजा), पुत्र > पुत्रक (छोटा पुत्र)। अ-क अन्त वाले शब्दो का स्त्रीलिंग प्राय 'इका' होता है। पुत्रक > पुत्रिका (छोटी पुत्री)।

तन—इससे समयबोधक विशेषण शब्द बनते है। जैसे—नूतन (वर्तमान, नया), पुरातन (स्त्री०—नी) (प्राचीन)।

तम—इससे अतिशय बोधक (Supeilatives) तथा सख्येय (ordinals) शब्द बनते है। जैसे—उत्तम (सबसे ऊचा, उत्कृष्ट), शततम (१०० वॉ)।

तर—इससे तुलनार्थक शब्द बनते है। जैसे—उत्तर (अधिक ऊचा)।

ता—(स्त्री०), **त्व** (नपु०)—भाववाचक शब्दो से 'पन' अथ मे ता और त्व लगते है। जैसे—देवता (देवत्व, देवपन), अमृतत्व (अमरता), पञ्चत्व (पाचपना, अर्थात् पॉच तत्त्वो मे परिवर्तित होना, मृत्यु)।

त्य—विशेषण, पु०, नपु०। उपसर्ग और क्रियाविशेषण शब्दो से सज्ञा-शब्द वनते हैं। जैसे—नित्य (सदा रहने वाला), अपत्य (नपु०, सन्तान), अमात्य (पु, साथी) (अमा=साथ)।

थ—विशेषण। इससे कुछ सख्या शब्दो से सख्येय शब्द बनते है। जैसे—चतुथ (चौथा)।

भ—पु०। इससे पशुओ के नाम बनते है। जैसे—गर्दभ (गधा) वृषभ (बैल)।

म—विशेषण। इसमे कुछ अतिशयबोधक शब्द बनते है, कुछ उपसर्गो से। कुछ सख्येय शब्द भी इससे बनते है। जैसे—अवम (सबसे नीचा), मध्यम (मध्य का), पञ्चम (पाँचवाँ)।

मत्—वि०, अ-अन्त वाले शब्दो को छोडकर अन्य शब्दो से 'युक्त' या 'रखने वाला' अर्थ मे मत् लगता है। जसे—अग्निमत् (यज्ञ की अग्नि रखने वाला, अग्निहोत्री)।

मय—वि०, (स्त्री०, मे ई लगेगा) 'युक्त' 'महित'। जैसे—मनोमय (मन-युक्त, आध्यात्मिक)।

य—वि०, (पु०, नपु०, सज्ञाशब्द। इससे 'सबद्ध' अर्थ मे विशेपण शब्द बनते है। पु० मे अपत्य अथ और नपु० मे वृद्धि-सहित भाववाचक शब्द तथा बिना वृद्धि के सामान्य विशेषण शब्द होगे। जैमे—ग्रीवा (गर्दन) > ग्रैव्य (ग्रीवा-मबन्धी), आदित्य (पु०, अदिति का पुत्र), सुभग (मुन्दर भाग्य से युक्त) > सौभाग्य (नपु०, सौभाग्य), पितृ (पिता) > पित्र्य (पैतृक)।

र—उपसर्गो से र लगकर तुलनाथक शब्द बनते है तथा अन्य शब्दो से विशेषण शब्द। जैसे—अवर (अपेक्षाकृत नीचा), धूम (धुआँ) > धूम्र (भूरा, मटमैला)।

ल—वि०, पु० सज्ञा शब्द। इससे कुछ विशेषण तथा कुछ अल्पार्थक शब्द वनने है। जैसे—कपिल (बन्दर के रग का, भूरा), बहुल (अधिक), वृषल (पु०, छोटा आदमी, नीच जाति का व्यक्ति, शूद्र)।

वत्—वि०, 'युक्त' अथ। जैमे—प्रजावत् (सन्तानयुक्त), नभस्वत् (मेघ-युक्त, पु०, वायु)।

वन्—इससे 'युक्त' अर्थ मे विशेषण शब्द तथा पु० सज्ञा शब्द होते हैं। जैसे—मघवन्, (पु०, धनवान्, यह इन्द्र का विशेषण है), अथर्वन्। (पु०, पुरोहित)।

विन्—इससे 'युक्त' अर्थ वाले विशेषण शब्द बनते है। जैसे—यशस्विन् (कीर्तिशाला, यशस्वी)।

१८३ उपर्युक्त प्रत्यय-सूचियो से सस्कृत-सज्ञा शब्दो के **लिग-निर्धारण** के कतिपय नियम प्राप्त होते है। उनको सक्षेप मे निम्नलिखित रूप मे रख सकते हैं —

सामान्यतया कहा जा सकता है कि दीघ स्वर आ, ई और ऊ अन्त वाले सभी शब्द स्त्रीलिग होते हैं। अ, त् और न् अन्त वाले शब्द पुंलिग और नपुसर्कलिग होते है। इ और उ अन्त वाले शब्द सभी लिगो मे होते हैं।

(क) आ ई, ऊ, ता, त्रा और ति प्रत्यय अन्त वाले सभी शब्द **स्त्रीलिग** होते है।

(ख) त्व, रु, इस्, उस् और (प्राणी के नाम को छोडकर) अस् तथा (कर्ता अर्थ वाले शब्दो को छाडकर) अन प्रत्ययान्त सभी शब्द **नपुसकलिंग** होते है।

(ग) त, व, यु, आयन, इ (अपत्याथक), क, भ और ल प्रत्ययो से बने सभी शब्द **पुलिंग** होते है (यदि ये विशेषण के रूप मे प्रयुक्त न हो तो)।

(घ) **पुलिंग और स्त्रीलिंग** —नि, नु, मि, तृ प्रत्ययो से बने सभी शब्द और केवल शुद्ध धातुरूप वाले शब्द (यदि विशेषण होगे तो नपु० भी) पु० और स्त्री० होते है।

(ङ) **पुलिंग और नपुसकलिंग** —अ, थ, न, उन, म, य, र, त्य, त्र, तु, अन्, मन्, वन्, तथा इन्, विन्, ईन, ईय, तन, तम, तर, मय, मत् और वत् प्रत्ययो से बने विशेषण शब्द पु० और नपु० होते हैं।

(च) **पु०, स्त्री० और नपु०** —इ और उ प्रत्ययो से बने सभी शब्द तीनो लिगो मे से किसी मे भी आ सकते है।

(आ) समास (Compounds)

१८४ (१) **सधातुक समास** (Verbal Compounds)—ये समस्त पद लगभग २० उपसर्गों तथा कुछ निपातो के साथ धातु को मिलाकर बनाए जाते है। समासयुक्त धातुओ के रूप सामान्य धातुओ के तुल्य चलते है। इस प्रकार गम् (जाना) धातु सम् (साथ) उपसग के साथ मिलकर सगम् (साथ जाना, परस्पर मिलना) धातु होती है और इसका लट् प्र० पु० १ मे सगच्छति रूप बनता है। समस्त धातु से पूर्वोक्त (१८२, १) कृत् प्रत्यय लगाकर सज्ञा शब्द बनाए जा सकते है। जैसे—सगम् > सगम (पु०, सघ, मिलन)।

(क) धातुओ के साथ समस्त होने वाले उपसर्ग निम्नलिखित है —अति (अतिक्रमण करके, परे), अधि (पर), अनु (पीछे), अन्तर् (बीचमे), अप (दूर, परे), अपि (पर), अभि (अभिमुख, विरुद्ध), अव (नीचे), आ[1] (समीप), उद् (ऊपर), उप (समीप, तक), नि (नीचे), निस् (बाहर), परा (दूर), परि (चारो ओर), प्र (आगे), प्रति (ओर), वि (पृथक्, भिन्न), सम् (साथ)।

---

१ जाना और देना अथ वाली धातुओ के साथ आ उपसग उनका अथ उलट देता है। जैसे—गम् (जाना), आगम् (आना), दा (देना), आदा (लेना)।

(ख) इनके अतिरिक्त कुछ निपात है, जो कुछ विशेष धातुओ के साथ ही समस्त होते है। जैसे—तिरस् (पार, एक ओर) का कृ (बनाना), धा (रखना) और भू (होना) धातुओ के साथ समास होता है। जैसे—तिरस्कुर्वन्ति (वे तिरस्कार करते है), तिरोधा (एक ओर रखना, छिपाना), तिरोऽभवन् (वे छिप गए), पुरस् का कृ और धा धातु के साथ (सामने रखना, आदर करना)। जैसे—पुरस्क्रियन्ताम् (उनका आदर करो), आविस् (प्रकट) का कृ धातु के साथ। आविष्कृ (प्रकट करना), अस् और भू के साथ (प्रकट होना) अथ है। जसे—आविष्करोति (वह प्रकट करता है), आविरासीत् (वह प्रकट हुआ)। अलम् (बस) का कृ के साथ। अलकृ (सजाना)। श्रद् यह एक प्राचीन शब्द है, इसका अर्थ है—हृदय (लेटिन—cord), यह क्रियाविशेषण के रूप मे प्रयुक्त होने लगा है। इसका धा (रखना) धातु के साथ समास होता है। इसी प्रकार नमस् (नमस्कार), अस्तम् (गृह वाचक अस्त शब्द का द्वितीया एक० का रूप) का क्रमश कृ (करना) और इ (जाना) धातु के कृदन्त रूपो के साथ समास होता है। जैसे—श्रद्दधामि (मैं श्रद्धा करता हूँ)। (लेटिन—credo), नमस्कृत्य (नमस्कार करके), अस्तमित (सूय अस्त हुआ)।

विशेष—सज्ञा शब्दो और विशेषण शब्दो का कृ और भू धातु के साथ समास होता है। समास होने पर इन धातुओ से पूववर्ती अन्तिम अ, आ और इ को ई हो जाता है तथा अन्तिम उ को ऊ होता है। जैसे—वश (पु०, वश मे होना) से वशीकृ (वश मे करना), वशीभू (वशीभूत होना), परिखीकृत (परिखा अर्थात् खाई के रूप मे परिवर्तित)। इन धातु-निर्मित समस्त पदो के अथ मे परिवर्तन का भाव आ जाता है, अर्थात् जो वस्तु जैसी नही थी, वैसी हो जाती है। अत रत्नीभूत का अर्थ होगा—रत्नरूप मे परिवर्तित। किन्तु रत्नभूत का अर्थ होगा—रत्न-स्वरूप। रत्नभूत मे सामान्यरूप से कर्मधारय समास है। (नि० १८८, १ ग)।

२. सुबन्त समास (Nominal Compounds)

१८५ दो या अधिक शब्दो को एक पद मे समस्त करने की शक्ति सभी भारोपीय (Indo-European) भाषाओ मे थी, किन्तु यह शक्ति अन्य भाषाओ

की अपेक्षा सस्कृत मे अधिक विकसित हुई है। सस्कृत मे लम्बे और क्लिष्ट समास ही निरन्तर प्रयुक्त नहीं होते है, अपितु वे अन्य समकक्ष भाषाओ मे प्रचलित विग्रहात्मक (विवरणात्मक) भावाभिव्यक्ति का भी स्थान ले लेते है। कालिदास ने निर्विन्ध्या नदी का वर्णन करते हुए कहा है—'वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणाया (मेघदूत १-२९) लहर-क्षोभ-शब्द करते हुए-पक्षी-पक्ति-मेखला-रस्सी से युक्त। इसको सामान्य रूप मे कहा जाए तो प्रयोग होगा—लहरो के चलने से शब्द करते हुए पक्षिसमूह ही उसकी मेखला थे। अतएव सस्कृत मे वाक्यरचना की दृष्टि से समास महत्त्वपूर्ण है। सस्कृत के वाक्य का स्पष्ट अर्थ जानने के लिए समासो का वर्गीकरण और अन्तर समझना आवश्यक है। समासो का अत्यन्त सरल वर्गीकरण निम्नलिखित ३ प्रकार से होता है—१ **द्वन्द्व समास** (**co ordinatives**), २ **तत्पुरुष समास** (**Determinatives**), ३ **बहुव्रीहि समास** (**Possessives**)। तत्पुरुष समास को Determinative इसलिए कहा जाता है, क्योकि इसका प्रथमपद उत्तरपद का अर्थ-निर्णय करता है या उसका विशेषण होता है, तत्पुरुष समास २ प्रकार का है—१ तत्पुरुष (Dependent Determinative), २ कर्मधारय (Descriptive)। बहुव्रीहि समास गौण (Secondary) समास है, इसमे तत्पुरुष समास वाले पद ही विशेषण के रूप मे प्रयुक्त होते है।

(क) समास होने वाले शब्दो मे अन्तिम शब्द को छोडकर सामान्यतया सभी शब्द अपने मूलरूप मे रहते है, अर्थात् दो अग वाले शब्दो मे अपचस्थान वाला (weak) रूप रहता है और तीन अग वाले शब्दो मे पदस्थान वाला (middle) रूप (७३ क) रहता है। द्वन्द्व और तत्पुरुष समासो मे अन्तिम शब्द सामान्यतया अपने साधारण रूप और विभक्ति से युक्त होता है, यदि वह सज्ञा शब्द है तो उसमे मूल शब्द का लिंग भी रहता है। बहुव्रीहि समास मे अन्तिम शब्द का लिंग और विभक्ति आदि विशेष्य के तुल्य होगी। जैसे—देवदास (पु०, देव का दास या देवो का दास)। स्वामिसेवा (स्त्री०, स्वामी की सेवा), राजकर्म (नपु०, राजा का काय), सनामन् (पर्यायवाची), प्र०१, पु० सनामा, स्त्री०, सनाम्नी, नपु०—सनाम।

१. द्वन्द्व समास (Co-ordinative Compounds)

१८६ द्वन्द्व समास मे दो या अधिक शब्दो का समास होता है, जो 'च' (और) शब्द के द्वारा जुडे होते है। ये शब्द अधिकाशत सज्ञा शब्द होते है। कुछ विशेषण शब्दो और बहुत थोडे क्रिया विशेषण शब्दो का भी द्वन्द्व समास होता है। भारतीय वैयाकरणो ने द्वन्द्व (जोडा युगल) के आधार पर इस समास का नाम द्वन्द्व समास रखा है।

(१) समास होने वाले शब्दो के द्वारा यदि दो का बोध होगा तो द्विवचन होगा, यदि दो से अधिक का बोध होगा तो बहुवचन होगा। द्वन्द्व समास मे अन्तिम शब्द का जो लिंग होता है, वही लिंग समस्त पद मे होता ह। जैसे—हस्त्यश्वो (एक हाथी और एक घोडा), हस्त्यश्वा [1] (हाथी और घोडे)। यदि समास होने वाले शब्द व्यक्ति का बोध न कराकर जाति या वर्ग का बोध कराते है तो समस्त पद मे समूहसूचक नपुसकलिग एकवचन होगा। जैसे—गवाश्वम् (गाय और घोडे)। विरुद्ध गुण वाली दो चीजो का प्राय द्वन्द्व समास होता है जैसे—सिहगजा (शेर और हाथी) सारमेय मार्जारा (कुत्ते और बिलाव)। अहोरात्र (पु० और नपु०) (दिन और रात)। द्वन्द्व समास मे समस्त होने वाले शब्दो की कोई सीमा नही है, वे दो या उससे बहुत अधिक भी हो सकते है। जैसे—देवगन्धवमानुषोरगराक्षसा (देवता, गन्धर्व, मनुष्य, सप और राक्षस)।

(२) विशेषण शब्द (क्त-प्रत्ययान्त शब्दो को लेते हुए) अपेक्षाकृत बहुत कम समस्त होते है। जैसे—उत्तरदक्षिण(उत्तर और दक्षिण), शीतोष्ण (ठडा और गर्म), सितासित (सफेद और काला), घनायत (घना और विस्तृत, वन), कृताकृत (किया और न किया हुआ), मृताजात (मृत और अनुत्पन्न)।

(क) कभी-कभी दो क्त प्रत्ययान्त शब्दो का भी समास होता है। ऐसे शब्दो मे तुरन्त बाद मे होने वाली घटना का भाव व्यक्त किया जाता है। प्रथम और द्वितीय पदो का सबन्ध 'ज्योही. त्यो ही' शब्दो के द्वारा अनुवाद मे प्रकट किया जाता है। जैसे—दृष्टनष्ट (दिखाई दिया और छिप गया, अर्थात् ज्योही दिखाई दिया, त्योही छिप गया)। जातप्रेत (ज्योही उत्पन्न हुआ,

---

१ देखो लेटिन+Su-ove-taurilia

त्योही मर गया)। उत्खातप्रतिरोपित (उखाडते ही उसे तुरन्त लगाया गया)। सुप्तोत्थित (सोया और जागा, अर्थात् सोकर अभी उठा है)।

३ क्रिया विशेषण शब्दो के द्वन्द्व समास बहुत कम मिलते है। ऐसे समस्त पद है —सायप्रातर् (सायकाल और प्रात काल), दिवानक्तम् (दिन-रात)।

(क) विभिन्न समासो से युक्त पदो का भी द्वन्द्व समास कही-कही मिलता है। जैसे—व्याकीर्णकेसरकरालमुख (व्याकीर्णकेसर+करालमुख, बिखरे हुए बाल और भयकर मुँह वाला)। इसमे दो बहुव्रीहि समास वाले पद है। (१८६)

(ख) वेदो मे अनेक देवता-द्वन्द्व समास मिलते है। इनमे प्रत्येक पद द्विवचन होना है और उसपर पृथक् पृथक् दो उदात्त स्वर होते है। सस्कृत मे इनमे से बहुत कम शेष बचे है। जैसे —मित्रावरुणौ[1] (मित्र और वरुण), द्यावापृथिव्यौ (द्युलोक और पृथिवी)[2]। प्रथमा, स० और द्वितीया को छोडकर अन्य विभक्तियो मे अन्तिम शब्द के ही रूप चलते है। जैसे—मित्रावरुणयो, द्यावापृथिव्यो ।

(ग) मातृ (माता) और पितृ (पिता) शब्द जब सबन्धसूचक द्वन्द्व-समास के प्रथम पद होते है तो ये माता और पिता (प्रथमा एक०) शेष रहते है। जैसे—मातापितरौ (माता और पिता), पितापुत्रौ (पिता और पुत्र)।

सबन्धवाचक युगल का द्वन्द्व समास करके पुलिंग के द्विवचन का प्रयोग करने पर स्त्रीलिंग का भी अर्थ उसमे आ जाता है। जैसे—पितरौ (माता-पिता), श्वशुरौ (सास-ससुर), पुत्रौ (पुत्र और पुत्री या दो पुत्र), भ्रातरौ[3] (भाई और बहिन)।

२. (क) तत्पुरुष समास (Dependent Determinatives)

१८७ तत्पुरुष समास मे प्रथमपद अन्तिम पद पर निर्भर होता है। वाक्य-

---

१ मित्रा और द्यावा वैदिक द्वन्द्व हैं। इस प्रकार के समास सभवत एकशेष समास वाले द्विवचन रूपो के प्रतिरूप हैं। जैसे—मित्रा (दो मित्र अर्थात् मित्र और वरुण)। द्वादश (दो और दश) सख्यावाचक द्वन्द्व हैं। इसमे प्रथम पद द्वा प्राचीन द्विवचन है।

२ तुलना करो—लेटिन—Soceri=Socer et-socrus

३ ,, ,, fratres='Brother and sister'

विन्यास की दृष्टि से प्रथम पद का अन्तिम पद के साथ वही सबन्ध होता है, जो विशेषण (सज्ञा या सर्वनाम) का तृतीया आदि कारको मे होता है। समस्त पद का अन्तिम शब्द सज्ञा या विशेषण जैसा होगा, उसी प्रकार समस्त पद सज्ञा या विशेषण होगा।

जैसे—तत्पुरुष (पु०, उसका आदमी)। (भारतीय वैयाकरणो ने इस समास को सूचित करने के लिए तत्पुरुष नाम दिया है, जो तत्पुरुष समास का उदाहरण भी है)। शूरमानिन् (विशेषण, अपने आपको शूर मानने वाला)। गुणोपेत (वि०, गुणो से युक्त) (उपेत—उप+इत, इ धातु का क्त-प्रत्ययान्त रूप है)।

तत्पुरुष समास मे प्रथमपद द्वितीया आदि किसी भी विभक्ति से युक्त हो सकता है, परन्तु षष्ठी-तत्पुरुष समास अत्यधिक प्रचलित है।

१ **द्वितीया**—इसमे अन्तिम पद धातु से बना हुआ विशेषण शब्द होता है।[1] जयप्रेप्सु (वि०, जय का इच्छुक)। (प्रेप्सु—प्र+ईप्सु=आप्+सन् (स)+उ, नि० १७०,२)। वर्षभोग्य (वि०, वर्ष भर भोगने योग्य) (भोग्य भविष्यत् अर्थ वाले कृत्य प्रत्यय ण्यत् से युक्त है)। गृहागत (वि० घर आया हुआ) आगत क्त-प्रत्ययान्त है)। ग्रामप्राप्त (गाव मे आया हुआ)[2]। बहुव्रीहि समास मे क्त-प्रत्ययान्त रूप प्राय प्रारम्भ मे प्रयुक्त होता है। जैसे—प्राप्तग्राम (प्राप्त हो गया है ग्राम जिसको)।

२ **तृतीया**—मासपूर्व (एक मास पहले)। स्वामि-सदृश (अपने मालिक के तुल्य) नि० १९९, २ ड)। अल्पोन (थोडा कम अर्थात् लगभग समाप्त)। अहिहत (साँप का काटा हुआ)। देवदत्त (देवो के द्वारा प्रदत्त), यह शुभ अर्थ का सूचक है और साधारणतया एक व्यक्ति बोधक शब्द के तुल्य प्रयुक्त होता है। यह प्राय अनिश्चित व्यक्ति (अमुक) का बोधक होता है।

३ **चतुर्थी**—यूपदारु (नपु०, यज्ञिय स्तम्भ के लिए लकडी)। विष्णुबलि (पु०, विष्णु के लिए प्रदत्त वस्तु)। प्रभुहित (वि०, राजा के लिए हितकर)।

---

१ तुलना करो—लेटिन—gu-dex (न्याय का सकेत करने वाला, अर्थात् न्यायाधीश)।

२ क्त प्रत्ययान्त 'गत' (गया) शब्द का प्रयोग प्राय तत्पुरुष समास के अन्त मे 'प्राप्त' 'आया हुआ' 'सबद्ध' अर्थ मे होता है। जैसे—हस्तगत (हाथ मे आया हुआ)।

४ **पञ्चमी** स्वर्गपतित (वि०, स्वर्ग से गिरा हुआ)। भवदन्य (वि० आप से भिन्न)।

५ **षष्ठी**—राजपुरुष (पु०, राजा का व्यक्ति, राजकर्मचारी)। व्याघ्रबुद्धि (स्त्री०, व्याघ्र की बुद्धि अर्थात् उसे व्याघ्र मानना)।

६ **सप्तमी**—उरोज (वि०, छाती पर उत्पन्न, अर्थात् स्तन)। अश्वकोविद (वि०, अश्वविद्या मे निपुण)। गृहजात (वि०, घर मे उत्पन्न)। पूर्वाह्णकृत (वि०, पूर्वाह्ण मे किया गया)।

(क) कुछ तत्पुरुष समास वाले पदो मे पूर्वपद मे विभक्ति शेष रहती है (**अलुक् समास**)। जैसे—धनंजय (वि०, धन जीतने वाला), (पु० व्यक्ति वाचक शब्द)। परस्मैपद (नपु०, दूसरे के लिए पद या शब्द)। वाचस्पति (पु०, वाणी का स्वामी)। युधिष्ठिर (वि० युद्ध मे स्थिर, पु० व्यक्तिवाचक शब्द)।

(ख) यदि तत्पुरुष समास का अन्तिम पद एक धातु होती है तो उसमे कोई अन्तर नही होता है, केवल धातु के आ को अ हो जाता है और धातु के इ, ऋ के बाद त् जुड जाता है (नि० १८२, १ क)। जैसे—वरद (वि०, वर देने वाला) (दा 'देना' धातु)। विश्वजित् (वि०, सबको जीतने वाला)। कर्मकृत् (वि०, काम करने वाला, परिश्रमी)।

(ग) तत्पुरुष समास के अन्त मे प्रयुक्त '**विशेष**'(पु०) शब्द का अर्थ है—विशेष प्रकार का, अर्थात् विशिष्ट, असाधारण, उत्कृष्ट। इसी प्रकार '**अन्तर**' (नपु०) का अर्थ है 'भिन्न'। इसका साधारणतया अर्थ होता है 'दूसरा'। कभी-कभी इसका अर्थ होता है—'विशेष, प्रमुख'। जैसे—तेजोविशेष। (पु०, असाधारण तेज)। देशान्तर (नपु०, दूसरा देश)। उपायान्तर (नपु, विशेष उपाय)। भाष्यान्तर (नपु०, दूसरा भाष्य, विशेष प्रकार का वार्तालाप)।

(घ) '**अर्थ**' (पु०, वस्तु, प्रयोजन) का तत्पुरुष समास मे अन्तिक पद के रूप मे क्रियाविशेषण के ढग से प्रयोग होता है। इसका द्वितीया विभक्ति मे भी प्रयोग होता है। कुछ स्थानो पर चतुर्थी और सप्तमी विभक्ति मे भी प्रयोग होता है जैसे—दमयन्त्यर्थम् (दमयन्ती के लिए)।

२. (ख) कर्मधारय समास (Descriptive Determinatives

१८८ कर्मधारय समास मे प्रथम पद अन्तिम पद की विशेषता बताता है

या उसका गुण-वर्णन करता है, वाक्य-विन्यास की दृष्टि से प्रथम और अन्तिम पद का सबन्ध विधेय का है। यह सम्बन्ध तीन प्रकार से प्रकट किया जा सकता है —

१ **सज्ञा शब्द के द्वारा** (पूवपद मे) । जैसे—राजर्षि । (पु०, राजा-ऋषि अर्थात् राजा होते हुए ऋषि)। स्त्रीजन (पु०, स्त्रीगण)।

(क) कभी-कभी उपाधिवाचक शब्द का व्यक्तिवाचक शब्द के साथ समास होता है। जैसे—अमात्यराक्षस (मन्त्री राक्षस)। कभी कभी व्यक्तिवाचक शब्द पहले आता है। जैसे—शाण्डिलीमातृ (माता शाण्डिली)।

(ख) प्रथम-पद प्राय तुलना अथ को प्रकट करता है। जैसे—जलदश्याम (वि०, बादल के तुल्य (साँवला)। हिमशिशिर (वि०, बर्फ के तुल्य ठडा)। जलान्तश्चन्द्रचपल (वि०, जल मे प्रतिबिम्बित चन्द्रमा के तुल्य चचल)। जब दोनो पद प्रातिपदिक होते है, तब जिस वस्तु से तुलना की जाती है वह समास मे पहले न रखकर अन्त मे रखी जाती है। जैसे—पुरुषव्याघ्र (पु०, पुरुष-बघेरा, अर्थात् व्याघ्रसदृश बलवान् मनुष्य)। वाङ्मधु (नपु०, वाणी-मधु, अर्थात् मधुर वाणी)। पादपद्म (नपु०, चरण कमल, अर्थात् कमल सदृश चरण)।

(ग) क्त-प्रत्ययान्त 'भूत' हुआ, रहा) शब्द 'होना, स्वरूप या विद्यमान' अर्थ मे सज्ञा शब्दो के बाद जुड जाता है। इस प्रकार यह सज्ञाशब्द विशेषण हो जाता है। जैसे—तमोभूत (अन्धकार-स्वरूप), रत्नभूत (रत्नरूप) (देखो १८४ ख)।

२ **विशेषण के द्वारा** —जैसे—कृष्णसर्प (पु०) काला साँप), नीलोत्पल (नपु०, नीला कमल), मध्याह्न (पु०, दोपहर), अर्धमार्ग (पु०, आधा रास्ता), वर्तमानकवि (पु०, जीवित कवि)।

(क) जिन समस्त पदो मे विशेषण शब्द सख्यावाचक होता है, उसे भारतीय वैयाकरणो ने एक पृथक् समास मानकर 'द्विगु' (दो-गाय) नाम दिया है। ये शब्द प्राय नपुसक लिंग या ईकारान्त स्त्रीलिंग होते हैं और समाहार (समूह) अर्थ के बोधक होते है। जैसे—त्रिलोक (नपु०) या त्रिलोकी (स्त्री०) (तीन लोक)। ये शब्द बहुव्रीहि समास करने पर विशेषण भी हो जाते हैं (१८९)। जैसे—त्रिगुण (नपु०, द्विगु०, तीन गुण), त्रिगुण (वि०, बहु० तीन गुणो वाला)।

(ख) 'पूर्व' (पहले) शब्द क्रियाविशेषण के रूप मे प्रारम्भ मे प्रयुक्त न होकर क्त-प्रत्ययान्त के बाद अन्त मे प्रयुक्त होता है और इसका अर्थ होता है —पहला । जैसे—दृष्टपूर्व (वि०, पहले देखा हुआ) ।

(ग) कर्मधारय समास के प्रारम्भ मे 'महत्' शब्द को 'महा' हो जाता है । और अन्तिम शब्द राजन् को राज (पु०), अहन् को अह (पु०), सखि को सख (पु०) और रात्रि को रात्र (पु०, नपु) हो जाता है । जैसे—महाराज (बडा राजा), पुण्याहम् (शुभ दिन), प्रियसख (प्रिय मित्र), अर्धरात्र (पु०, आधी रात) ।

(घ) अन्योन्य (परस्पर) और परस्पर (परस्पर) शब्द एक प्रकार के अनियमित समास हैं, इनमे पु० प्रथमा एक० का रूप, जो कि प्राय वाक्य-विन्यास मे अधिकतर प्रयुक्त होता था, सामान्यीकरण के द्वारा सर्वत्र प्रथम पद मे प्रयुक्त होने लगा । जैसे—अन्योन्याम् (स्त्री०, द्वितीया १)=अन्या+अन्याम् (एक दूसरे को) है ।

३ **क्रिया-विशेषण के द्वारा**—(इसमे उपसर्गो और निपातो का भी सग्रह है) —जैसे—सुजन (पु०,सज्जन), अधिलोक (पु०, सर्वोच्च लोक), अज्ञात (वि०, अपरिचित), यथोक्त (वि० पूर्वोक्त), एवगत (वि०, ऐसा होने पर) ।

(क) इस प्रकार के समस्त पद जब नपु० द्वितीया एक० मे क्रियाविशेषण के रूप मे प्रयुक्त होते है, तब उन्हे भारतीय वैयाकरणो ने एक विशेष समास अर्थात् **अव्ययीभाव समास** (अव्यय की अवस्था) नाम दिया है । जैसे —अनुरूपम् (अनुसार, अनुकूल), यथाशक्ति (शक्ति के अनुकूल), सविनयम् (सविनय), यावज्जीवम् (जीवन भर) ।

३. बहुव्रीहि समास (Passessive Compounds)

१८९ ये समस्त पद वस्तुत विशेषण पद है, जो उक्त या अनुक्त विशेष्य पद के अनुसार प्रयुक्त होते है । ये तत्पुरुष समास है (सामान्यतया विशेषण-रूप मे प्रयुक्त कर्मधारय समास), जिनके अन्त मे सज्ञा शब्द होते है और विशेष्य के अनुसार इनके लिंग, विभक्ति और वचन होते हैं । भारतीय वैयाकरणो ने इनके लिए 'बहुव्रीहि' समास नाम दिया है, जो स्वय इसका एक उदाहरण है । बहुव्रीहि (पु०) का अर्थ है 'बहुत चावल', यही विशेषण के रूप

मे प्रयुक्त होगा तो इसका अर्थ होगा—'बहुत चावल वाला'। पहला कर्मधारय है और दूसरा बहुव्रीहि।

प्रत्येक तत्पुरुष बहुव्रीहि मे बदला जा सकता है —जैसे—इन्द्रशत्रु (पु०, तत्पु० इन्द्र का शत्रु, बहु० इन्द्र है शत्रु जिसका), भीमपराक्रम (पु०, तत्पु० भयकर पराक्रम, बहु० भयकर पराक्रम वाला), त्रिपद (वि० तीन पैरो वाला) लेटिन—tri-ped-), अधोमुख (वि० नीचे मुँह किए हुए) (मुख, नपु० का अर्थ है मुँह), अपुत्र (वि० पुत्रहीन), सभार्य (वि० भार्या अर्थात् पत्नी से युक्त), तथाविध (वि०, वैसी अवस्था वाला) (विधि पु० से बना है), दुर्मनास् (वि०, प्रथमा पु०, स्त्री०, (खिन्न चित्त वाला)।

(क) वेद मे उदात्त स्वर के अन्तर से तत्पुरुष और बहुव्रीहि का अन्तर होता था। जैसे—राजपुत्र॑ (तत्पु० राजा का पुत्र) (अन्तोदात्त अर्थात् अन्तिम स्वर उदात्त है), राजपुत्र (वि०, राजा है पुत्र जिसका) (आद्युदात्त प्रथम स्वर उदात्त है)।

(ख) बहुव्रीहि समास वाले पद प्राय सज्ञाशब्द या व्यक्ति-नाम के रूप मे प्रयुक्त होते है। जैसे—सुहृद् (अच्छे हृदय वाला) यही पु० 'मित्र' हो जाता है। सत्यश्रवास् (वि० प्रथमा १, वास्तविक कीर्ति वाला) यह एक व्यक्ति का नाम हो गया है।

(ग) बहुव्रीहि समास वाले पद प्राय बहुत क्लिष्ट और उलझे हुए होते है, इनमे अन्य समासो वाले पद भी सबद्ध होते है। जैसे— [वीचि-क्षोभ)—स्तनित-(विहग-श्रेणि)]—(काञ्ची-गुण) मे बहुव्रीहि समास कर्मधारय पर निर्भर है और इसमे दो मुख्य भाग हैं। द्वितीय भाग 'काञ्चीगुण' (पु०) (मेखला की रस्सी) मे तत्पुरुष समास हैं। प्रथमपद कर्मधारय समास है। इसमे 'विहग-श्रेणि' (पक्षियो की पक्ति) तत्पुरुष समास है और इसका विशेषण 'वीचि-क्षोभ-स्तनित' (तरगो की चचलता से शब्द करती हुई) है। इसमे दो तत्पुरुष समास है। इसमे 'स्तनित' का विशेषण है—वीचि-क्षोभ (तत्पु०, तरगो की चचलता), जो एक तत्पुरुष समास-युक्त पद है। शीतोष्णकिरणौ (चन्द्रमा और सूर्य), इसमे द्वन्द्व समास-युक्त बहुव्रीहि समास है। यह वस्तुत एकशेष-समास-युक्त द्वन्द्व है। इसका वास्तविक अर्थ है—'शीतल और उष्ण किरणो वाले',

यह 'शीतल-किरणो वाला और उष्ण किरणो वाला' के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है।

(घ) बहुव्रीहि समास का प्रथम पद यदि क्त-प्रत्ययान्त है तो वाक्य-विचार की दृष्टि से वह प्राय क्त्वा-प्रत्ययान्त या भावे सप्तमी का समकक्ष है। जैसे—त्यक्तनगर (जिसने नगर को छोडा है)=नगर त्यक्त्वा (नगर को छोड कर) या नगरे त्यक्ते (नगर छोडने पर)।

(ङ) समानाधिकरण कर्मधारय पदो पर निर्भर बहुव्रीहि-पद प्राय 'तुल्य' का अर्थ बताते है। जैसे—चन्द्रानन (चन्द्रवत् मुख वाला), पद्माक्ष (स्त्री०—ई) (कमलवत् नेत्र वाला)। कर्मधारय समास मे (देखो १८८, १ ख) पदो का विपर्यय (बदलना) होता है, किन्तु इसमे पदो का स्वाभाविक क्रम बना रहता है।

(च) कल्प (पु०, ढग) और प्राय (पु०, मुख्य अश) शब्दो का बहुव्रीहि-समास के अन्त मे क्रमश 'तुल्य' और 'प्राय' अर्थ मे प्रयोग होता है। जैसे—अमृतकल्प (अमृततुल्य), प्रभातप्राय (वि०, प्राय प्रभातकाल)। इसीप्रकार बहुव्रीहि समास के अन्त मे 'पर' और 'परम' (वि० सर्वोत्तम, मुख्य) शब्दो का 'तत्पर' 'लीन' अर्थो मे सज्ञा शब्द के तुल्य प्रयोग होता है (शब्दार्थ-प्रमुख वस्तु मानते हुए)। जैसे—चिन्तापर (चिन्तामग्न)।

(छ) मात्रा (स्त्री०, परिमाण) शब्द का बहुव्रीहि समास के अन्त मे 'केवल' अर्थ मे प्रयोग होता है। जैसे—नाममात्रा नरा (नाममात्र के मनुष्य)। क्त-प्रत्ययान्त के अन्त मे इसका अर्थ होता है—'ज्योही'। जैसे—जातमात्र शत्रु (शत्रु ज्योही उत्पन्न होता है)। इसका इसीप्रकार नपुसकलिंग शब्द के रूप मे सामान्यतया प्रयोग होता है। जैसे—जलमात्रम् (केवल जल) (शब्दार्थ-जल है मात्रा या परिमाण जिसका)।

(ज) आदि (पु०, प्रारम्भ), प्रभृति (स्त्री०, प्रारम्भ) और आद्य (प्रथम) (सज्ञा शब्द के रूप मे प्रयुक्त) शब्द बहुव्रीहि समास के अन्त मे 'इत्यादि' अर्थ मे प्रयुक्त होते है। मुख्य रूप से ये विशेषण शब्द है और गौण रूप से सज्ञा-शब्द। जैसे—(देवा) इन्द्रादय, (देवता, इन्द्र तथा अन्य या इन्द्र इत्यादि) (शाब्दिक अर्थ—इन्द्र जिनमे प्रथम है)। इत्यादि (नपु०, इसे लेकर, अर्थात्—इन शब्दो को लेकर)=इत्यादि, यह और अन्य।

इसी प्रकार पुरोगम, पूव, पुर सर ('पूववर्ती' = 'नेता') शब्दो का बहुब्रीहि समास के अन्त मे 'पुरस्कृत, अग्रणी या साथ' अथ मे प्रयोग होता है। जैसे—देवा इन्द्रपुरोगमा (इन्द्र जिनका अग्रणी है ऐसे देवता)। पूव और पुर-सर का वहुव्रीहि ममास के अन्त मे क्रियाविशेषण के तुल्य प्रयोग होता है। जैसे—स्मितपूर्वम् (मुस्कराहट के साथ, मुस्कराते हुए), बहुमानपुर सरम्। (आदर के साथ, सादर)।

(झ) 'हाथ' अथ वाले शब्दो का प्रयोग बहुब्रीहि समास मे अन्त मे होता है। जैसे—शस्त्रपाणि (शस्त्र हाथ मे लिए हुए), कुशहस्त (कुशा हाथ मे लिए हुए)।

(ञ) वहुब्रीहि समास मे समासान्त 'इन्' प्रत्यय निम्नलिखित शब्दो के बाद लगता है—धम (कर्तव्य), शील (चरित्र), माला (पुष्पमाला), शाला (गृह), शोभा (सौन्दर्य), वण (रग)। जैसे—वरवर्णिन् (सुन्दर रग वाला)। इसी प्रकार कुछ शब्दो के अन्त मे 'क' प्रत्यय लगता है, मुख्यतया कम प्रयोग मे आने वाले अन्तिम वर्णो से युक्त शब्दो के वाद, जैसे—ऋकारान्त शब्द, ईकारान्त (नदी आदि) शब्द और 'इन्' अन्त वाले स्त्रीलिंग शब्द। जैसे—मृतभर्तृका (जिसका पति मर गया है), सपत्नीक (पत्नी के सहित)।

अध्याय—७

वाक्य-विन्यास की रूपरेखा (Outlines of Syntax)

१९० लेटिन और ग्रीक भाषाओ की तुलना मे सस्कृत वाक्यो की वाक्य-विन्यास-सबन्धी व्यवस्था अपूर्ण और अविकसित है, क्योकि सस्कृत का अधिकाश साहित्य पद्यात्मक है। सस्कृत वाक्य-विन्यास की प्रमुख विशेषता है—समन्वय की प्रमुखता, लम्बे समास तथा क्त्वा (या ल्यप्)-प्रत्ययान्तो के द्वारा सबद्ध तथा अन्य गौण वाक्याशो का स्थान लेना। सस्कृत मे oratio obliqua सर्वथा अप्राप्य है। सस्कृत-वाक्यो की अन्य विशेषता है—विधेय तिङन्त किया पदो का अपेक्षाकृत कम प्रयोग (वैदिक भाषा मे इनका प्रयोग अधिक प्रचलित था), इनके स्थान पर क्त-प्रत्ययान्त शब्द या धातुज सज्ञा शब्द प्राय प्रयुक्त होते हैं। कर्मवाच्य प्रयोगो की ओर अधिक प्रवृत्ति दिखाई देती है। सस्कृत-वाक्य-विन्यास की एक मुख्य विशेषता है—**भावे सप्तमी** का प्रयोग।

वाक्य मे पद-क्रम (The order of words)

१९१ सस्कृत-वाक्यो मे सामान्यतया पद-क्रम निम्नलिखित रूप से होता है—(१) कर्ता और कर्ता के विशेषण या कर्ता की विशेषता बताने वाले गुण-वाचक शब्द (प्रथमान्त से पहले षष्ठ्यन्त प्रयोग रहता है), (२) कर्म और कर्म के विशेषण (ये कर्म से पहले रहते है), (३) क्रिया-पद।

क्रिया-विशेषण या विधेय से सबद्ध शब्द प्राय प्रारम्भिक पदो के समीप ही रहते हैं और गौण सयोजक निपात प्रथम पद के बाद रखे जाते हैं। जैसे—जनकस्तु सत्वर स्वीय नगर जगाम (किन्तु जनक शीघ्र ही अपने नगर को गए)।

जहाँ पर सबोधन पद होता है, वह प्राय सवप्रथम रखा जाता है। यदि

किसी विशेष शब्द पर बल देना होता है तो वह कर्ता के स्थान पर सर्वप्रथम प्रयुक्त होगा। जैसे—रात्रौ त्वया मठमध्ये न प्रवेष्टव्यम् (रात्रि मे तुम मठ मे न घुसना)।

(क) कर्ता यदि व्यक्ति-वाचक सवनाम है और उसपर बल नही देना है तो उसका प्रयोग नही होता है, क्योकि तिडन्त क्रियापद से ही उसका अर्थ प्रकट हो जाता है। यहा तक कि कर्ता 'वह' या 'वे' का अथ केवल क्रिया के द्वारा ही प्राय प्रकट किया जाता है। जैसे—ब्रूयात् (वह कहे), आहु (वे कहते है=ऐसा कहा जाता है)।

(ख) यदि काल का बोध विशेष रूप से नही कराना होता है तो 'अस्ति' पद का प्राय लोप रहता है। ऐसे स्थलो पर विधेय कर्ता (उद्देश्य) से पहले आता है। जैसे—शीतला रात्रि (रात्रि ठडी है)। यदि विधेय पर बल देना होता है तो 'अस्ति' का प्रयोग न करके 'भवति' का प्रयोग होता है। जैसे—यो विद्यया तपसा जन्मना वा वृद्ध स पूज्यो भवति द्विजानाम् (जो विद्या, तपस्या या जन्म से वृद्ध होता है, वह द्विजो के लिए पूज्य होता है)।

(ग) जिस प्रकार गुणवाचक शब्द सज्ञा शब्दो से पहले आते है और समासो मे विशेषण शब्द पहले आते है, उसी प्रकार सबद्ध या अन्य गौण वाक्याश मुख्य वाक्याश से पहले आते है और ये वाक्याश सापेक्ष (यत्) शब्द से प्रारम्भ होते है। जैसे—यस्य धन तस्य बलम् (शाब्दिक अर्थ—जिसका धन, उसका बल, अर्थात् जिसके पास धन है, उसके पास बल है)। इसी प्रकार सापेक्ष शब्द है—यदा—तदा, यावत्—तावत् आदि।

संज्ञा-ग्राहक शब्द (The Article)

१६२ सस्कृत मे इग्लिश के तुल्य अनिश्चयबोधक (a) और निश्चय-बोधक (the) सज्ञाग्राहक शब्द नही हैं। किन्तु एक (एक) और कश्चिद् (कोई) (११६) शब्द 'कोई या एक' अर्थ प्रकट करने के लिए प्राय प्रयुक्त होते है, इसका अनुवाद 'कोई या एक' किया जा सकता है। इसी प्रकार स (वह) (११०) शब्द जब पूर्वोक्त किसी व्यक्ति या वस्तु का सकेत करता है तो

उनका अनुवाद अंग्रेजी के the से किया जा सकता है । जैसे—स राजा (वह राजा, the king) (जिसका हम वर्णन कर रहे है) ।

सख्या (Number)

१६३ (१) समूहवाचक शब्द कभी-कभी समास के अन्त मे एकवचन मे प्रयुक्त होते हैं और वे बहुत्व का अर्थ प्रकट करते है । जैसे—स्त्रीजन (पु०, स्त्री लोग = स्त्रियाँ) । इसप्रकार के समूहवाचक शब्द कभी-कभी स्वय बहुवचन मे प्रयुक्त होते है । जैसे—'लोक' या 'लोका' (ससार, लोग) ।

(२) द्विवचन का नियमित रूप से प्रयोग होता है और द्विवचन मे इसका प्रयोग अनिवार्य है । दो वस्तुओ के लिए बहुवचन का प्रयोग नही होता है । अत जो वस्तुएँ दो या युगल (जोडा) है, जैसे शरीर के अवयव, उनमे अनिवायतया द्विवचन ही लगता है । जैसे—हस्तौ च पादौ च (२ हाथ और २ पैर)। कभी-कभी पुलिंग के द्विवचन के द्वारा उसी जाति के १ पुरुष और १ स्त्री का बोध कराया जाता है । जैसे—जगत पितरौ (ससार के माता-पिता) (देखो नि० १८६, ३ ग) ।

(३) (क) कभी-कभी विशेष आदर प्रकट करने के लिए वक्ता या लेखक के द्वारा एक व्यक्ति के लिए भी बहुवचन का प्रयोग किया जाता है—त्वम् के स्थान पर यूयम्, और भवान् के स्थान पर भवन्त । जैसे—श्रुत भवद्भि (क्या आपने सुना ?) । इसी अर्थ मे द्विवचन पादौ के स्थान पर बहुवचन पादा (पैर) का प्रयोग होता है (नि० १६३, २)। जैसे—एष देवपादान् अधिक्षिपति (वह आपके पैरो) की निन्दा करता है । इसीप्रकार व्यक्तिवाचक शब्द भी कभी-कभी बहुवचन मे प्रयुक्त होते हैं। जैसे—इति श्रीशकराचार्या (श्री शकराचार्य जी ऐसा कहते है) ।

(ख) कभी-कभी वक्ता महत्त्वबोधनार्थ (जैसे—सम्पादकीय स्तम्भो मे 'मैं' के स्थान पर 'हम' का प्रयोग) 'मैं' के स्थान पर 'हम' (उ० पु० ३) का प्रयोग करते है (देखो १६३, २) । जैसे—वयमपि किंचित् पृच्छाम (हम भी कुछ पूछते है=मैं भी कुछ पूछता हूँ) । किं कुर्म साम्प्रतम् (हम क्या करे ?=तुम और मैं अब क्या करे ।)

(ग) देशो के नाम बहुवचन मे आते है, ये वस्तुत जन-बोधक नाम हैं (जैसे—इग्लिश् मे 'Sweden' और जमन मे 'Sachsen'। जैसे—विदर्भेषु (विदर्भ अर्थात् बरार मे)। जनबोधक नाम यदि एकवचन मे हैं तो वे प्राय उस देश के राजा के बोधक होते है।

(घ) कुछ शब्द केवल बहुवचन मे ही आते है —आप (स्त्री०, जल), (६६ १), प्राण (पु०, प्राण), वर्षा (स्त्री०, वर्षा=वर्षा ऋतु), दारा (पु० पत्नी)।

उद्देश्य और विधेय का समन्वय (concord)

१६४ विभक्ति, पुरुष, लिंग और वचन के सामजस्य के नियम प्राय वे ही है, जो विभक्ति-प्रधान भाषाओ मे होते हैं, निम्नलिखित कुछ मुग्य बाते उल्लेखनीय है —

(१) प्रथमान्त के बाद मे यदि 'इति' लगा हुआ है तो वह बुलाना, सोचना और जानना आदि अर्थों वाली धातुओ के कम का स्थान ले लेता है। जैसे—ब्राह्मण इति मा विद्धि' (मुझे ब्राह्मण जानो)। यह 'ब्राह्मण मा विद्धि' के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है।

(२) यदि क्रियापद द्विवचन या बहुवचन है और वह दो या अधिक कर्ताओ का बोध कराता है तथा उसमे उत्तम पुरुष कर्ता भी है तो प्रथम और मध्यम पुरुष की क्रिया न होकर उ० पु० की क्रिया रहेगी। प्र० पु० और म० पु० के कर्ता है तो म० पु० की क्रिया शेष रहेगी। जैसे—त्वमह च गच्छाव (तू और मै जाते हैं)।

(३) (क) पुंलिग और स्त्रीलिंग शब्दो के साथ यदि विशेषण सामूहिक रूप से आता है तो वह पुंलिग का द्विवचन या बहुवचन होता है, किन्तु यदि उसमे नपु० पद भी आ जाता है तो विशेषण नपु० का द्विवचन या बहु० होता है (कभी-कभी यह विशेषण पद एकवचन भी होता है)। जैसे—मृगयाक्षास्तथा पान गर्हितानि महीभुजाम् (शिकार खेलना, जुआ खेलना और मदिरापान, ये राजाओ के लिए निन्दित कर्म हैं)। पक्षविकलश्च पक्षी शुष्कश्च तरु सरश्च जलहीन सर्पश्चोद्धृतदष्ट्रस्तुल्य लोके दरिद्रश्च (पख-कटा पक्षी, सूखा पेड, जल-

हीन तालाब, दातरहित सॉप और निधन व्यक्ति, ससार मे समान है)। यहा पर विशेषणपद तुल्यम् नपु० एकवचन है।

(ख) कभी-कभी गुणबोधक या विधेयपद व्याकरणोचित लिग न अपना कर स्वाभाविक लिंग को अपनाते है। जैसे—त्वा चिन्तयन्तो निराहारा कृता प्रजा [तेरा चिन्तन करती हुई (पु०) प्रजा (स्त्री०) ने भोजन का त्याग कर दिया है]।

(ग) ग्रीक और लेटिन के तुल्य सस्कृत मे भी सकेतवाचक सर्वनाम शब्दो का लिंग अपने विधेय के लिंग के अनुसार ही होता है। जैसे—असौ परमो मन्त्र [यह (पु०) सर्वोत्तम मत्र (पु०, मत्रणा) है]।

तिडन्त क्रिया के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले कृदन्त पद का लिंग कर्ता के अनुसार होना चाहिए, परन्तु यदि उसके समीप कोई विधेय सज्ञा शब्द होता है तो उसका लिग विधेय पद के अनुसार हो जाता है। जैसे—त्व मे मित्र जातम् [तू (पु०) मेरा मित्र (नपु०) हो गया है (नपु०)]।

(४) समूहबोधक एकवचन सज्ञा शब्द के साथ क्रिया भी एकवचन होती है। एकवचन वाले दो कर्ताओ के साथ विधेय पद द्विवचन होना चाहिए तथा तीन और अधिक कर्ताओ के साथ विधेय बहु० होना चाहिए। किन्तु कभी-कभी विधेय पद मे समीपस्थ कर्ता के अनुसार वचन रहता है और वह बौद्धिक रूप से अन्य कर्ताओ के साथ सबद्ध कर दिया जाता है। जैसे—कान्तिमती राज्यमिद मम च जीवितमपि त्वदधीनम् [कान्तिमती, यह राज्य और मेरा जीवन भी तेरे अधीन है (एक०)]।

(क) इसी प्रकार अकेले बहुवचन कर्ता के साथ क्रिया बहुवचन होनी चाहिए, किन्तु कभी कभी समीपस्थ विधेय सज्ञा शब्द के वचन के अनुसार उसमे वचन होता है। जैसे—सप्तप्रकृतयो ह्येता समस्त राज्यमुच्यते [ये सात अग मिलकर राज्य कहे जाते है (एकवचन)]।

सर्वनाम (Pronouns)

१९५ (१) **व्यक्तिवाचक सर्वनाम**—(क) सस्कृत भाषा अत्यधिक प्रत्यय-प्रधान है, अत आधुनिक यूरोपीय भाषाओ की अपेक्षा इसमे व्यक्तिवाचक

सर्वनामो के प्रथमान्तपद बहुत कम प्रयुक्त होते है (देखो नि० १९१ क)।

(ख) अहम् और त्वम् (१०९ क) के स्थान पर होने वाले अनुदात्तपद न वाक्य के प्रारम्भ मे, न पाद (श्लोक का एक चरण) के प्रारम्भ मे, न सबोधन के बाद और न च, वा, एव, ह इन निपातो से पहले प्रयुक्त हो सकते हैं। जैसे—मम मित्रम् (मेरा मित्र) (मे मित्रम्, नही)। देवास्मान् पाहि (हे देव, हमारी रक्षा करो) (अस्मान् के स्थान पर न का प्रयोग नही)। तस्य मम वा गृहम् (उसका या मेरा घर)।

(ग) **'भवान्'** (आप), स्त्रीलिंग **'भवती'** यह त्वम् (तू) का आदरसूचक शब्द है (एक ही वाक्य मे ये दोनो शब्द अदल-बदलकर भी प्रयुक्त होते हैं), इसके साथ क्रिया प्रथमपुरुष होती है। जैसे—किमाह भवान् (आपने क्या कहा ?)। इसी प्रकार बहुवचन **'भवन्त'** (स्त्री० **भवत्य**) के साथ भी प्र० पु० क्रिया लगती हे, इसका प्राय एकवचन अभिप्राय होता है (१९३, ३ क)। नाटको मे 'भवान्' के दो समस्तपद प्राय प्रयुक्त होते हैं —(१) **अत्रभवान्** (पूजनीय आप), यह वर्तमान एक व्यक्ति को सकेत करता है, वह सामने सबोधित व्यक्ति हो या अन्य कोई व्यक्ति। (२) **तत्रभवान्** (पूजनीय वे), यह रगमच से बाहर किसी व्यक्ति को सकेत करता है और अन्य पुरुष के रूप मे ही प्रयुक्त होना है। इन दोनो के साथ क्रिया प्रथम पुरुष ही लगती है।

(२) **सकेतवाचक सर्वनाम**—(क) **एष** और **अयम्** (यह) ये समीपस्थ या वर्तमान को सकेत करते हैं। इन दोनो मे से भी प्रथम (एष) अधिक प्रबल है। इन दोनो का प्रयोग 'यहाँ' अर्थ मे प्र० पु० और उ० पु० एकवचन क्रिया के साथ प्राय होता है। जैसे—एष तपस्वी निष्ठति (यहाँ तपस्वी खडा है)। अयमस्मि (मैं यहाँ हूँ)। अयम् आगतस्तव पुत्र (तुम्हारा पुत्र यहाँ आया)। अय जन (यह व्यक्ति) का प्रयोग प्राय 'मैं' के अथ मे होता है।

(ख) **स** और **असौ** (वह) का प्रयोग दूरस्थ या अनुपस्थित के लिए होता है। इन दोनो मे से 'स' अधिक स्पष्टरूप से सकेतवाचक है, क्योकि यह सापेक्ष सर्वनाम का सबद्ध उत्तररूप है। इसके निम्नलिखित मुख्य प्रयोग होते हैं। इसका प्राय (लेटिन 'ille' के तुल्य) 'प्रसिद्ध' 'सुविख्यात' अर्थ होता है। जैसे—सा रम्या नगरी वह प्रसिद्ध मनोहर नगरी)। इसका प्राय 'पूर्वोक्त' अर्थ भी

होता है । जैसे—सोऽहम् (पूर्वोक्त वह मैं) । इस अर्थ मे प्राय इसका अंग्रेजी मे अनुवाद निश्चयवाचक 'the' के द्वारा करना चाहिए (नि० १९२) । जहाँ पर वाक्य मे संज्ञाशब्द नही होता है, वहाँ पर 'स' अन्यपुरुष व्यक्तिवाचक सर्वनाम का कार्य करता है और इसका अर्थ होता है—वह (पु०), वह (स्त्री०), वह (नपु०) वे, किन्तु यदि प्रथमा एक० मे इसका प्रयोग होता है तो अर्थ मे कुछ बल अधिक रहता है । (इसी प्रकार 'अयम्' और 'असौ' प्रथम पुरुष व्यक्तिवाचक सर्वनाम के रूप मे प्रयुक्त होते है) । यदि 'स' शब्द का दो बार प्रयोग होता है तो इसका अर्थ होता है—अनेक, विविध, सभी प्रकार के । जैसे—तानि तानि शास्त्राण्यध्यैत (उसने विविध शास्त्र पढे) ।

(३) **स्वामित्ववाचक सर्वनाम**—इन सर्वनामो (११६) का अपेक्षाकृत बहुत कम प्रयोग होता है, क्योकि इस अर्थ मे व्यक्तिवाचक सर्वनामशब्दो के षष्ठी के रूप अधिक प्रयोग मे आते है । भवत् (१९५, १ ग) के अर्थ के अनुसार ही इससे बने हुए तद्धित शब्द 'भवदीय' और 'भावत्क' आदरसूचक मध्यम पुरुष के अर्थ मे स्वामित्ववाचक सर्वनाम के रूप मे प्रयुक्त होते है ।

कारक

(The cases)

प्रथमा

(Nominative)

१९६ अन्य भारोपीय भाषाओ (Indo-European Languages) की की तुलना मे संस्कृत मे वाक्य के कर्ता के रूप मे प्रथमा का प्रयोग बहुत कम मात्रा मे प्रचलित है । इसके स्थान पर प्राय कर्मवाच्य प्रयोग होने से कर्ता मे तृतीया वाले प्रयोग अधिक मिलते है । जैसे—केनापि सस्यरक्षकेणैकान्ते स्थितम् (कोई खेत का रक्षक एकान्त मे खडा था, शाब्दिक अर्थ— किसी खेत-रक्षक के द्वारा एकान्त मे खडा हुआ गया) ।

(क) 'होना, प्रतीत होना, दिखाई पडना' अर्थ वाली धातुओ के साथ तथा 'पुकारना, जानना, भेजना, नियुक्त करना, बनाना' आदि अर्थ वाली धातुओ

शीघ्र गच्छाम (हमे शीघ्रतापूर्वक चलना चाहिए, मूलत इसका अर्थ था—शीघ्र चाल से चलते है) ।

द्विकर्मक प्रयोग

(Double Accusative)

१९८ निम्नलिखित धातुओ के साथ दो कम होते है —

(१) बुलाना, जानना, समझना, बनाना, नियुक्त करना और छाँटना अर्थ की धातुओ के साथ—जैसे—जानामि त्वा प्रकृतिपुरुषम् (मै तुम्हे मुख्य व्यक्ति समझता हूँ) ।

(२) कहना (ब्रू, वच्, अह्), पूछना (प्रच्छ्), माँगना (याच्, प्रार्थय), आज्ञा देना (अनु-शास्), दण्ड देना (दण्डय), जीतना (जि), दुहना (दुह्) अर्थ की धातुओ के साथ —जैसे—अन्तरिक्षगो वाच व्याजहार नलम् (पक्षी ने नल से बात कही) । साक्ष्य पृच्छेद् ऋत विद्वान् (वह ब्राह्मणो से सच्ची दृष्ट-घटना पूछे) । बलि याचते वसुधाम् (वह बलि से भूमि माँगता है) । यदनु-शास्ति माम् (वह मुझे जो आदेश देता है) । तान् सहस्र दण्डयेत् (वह उन-पर एक हजार पण दड लगावे) । जित्वा राज्य नलम् (नल का राज्य जीत-कर) । रत्नानि दुदुहुर्धरित्रीम् (उन्होने पृथ्वी से रत्न दुहे अर्थात् प्राप्त किए) ।

(क) कथय (कहना), वेदय (बताना) और आ-दिश् (आज्ञा देना) के साथ व्यक्ति मे कभी भी द्वितीया नही होती, अपि तु चतुर्थी (या षष्ठी) होती है ।

३ लेना, पहुँचाना, भेजना, अर्थ की धातुओ के साथ —जैसे—ग्रामम् अजा नयति (वह बकरी को गाँव मे ले जाता है) । शकुन्तला पतिकुल विसृज्य (शकुन्तला को पति के घर भेजकर) ।

४ णिजन्त धातुओ के साथ —जैसे—राम वेदमध्यापयति (राम को वेद पढाता है) । यदि मुख्य कर्म पर बल दिया जाएगा तो उसमे तृतीया भी होगी । ता श्वभि खादयेत् (वह उस स्त्री को कुत्तो से खिलवा दे) ।

(क) यदि धातु मे णिच् का अर्थ लुप्त हो गया है तो व्यक्ति मे द्वितीया न होकर चतुर्थी या षष्ठी होगी । ऐसा प्राय इन धातुओ के साथ होता है —

दर्शय (दिखाना) (दृश्+णिच्) और श्रावय (सुनाना) (श्रु+णिच्)। वेदय (बताना) (विद+णिच्) के साथ सदा ऐसा होता है।

(ख) णिजन्त के कमवाच्य मे प्रधान कर्म (व्यक्ति या कर्ता) मे प्रथमा होती है और गौण (अप्रधान) कर्म (वस्तु) मे द्वितीया ही रहती है। जैसे—रामो वेदम् अध्याप्यते (राम को वेद पढाया जाता है)। ता श्वान खाद्यन्ते (उस स्त्री को कुत्तो से खिलवाया जाना है)। बलिर्याच्यते वसुधाम् (बलि से पृथ्वी माँगी जाती है)।

तृतीया

(Instrumental)

१९९ तृतीया विभक्ति मूल रूप मे कर्ता और साधन सहयोगी वस्तु को प्रकट करती है, जिसके द्वारा कोई काय किया जाता है। 'से' (By) या 'द्वारा' (with) के द्वारा इसका अनुवाद किया जाता है। जैसे—तेनोक्तम् (उसके द्वारा कहा गया, अर्थात् उसने कहा)। स खड्गेन व्यापादित (वह तलवार से मारा गया)। यस्य मित्रेण सलापस्नतो नास्तीह पुण्यवान् (जिसका मित्र से वार्तालाप है, उससे अधिक इस ससार मे और कोई भाग्यशाली नही है) (नि० २०१, २ क)।

(१) तृतीया के द्वारा निम्नलिखित अर्थ भी प्रकट किए जाते है —

(क) **कारण या हेतु**—(से, द्वारा, कारण से, क्योकि, इसलिए कि) —जसे—भवतोऽनुग्रहेण (आपके अनुग्रह से), तेनापराधेन त्वा दण्डयामि (उस अपराध के कारण तुझे दण्ड देता हूँ), व्याघ्रबुद्धया (व्याघ्र समझने के कारण, अर्थात् उसने उसे व्याघ्र समझा अत एव) (नि० १८७, ५), सुखभ्रान्त्या (सुख-प्राप्ति के भ्रम से)।

(ख) **अनुरूपता या स्वभाव-बोधन**—(से, स्वभावानुसार) —जैसे—प्रकृत्या (स्वभाव से), जात्या (जाति से या जन्म से), स मम मतेन वर्तते (वह मेरे विचार के अनुसार चलता है)।

(ग) **वस्तु का मूल्य**—(द्वारा, इतने मूल्य मे) —जैसे—रूपकशतेन विक्रीयमाण पुस्तकम् (सौ रुपए मे बेची जाती हुई पुस्तक को), आत्मान

सतत रक्षेद् दारैरपि धनैरपि (पत्नी और धन को खोकर भी मनुष्य को चाहिए कि वह सदा अपनी रक्षा करे)।

(घ) **समय**—जितने मे कोई कार्य पूरा किया जाता है (इतने समय मे) —जैसे—द्वादशभिर्वर्षैर्व्याकरण श्रूयते (१२ वर्ष मे व्याकरण पढा जाता है)।

(ङ) **मार्ग, यात्रा का साधन या शरीर का अग**—जिसके द्वारा क्रिया पर प्रभाव पडता है —जैसे—कतमेन मार्गेण प्रणष्टा काका (कौए किस ओर से भाग गए ?), वाजिना चरति (वह घोडे पर चढकर जाता है, शब्दार्थ—घोडे के द्वारा जाना है), स श्वान स्कन्धेनोवाह (वह कुत्ते को कन्धे पर रखकर ले गया)।

(च) **इस बारे मे या इस बात** मे—(प्रमुखता, हीनता या अग विकार बोधक शब्दो के साथ) —जैसे—एताभ्या शौर्येण हीन (पराक्रम मे इन दोनो से हीन), पूर्वान् महाभाग तयाति शेषे (हे महा प्रभावशाली, तुम भक्ति के द्वारा अपने पूर्वजो से बढकर हो), अक्ष्णा काण (आँखो से काणा)।

(छ) **कारण या प्रयोजन** बताना [आवश्यकता या उपयोगिताबोधक अर्थ, प्रयोजनम् (प्रश्नवाचक के रूप मे प्रयुक्त या निषेधार्थक के साथ प्रयुक्त) या किम् (क्या ? कृ धातु के साथ या उसके बिना) के साथ] —जसे—को मे जीवितेनार्थ (मेरे जीवित रहने से क्या लाभ ?), देवपादाना सेवकैन प्रयोजनम् (आपको सेवको की आवश्यकता नही है), किं तया क्रियते धेन्वा (उस गाय से क्या लाभ ?), किं न एतेन (हमे इससे क्या करना है ?)। इसी प्रकार 'कृतम्' (बस) और 'अलम्' (बस, मत) के साथ तृतीया होती है (नि० १८०)। कृतमभ्युत्थानेन (आप मत उठिए)।

(ज) **'से' या 'इतने मात्र से'**—(प्रसन्न होना, हँसना, आनन्दित होना, सन्तुष्ट होना, आश्चर्ययुक्त होना, लज्जित होना और खिन्न होना अर्थ वाली धातुओ के साथ) —जैसे—कापुरुष स्वल्पेनापि तुष्यति (नीच व्यक्ति थोडे से भी प्रसन्न हो जाता है)। जहास तेन (इस बात पर वह हँसा)।

(झ) **'की' और 'द्वारा'**—(आत्मश्लाघा या शपथ लेना अर्थ की धातुओ

के साथ) —जैसे—भरतेनात्मना चाह शपे (मैं भरत की और अपनी कसम खाता हूँ)।

(ञ) **यज् धातु के कर्म (वध्य पशु) मे** —जैसे—पशुना रुद्र यजते (रुद्र को पशु बलिरूप मे देता है)। इस प्रयोग मे तृतीया का मौलिक अर्थ प्राप्त होता है, क्योकि इसमे यज् (किसी देवता की, किसी वस्तु से, पूजा करना) धातु का मूल अथ अवशिष्ट है।

२ **सह (साथ) अर्थ**—यह अथ क्रियाविशेषण शब्द सह, माकम्, सार्धम् और समम् के द्वारा प्रकट किया जाता है। ये शब्द सम्बद्ध शब्द के साथ या पृथक् भी रखे जाते है। इनके द्वारा 'साथ रहना' 'पृथक्ता' और 'शत्रुता' अर्थ भी व्यक्त किया जाता है। जैसे—पुत्रेण सह पिता गत (पिता पुत्र के साथ गया), मित्रेण सह चित्तविश्लेप (मित्र के साथ मतभेद), स तेन विदधे सम युद्धम् (उसने उसके साथ युद्ध किया)। यह अर्थ निम्नलिखित स्थानो पर भी लागू होता है —

(क) साथ रहने वाली परिस्थितियाँ या ढग जिस प्रकार कोई कार्य किया जाता है, इस अर्थ को प्रकट करने के लिए —जैसे—तौ दम्पती महता स्नेहेन वसत (वे पति-पत्नी बडे प्रेम से रहते है), महता सुखेन (बडे सुख से)।

(ख) साथ रहना, मिलना, युक्त होना, रखना और इनके विपरीत अर्थ वाली कर्मवाच्य क्रियाओ के साथ —जैसे—त्वया सहित (तेरे साथ), धनेन सपन्नो विहीनो वा (धन से युक्त या धन से रहित), प्राणैर्वियुक्त (प्राणो से रहित)।

(ग) समानता, सादृश्य या तुल्यता अर्थ वाले विशेषण शब्दो के साथ, जैसे—सम, समान, सदृश और तुल्य शब्द —जैसे, शक्रेण सम (इन्द्र के समान), अनेन सदृश (इसके सदृश), अय न मे पादरजसापि तुल्य (वह मेरे पैर की धूल के बराबर भी नही है। इन विशेषण शब्दो के साथ षष्ठी भी होती है। (नि० २०२, २ घ)।

चतुर्थी

(Dative)

२०० चतुर्थी विभक्ति गौण कम को, सामान्यतया व्यक्ति को, या क्रिया के उद्देश्य को प्रकट करती है।

(अ) निम्नलिखित स्थानो पर गौण कर्म मे चतुर्थी होती है —

(१) सकर्मक धातुओ के साथ, इनके साथ मुख्य कम हो या न हो —

(क) इन अर्थो वाली धातुओ के साथ —देना (दा, अपय), कहना (चक्ष्, शस्, कथय, ख्यापय, निवेदय), प्रतिज्ञा करना या वचन देना (प्रति-श्रु, आ-श्रु, प्रति-ज्ञा), दिखाना (दर्शय)—जैसे—विप्राय गा ददाति (वह ब्राह्मण को गाय देता है)। कथयामि ते भूनाथम् (मै तुमसे सच कहता हूँ)।

(ख) भेजना और फेकना अथ की धातुओ के साथ —जैसे—भोजेन दूतो रघवे विसृष्ट (भोज ने रघु के पास दूत भेजा), शूलॉश्चिक्षिपू रामाय (उन्होने राम पर बाण फेंके) (४७)।

(२) निम्नलिखित अर्थों वाली अकमक धातुओ के साथ —अच्छा लगना (रुच्), चाहना (लुभ्, स्पृह्), क्रुद्ध होना (असूय, कुप्, क्रुध्), द्रोह करना (द्रुह) —जैसे—रोचते मह्यम् (यह मुझे अच्छा लगता है), न राज्याय स्पृहये (मुझे राज्य की इच्छा नही है), किकराय कुप्यति (वह नौकर पर कोध करता है)। (क्रुध् और द्रुह् धातुएँ जब उपसर्ग के साथ समस्त होगी तो उन के साथ द्वितीया होगी)।

(३) नमस्कार अर्थ वाले शब्दो के साथ —जैसे—गणेशाय नम (गणेश को नमस्कार), कुशल ते (तुम्हारा कल्याण हो), रामाय स्वस्ति (राम को आशीर्वाद), स्वागत देव्यै (देवी का स्वागत है)।

(आ) उद्देश्य अर्थ वाली चतुर्थी यह प्रकट करती है कि वह काय किस उद्देश्य से किया गया है और यह चतुर्थ्यन्त पद प्राय तुमुन्-प्रत्ययान्त का समानाथक होता है। जैसे—मुक्तये हरिं भजति—वह मुक्ति के लिए (मुक्ति प्राप्त करने के लिए) हरि को भजता है, फलेभ्यो याति—वह फल के लिए (फल प्राप्त करने के लिए) जाता है, अस्मत्पुत्राणा नीनिशास्त्रोपदेशाय

भवन्त प्रमाणम्—मेरे पुत्रो को नीति-शास्त्र के उपदेश के लिए (नीतिशास्त्र का उपदेश देने के लिए) आप ही प्रमाण (पूर्ण अधिकारी) है। युद्धाय प्रस्थित —वह युद्ध के लिए (युद्ध करने के लिए) चल पडा। पुनर्दर्शनाय—पुन दर्शन के लिए।

यह चतुर्थी निम्नलिखित अर्थों वाली धातुओ के साथ मुख्यतया होती है—

(१) 'योग्य होना' 'समर्थ होना' (क्लृप्, स-पद्, प्र-भू) —भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते (भक्ति ज्ञान के लिए होती है)।

(क) इसी प्रकार अस् और भू धातुओ का प्रयोग होता है, किन्तु ये धातुएँ प्राय लुप्त रहती है —जैसे—लघूनामपि सश्रयो रक्षायै भवति (छोटी वस्तुओ का भी समूह रक्षा के लिये होता है), आर्तत्राणाय व शस्त्रम् (आपका शस्त्र पीडितो की रक्षा के लिए है)।

(२) 'योग्य होना', 'प्रारम्भ करना', प्रयत्न करना', 'निश्चय करना', 'आज्ञा देना', 'नियुक्त करना', अर्थ की धातुओ के साथ —जैसे— इय कथा क्षत्रियस्याकर्षणायाशकत् (यह कथा क्षत्रियो को आकृष्ट करने मे समर्थ हुई), प्रावर्तत शपथाय (वह कसम खाने लगा), तदन्वेषणाय यतिष्ये (उसका पता लगाने का यत्न करूगा), तेन जीवोत्सर्गाय व्यवसितम् (उसने जीवन-त्याग का निश्चय किया), दुहितरम् अतिथिसत्कारायादिश्य (अपनी पुत्री को अतिथि-सत्कार करने का आदेश देकर), रावणोच्छित्तये देवैर्नियोजित (वह रावण का नाश करने के लिये देवताओ के द्वारा नियुक्त किया गया)।

(क) क्रिया-विशेषण 'अलम्' (समर्थ) का प्रयोग 'पर्याप्त होना' 'बराबरी करने मे समर्थ होना' अर्थ मे होता है। जैसे—दैत्येभ्यो हरिरलम् (हरि दैत्यो के लिए पर्याप्त है)।

पचमी

(Ablative)

२०१ पचमी मुख्यरूप से निश्चित स्थान या आधार को सूचित करती है, जहाँ से कोई कार्य प्रारम्भ होता है। इस प्रकार यह 'कहाँ से' इस प्रश्न का उत्तर प्रस्तुत करती है और सामान्यतया 'से' (from) के द्वारा इसका

अनुवाद किया जा सकता है। जैसे—अहम् अस्माद् वनाद् गन्तुमिच्छामि। (मैं इस वन मे जाना चाहता हूँ), पापान्नाश उद्भवति (पाप से नाश होता है), निश्चयान्न चचाल स (वह अपने निश्चय से विचलित नही हुआ), स्वजनेभ्य सुतनाश शुश्राव (उसने अपने सबन्धियो से अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार सुना), ता बन्धनाद् विमुच्य (उसको उसके बन्धन से छुडाकर), विरम कर्मणोऽस्मात् (इस काम से रुको), पाहि मा नरकात् (मुझे नरक से बचाओ)।

(क) भय अर्थ वाली धातुओ (भी, उद्-विज) के साथ भय के कारण मे पचमी होती है। जैसे—लुब्धकाद् बिभेषि (तुम बहेलिए से डरते हो), समानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत (ब्राह्मण को चाहिए कि वह समान से सदा बचे)।

(ख) 'पृथक् होना' अर्थ वाली धातुओ के साथ स्वभावत पचमी होती है। जैसे—भवद्भ्यो वियोजित (आपसे छोडा हुआ), सा पतिलोकाच्च हीयते (वह अपने पति के स्थान से च्युत हो जाती है) (ऐसे शब्दो के साथ तृतीया भी होती है, देखो नियम १९९, २ ख)। इससे मिलता-जुलता 'वञ्चय' (ठगना, किसी वस्तु से उसको वचित या वियुक्त करना) का प्रयोग है। जैसे —वञ्चयितु ब्राह्मण छागलात् (ब्राह्मण से बछडा ठगने के लिए)।

(ग) पचमी पृथक् होने मे निश्चित स्थान (ध्रुव स्थान) को सूचित करती है, अत यह 'दूर' अर्थ वाले तथा 'दिशावाचक' सभी शब्दो के साथ होती है। जैसे—दूर ग्रामात् (गाँव से दूर), ग्रामात् पूर्वो गिरि (गाँव के पूर्व की ओर पहाड है)।

(घ) इसी प्रकार पचमी 'समय' को बताती है, जिसके बाद कोई कार्य होना है। जैसे—बहोर्दृष्ट कालात् (बहुत समय के बाद दिखाई पडा), सप्ताहात् (एक सप्ताह के बाद)।

पचमी विभक्ति अपने मूल अर्थ से सबद्ध निम्नलिखित अर्थों को भी प्रकट करती है —

(१) कारण, लक्ष्य या उद्देश्य (=इसलिए, इस कारण से, इसके द्वारा, से) —जैसे—लौल्याद् मास भक्षयति (लालच के कारण माँस खाता है)। इस प्रकार की पचमी का प्रयोग 'त्व'-प्रत्ययान्त भाववाचक शब्दो के साथ,

विशेषकर टीका-ग्रन्थो मे, मुख्यतया दिखाई पडता है। जैसे—पर्वतोऽग्निमान् धूमवत्वात् (पहाड अग्नियुक्त है, क्योकि इसमे धुआ है)। इस अर्थ मे तृतीया भी होती है, नि० १९९, १ क)।

(२) तुलना अर्थ —

(क) दो की तुलना मे (तर-प्रत्ययान्त) या तुलना अर्थ वाले शब्दो के साथ। जैसे—गोविन्दाद् रामो विद्वत्तर (राम गोविन्द से अधिक विद्वान् है), कर्मणो ज्ञानमतिरिच्यते (ज्ञान कर्म से बढकर है)। तुलना अर्थ होने पर तर प्रत्यय न होने पर भी पचमी होती है। जैसे—भार्या सर्वलोकादपि वल्लभा भवति (पत्नी सारे ससार से अधिक प्रिय होती है)। वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि लोकोत्तराणा चेतासि (असाधारण लोगो के चित्त वज्र मे भी अधिक कठोर और फूल से भी अधिक कोमल होते है)।

(ख) अन्य या भिन्न अर्थ वाले शब्दो (अन्य, इतर, अपर, भिन्न) के साथ। जैसे—कृष्णादन्यो गोविन्द (गोविन्द कृष्ण से भिन्न है)।

(ग) तुलनार्थक शब्दो से मिलते-जुलते 'गुना' अर्थ वाले दुगुना, तिगुना आदि शब्दो के साथ। जैसे—मूल्यात् पञ्चगुणो दण्ड (मूल्य की अपेक्षा पाँच गुना दण्ड है)।

षष्ठी (Genitive)

२०२ षष्ठी का मुख्य अर्थ अर्ध-विशेषणात्मक है, क्योकि इसके द्वारा एक सज्ञाशब्द का दूसरे सज्ञाशब्द के साथ 'सम्बन्ध' बताया जाता है। अत इसका अर्थ होता है—'सबद्ध' या 'उसका सम्बन्धी'। सामान्यतया इगलिश मे of (का) के द्वारा अनुवाद किया जाता है। सज्ञा शब्दो मे षष्ठी का प्रयोग इन अर्थो मे होता है—स्वस्वामिभाव, कर्तृत्व, कर्मत्व, और निर्धारण (बहुतो मे से एक को छाँटना)। जैसे—राज्ञ पुरुष (राजा का पुरुष), राक्षसकलत्र-प्रच्छादन भवत (आपका अर्थात् आपके द्वारा राक्षस की पत्नी का छिपाना), शङ्कया तस्या (उसकी शका से अर्थात् उसको वह स्त्री समझ कर), धुर्यो धनवताम् (धनवानो मे अग्रगण्य)।

(१) बहुत सी क्रियाओ के साथ षष्ठी का प्रयोग होता है—

(क) स्वामित्व अर्थ मे ईश् (स्वामी होना) और प्र+भू (स्वामी होना,

दूसरे पर प्रभुत्व रखना) धातुओ के साथ तथा अस (होना), भू (होना) और विद्यते (है, विद्यमान है) के साथ। जैसे—यदि आत्मन प्रभविष्यामि (यदि मै अपनी स्वामिनी होऊगी, अर्थात् यदि मेरा अपने ऊपर अधिकार रहा तो), मम पुस्तक विद्यते (मेरी पुस्तक है, मेरे पास पुस्तक है)।

(ख) दय् (दया करना), स्मृ (याद करना) और अनु-कृ (अनुकरण करना) धातुओ के साथ इनके कम मे षष्ठी होती है (साथ ही द्वितीया भी होती है)। जैसे—एते तव दयन्ताम् (ये तुम पर दया करे), स्मरति ते प्रसादानाम् (वह तुम्हारी कृपा को स्मरण करता है), भीमस्यानुकरिष्यामि (मैं भीम का अनुकरण करूँगा)।

(ग) निम्नलिखित अर्थों वाली धातुओ के साथ इनके कर्म मे षष्ठी होती है (इन अर्थों मे सप्तमी भी होती है) —उपकार करना, या हानि पहुँचाना (उप कृ, प्र-सद् अप-कृ, अप-राध्), विश्वास करना (वि-श्वस्), क्षमा करना (क्षम्)। जैसे—मित्राणाम् उपकुर्वाण (मित्रो का उपकार करता हुआ), किं मया तस्या अपकृतम् (मैंने उसका क्या अपकार किया है ?), क्षमस्व मे (मुझे क्षमा करो)।

(घ) 'दूसरे के बारे मे कहना या सभावना करना' अर्थ वाली धातुओ के साथ। जैसे—ममादोषस्याप्येव वदति (मुझ निर्दोष के बारे मे भी यह इस प्रकार कह रहा है)। सर्वमस्य मूर्खस्य सभाव्यते (इस मूख के लिए सब कुछ करना सभव है)।

(ङ) निम्नलिखित अर्थों वाली धातुओ के साथ (गौण कम मे चतुर्थी के स्थान पर) प्राय षष्ठी होती है, —देना, कहना, प्रतिज्ञा करना, दिखाना, भेजना, झुकना, प्रसन्न करना, क्रुद्ध होना। जैसे—मया तस्याभय प्रदत्तम् (मैंने उसे अभयदान दिया है)। किं तव रोचत एष (क्या वह तुम्हे अच्छा लगता है ?)। ममानतिक्रुद्धो मुनि (वह मुनि मुझसे अधिक क्रुद्ध नही है)।

(च) कभी कभी, 'पूर्ण होना या तृप्त होना' अर्थ की धातुओ के साथ (तृतीया के स्थान पर) षष्ठी होती है। जैसे—नाग्निस्तृप्यति काष्ठानाम् (अग्नि लकडी से तृप्त नही होती है)। इसी प्रकार क्त-प्रत्ययान्त 'पूर्ण' शब्द

के साथ 'पूरा भरा' मे षष्ठी और 'अमुक से भरा हुआ' अर्थ मे तृतीया होती है ।

(२) विशेषण शब्दो के साथ प्राय षष्ठी होती है —

(क) सकमक धातुओ के समकक्ष विशेषणो के साथ । जैसे—जरा विनाशिनी रूपस्य (वृद्धावस्था सौन्दर्य की नाशक है) ।

(ख) इन अर्थो वाले शब्दो के साथ —निर्भर, सबद्ध, प्रिय । जैसे—तवायत्त स प्रतीकार (वह प्रतीकार तुम्हारे अधीन है) । यत् त्वयास्य सक्त किंचिद् गृहीतमस्ति तत् समपय (इसका जो कुछ भी तुमने लिया है, वह इसे लौटा दो) । को नाम राज्ञा प्रिय (भला कौन राजाओ का प्रिय है ?) ।

(ग) इन अर्थो वाले शब्दो के साथ (इनके साथ सप्तमी भी होती है, नि० २०३ च) —परिचित, दक्ष, अभ्यस्त । जैसे—अभिज्ञ खल्वसि लोकव्यवहाराणाम् (आप वस्तुत लोक-व्यवहारो से परिचित है), सग्रामाणाम् अकोविद (युद्ध मे अचतुर) । उचितो जन क्लेशानाम् (दु ख सहन के अभ्यस्त व्यक्ति) ।

(घ) तुल्य या सदृश अर्थ वाले शब्दो के साथ (इनके साथ तृतीया भी होती है, नि० १९९, २ ग) । जैसे—राम कृष्णस्य तुल्य (राम कृष्ण के तुल्य है) ।

(३) क्त-प्रत्ययान्त शब्दो के साथ कर्ता मे षष्ठी होती है —

(क) सोचना, जानना और पूजा करना अर्थ वाली धातुओ से वतमान अर्थ मे क्त-प्रत्यय होने पर —जैसे—राज्ञा मत (राजाओ के द्वारा माना गया=राजाओ के द्वारा आदृत) । विदितो भवान् आश्रमसदाम् इहस्थ (आप यहाँ पर है, यह आश्रमवासियो को ज्ञात हो गया है) ।

(ख) कृत्य प्रत्ययो के साथ (इनके साथ तृतीया भी होती है नि० १९९) —मम (मया) सेव्यो हरि (हरि मेरे द्वारा सेवनीय है) ।

(४) दिशाबोधक तस् (त) प्रत्ययान्त क्रिया विशेषण शब्दो के साथ षष्ठी होती है (१७७ घ) —जैसे—ग्रामस्य दक्षिणत (गाँव के दक्षिण की ओर) । कभी कभी 'एन' प्रत्ययान्त शब्दो के साथ भी षष्ठी होती है (इनके

साथ द्वितीया भी होती है) —जैसे—उत्तरेणास्य (इस स्थान के उत्तर की ओर)।

(५) काल वाचक शब्दो के साथ षष्ठी निम्नलिखित स्थानो पर होती है —

(क) निर्धारित समय मे कोई कार्य कितनी बार किया गया है, इस अथ मे सख्या-बोधक शब्दो से या 'इतनी बार' अर्थ वाले शब्दो से (१०८) षष्ठी होती हे। जैसे—श्राद्ध त्रिरब्दस्य निर्वपेत् (वर्ष मे तीन बार श्राद्ध करे)। सवत्सरस्यैकमपि चरेत् कृच्छ्र द्विजोत्तम (ब्राह्मण को चाहिए कि वह वष मे कम से कम एक कठिन व्रत करे)।

(ख) 'इतने समय बाद' अर्थ मे काल-वाचक शब्दो से षष्ठी होती है (पचमी भी)। जैसे—कतिपयाहस्य (कुछ दिन बाद)। इस अर्थ मे केवल 'चिरस्य' का भी प्रयोग होता है।

(ग) यदि समय बोधक शब्द के साथ सज्ञा शब्द और क्त प्रत्ययान्त रूप षष्ठी विभक्ति से युक्त होता है, तो वह 'समय की अवधि' बताता है। जैसे—अद्य दशमो मासस्तातस्योपरतस्य (मेरे पिता को मरे हुए आज दसवाँ महीना है)। इस प्रकार का प्रयोग भावे षष्ठी के तुल्य है (२०५, २)।

(६) दो वस्तुओ मे विकल्प या अन्तर प्रकट करने के लिए दोनो शब्दो मे षष्ठी का प्रयोग होता है। जैसे—व्यसनस्य मृत्योश्च व्यसन कष्टमुच्यते (दुर्गुण और मृत्यु मे दुर्गुण अधिक कष्टदायी है)। एतावानेवायुष्मत शत-क्रतोश्च विशेष (आपमे और चिरजीवी इन्द्र मे इतना ही अन्तर है)।

सप्तमी (Locative)

२०३ सप्तमी विभक्ति स्थान अर्थ बताती है, जहाँ पर वह कार्य हुआ है, या गति-अथ वाली धातुओ के साथ गन्तव्य स्थान को बताती है। प्रथम अथ मे सप्तमी का अनुवाद मे, पर, समीप आदि के द्वारा किया जाता है और दूसरे अर्थ मे 'मे' या 'पर' के द्वारा।

कहाँ ? अर्थ मे सामान्य सप्तमी के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है — पक्षिणस्तस्मिन् वृक्षे निवसन्ति (पक्षी उस पेड पर रहते है)। विदर्भेषु (विदर्भ मे) (१९३, ३ ग)। आत्मान तव द्वारि व्यापादयिष्यामि (मै तुम्हारे दरवाजे पर अपनी हत्या करूगा)। काश्याम् (काशी मे)। फल दृष्ट द्रुमेषु (पेडो पर फल दिखाई पडा)। आसेदुर्गङ्गायाम् (वे गगा के किनारे रुके)। न देवेषु न यक्षेषु ता"ग् रूपवती क्वचिद् मानुषेष्वपि चान्येषु दृष्टपूर्वा (न देवो मे, न यक्षो मे और न अन्य मनुष्यो मे ही इस प्रकार की सुन्दरी आज तक देखी गई है)। मम पार्श्वे (मेरे पास)।

(क) जब निर्धारण (बहुतो मे से एक को छाँटना) अर्थ मे सप्तमी होती है, तो उसका अर्थ षष्ठी के समकक्ष होता है (२०२)। जैसे—सर्वेषु पुत्रेषु रामो मम प्रियतम (सारे पुत्रो मे राम मेरा सबसे अधिक प्रिय है)।

(ख) जिसके साथ कोई व्यक्ति रहता है या रुकता है, उसमे सप्तमी होती है। जैसे—गुरौ वसति (वह गुरु के पास रहता है)।

(ग) तिष्ठति (रुकता है) और वर्तते (होता है) के साथ सप्तमी होने पर इनका अर्थ हो जाता है—मानता है, तदनुसार कार्य करता है। जैसे—न मे शासने तिष्ठसि (तुम मेरा कहना नही मानते हो)। मातुर्मते वर्तस्व (माँ की इच्छा के अनुसार काम करो)।

(घ) किसी कारण का परिणाम (फल) प्रकट करने अर्थ मे सप्तमी होती है। दैवमेव नृणा वृद्धौ क्षये कारणम् (मनुष्यो की समृद्धि और अवनति का कारण भाग्य ही है)।

(ङ) निम्नलिखित अर्थो वाली धातुओ के साथ सप्तमी सबन्ध (सपर्क) अर्थ को प्रकट करती है —पकडना (ग्रह्), बाँधना (बन्ध्), लेटना या चिपकना (लग्, श्लिष्, सञ्ज्), निर्भर होना, विश्वास करना, आशा करना। जैसे—केशेषु गृहीत्वा (बाल पकडकर), पाणौ सगृह्य (हाथ पकडकर), वृक्षे पाश बबन्ध (वृक्ष मे बेडी बाँधी), व्यसनेष्वसक्त शूर (व्यसनो मे न फँसा हुआ शूर), वृक्षमूलेषु सश्रिता (वृक्षो की जडो पर लेटे हुए), विश्वसिति शत्रुषु (वह

शत्रुओ पर विश्वास करता है), आशसन्ते सुरा अस्याधिज्ये धनुषि विजयम् (देवता इसके डोरी-चढे धनुष पर विजय की आशा करते है)।

(च) निपुण या कुशल अर्थ वाले विशेषण शब्दो के साथ सप्तमी होती है। (इनके साथ षष्ठी भी होती है, २०२, २ ग) —रामोऽक्षद्यूते निपुण (राम जुआ खेलने मे निपुण है)। नाट्ये दक्षा वयम् (हम लोग अभिनय मे निपुण है)।

(छ) किसी व्यक्ति या वस्तु मे कोई गुण या विशेषना प्राप्त होनी है तो उसको प्रकट करने के लिए सप्तमी का आलकारिक प्रयोग होता है। जैसे— सर्वं सभावयाम्यस्मिन् (मै इसमे सभी गुणो की आशा करता हूँ)। (२०० १ घ)। दृष्टदोषा मृगया स्वामिनि (शिकार खेलना राजा के लिए दुर्गुण है)। आर्तानामुपदेशे न दोष (विपत्तिग्रस्त को उपदेश देने मे कोई दोष नही है)। इसी प्रकार शब्द का अथ स्पष्ट करने मे सप्तमी विभक्ति का अथ होता है— 'अमुक अर्थ मे'। जैसे—कलापो बर्हे (कलाप शब्द का प्रयोग मोर के पख अर्थ मे होता है)।

(ज) सप्तमी विभक्ति विशेष परिस्थिति को प्रकट करती है, जिन परि-स्थितियो मे वह कार्य हुआ है। जैसे—आपदि (आपत्ति के समय मे)। भाग्येषु (समृद्धि के समय मे)। छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति (विपत्तियो के समय मे अनथ बढ जाते है)। अन्तिम उदाहरण मे सप्तमी कारण-बोधक है। यदि इसके साथ शतृ-प्रत्ययान्त विधेय होता तो इसमे 'सति सप्तमी' होती। (२०५, १ क)।

(झ) 'कालाथक सप्तमी' प्रकट करती है कि किस समय वह कार्य हुआ है। यह पूर्वोक्त नियम का ही विशिष्ट प्रयोग है। जैसे—वर्षासु (वर्षा ऋतु मे), निशायाम् (रात्रि मे), दिने-दिने (प्रतिदिन)।

(ञ) सप्तमी स्थान की दूरी को प्रकट करती है कि कितनी दूर पर वह कार्य हुआ है। जैसे—इतो वसति अध्यर्धयोजने महर्षि (महर्षि यहाँ से डेढ योजन पर रहते है)।

२०४ सप्तमी 'किधर' और 'कहा' इन प्रश्नो का उत्तर देती है। इस अथ मे यह निम्नलिखित धातुओ के साथ प्रयुक्त होती है —(क) गिरना और रखना अर्थ की धातुओ के साथ अनिवार्य रूप से, (ख) फेंकना और भेजना अथ वाली धातुओ के साथ। इन अर्थों मे चतुर्थी भी होती है (२००, अ १ख),

(ग) जाना, घुसना, चढना, चोट मारना, लाना, भेजना अर्थ की धातुओ के साथ। इन अर्थों मे द्वितीया भी होती है। जैसे—भूमौ पपात (वह पृथ्वी पर गिरा)। तत्रैव भिक्षापात्रे निधाय (उसी भिक्षा-पात्र मे रखकर)। हस्त-मुरसि कृत्वा (अपना हाथ छाती पर रखकर) (कृ धातु रखना अर्थ मे भी प्रयुक्त होती है)। अरौ बाणान् क्षिपति (वह अपने शत्रु पर बाण फेकता है)। मत्स्यो नद्या प्रविवेश (मछली नदी मे घुसी)। समीपवर्तिनि नगरे प्रस्थित (वह समीपवर्ती नगर के लिए चल पडा)। त शिरस्यताडयन् (उसने उसके सिर पर चोट मारी)।

(क) सप्तमी उस व्यक्ति या वस्तु का बोध कराती है जिसके विषय मे कुछ कार्य हुआ है, या जिसका उस काय से सबन्ध है। जैसे—प्राणिषु दया कुर्वन्ति साधव (सज्जन लोग प्राणियो पर दया करते हैं)। भव दक्षिणा परि-जने (सेवको पर दयालु होना)। क्षेत्रे विवदन्ते (वे खेत के बारे मे झगडा कर रहे है)।

(ख) निम्नलिखित अर्थों वाली धातुओ के साथ चतुर्थी (और षष्ठी) के साथ ही गौण कर्म मे सप्तमी भी होती है —देना, कहना, प्रतिज्ञा करना, खरीदना और ८चना। (२०० अ १ क, २००, १ ड)। जैसे—सहस्राक्षे प्रति-ज्ञाय (इन्द्र से यह प्रतिज्ञा करके)। शरीर वि॰ीय धनवति (धनवान् को अपना शरीर बेचकर)। वितरति गुरु प्राज्ञे विद्याम् (गुरु बुद्धिमान् शिष्य को विद्या देना है)।

(ग) निम्नलिखित अर्थों वाले शब्दो और धातुओ के साथ कार्य के लक्ष्य को बताने अर्थ मे चतुर्थी (२०० आ १, २) के साथ सप्तमी भी होती हैं — प्रवृत्त होना, लगा रहना, निश्चय करना, इच्छुक होना, नियुक्त करना, चुनना, आज्ञा देना, स्वीकृति देना, योग्य होना या उस कार्य के उपयुक्त होना। जैसे—सर्वस्वहरणे युक्त शत्रु (सर्वस्व हरने मे लगा हुआ शत्रु)। कर्मणि न्ययुड्क्त (उसने उसे काम मे नियुक्त किया)। पतित्वे वरयामास तम् (उसने उसे पति के रूप मे चुना)। असमर्थोऽयमुदरपूरणेऽस्माकम् (यह हमारी उदर पूर्ति करने मे असमर्थ है)। त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्व तस्मिन् युज्यते (तीनो लोको का भी प्रभुत्व उसके योग्य है)। विधेय मे सप्तमी के द्वारा ही

'योग्य होना' अर्थ प्रकट होता है। जैसे—नयत्यागशौर्यसंपन्ने पुरुषे राज्यम् (नीति, त्याग और शौर्य से संपन्न मनुष्य मे ही राज्य रहता है)। कभी कभी सप्तमी का प्रयोग ऐसी धातुओ के साथ भी होता है, जिनका अर्थ कोई लक्ष्य नही होता है। ऐसे स्थानो पर सप्तमी का अर्थ होता है कि काय के फलस्वरूप अमुक वस्तु प्राप्त हुई। जैसे—चर्मणि द्वीपिनं हन्ति (वह चमडे के लिए अर्थात् चमडा प्राप्त करने के लिए व्याघ्र को मारता है)।

(घ) इच्छा, भक्ति, आदर, मित्रता, विश्वास, दया, घृणा और उपेक्षा अर्थो के बोधक शब्दो के साथ जिनके प्रति ये भाव प्रकट किए जाते है, उनमे प्राय सप्तमी होती है। जैसे—न खलु शकुन्तलाया ममाभिलाष (वस्तुत शकुन्तला के प्रति मेरी अभिलाषा नही है)। न मे त्वयि विश्वास (मेरा तुम्हारे ऊपर विश्वास नही है)। न लघुष्वपि कर्तव्येष्वनादर कार्य (छोटे से छोटे कर्तव्यो के प्रति उपेक्षा नही करनी चाहिए)।

(ङ) निम्नलिखित अर्थो वाले विशेषण शब्दो या क्त-प्रत्ययान्त शब्दो के साथ सप्तमी होती है —अभ्यस्त, रत, प्रवृत्त, अनुरक्त या सलग्न तथा इनके विलोम (विरुद्धार्थक) शब्द। जैसे—नार्य केवल स्वसुखे रता (औरते केवल अपने सुख मे ही मग्न रहती है)।

भावे षष्ठी और सप्तमी

(Locative and Genitive Absolute)

२०५ (१) संस्कृत मे भावे सप्तमी सामान्यतया प्रचलित है। यह ग्रीक के 'भावे षष्ठी' और लेटिन के 'भावे पचमी' के बहुत कुछ समकक्ष है। जैसे—गच्छत्सु दिनेषु (जैसे-जैसे दिन बीतते गए)। गोषु दुग्धासु स गत (गायो के दुहे जाने पर वह गया)। कर्ण ददाति मयि भाषमाणे (मेरे बोलने पर वह अपने कान मेरी ओर लगाती थी)।

(क) भावे सप्तमी का विधेय प्राय सदा ही शतृ या शानच् प्रत्ययान्त शब्द होता है। इसका अपवाद केवल शतृ-प्रत्ययान्त 'सत्' शब्द है जो प्राय लुप्त रहता है। जैसे—कथ धर्मक्रियाविघ्न सता रक्षितरि त्वयि (सज्जनो के रक्षक तुम्हारे रहते हुए, उनके धर्म-कार्यों मे विघ्न कैसे हो सकता है ?)।

(ख) शतृ प्रत्ययान्त 'सत्' (होता हुआ) शब्द (या इसके समानार्थक 'वर्तमान' और 'स्थित' शब्द) प्राय दूसरे भावार्थक-प्रत्ययान्त शब्द के बाद जोड दिया जाता है। जैसे—सूर्योदयेऽन्धता प्राप्तेषूलूकेषु सत्सु (सूर्योदय होने पर उल्लुओ के अन्धे हो जाने पर)।

(ग) जब क्त प्रत्यय का प्रयोग भाव अर्थ मे होता है तो कर्ता प्राय लुप्त रहता है। यदि क्त-प्रत्ययान्त के साथ एवम्, तथा, इत्थम्, इति आदि अव्यय होते है, तब भी कर्ता लुप्त रहता है। जैसे—तेनाभ्युपगते (उसके द्वारा स्वीकृति दिए जाने पर)। एव गते (ऐसा होने पर, शब्दार्थ—इसप्रकार जाने पर)। 'तथा कृत सति' या 'तथानुष्ठिते' (एसा करने पर)।

(घ) 'ज्योही त्योही' अर्थ को प्रकट करने के लिए भावार्थक क्त-प्रत्ययान्त के बाद (समस्तपद के द्वितीय पद के रूप मे) 'एव' अव्यय और 'मात्र' शब्द का प्रयोग होता है। जैसे प्रभातायामेव रजन्याम् (ज्योही सवेरा हुआ त्योही)। प्रविष्टमात्र एव तत्रभवति (ज्योही आप प्रविष्ट हुए त्योही)।

२ 'भावे सप्तमी' की अपेक्षा 'भावे षष्ठी' का प्रयोग बहुत कम मिलता है और इसका उपयोग बहुत कम स्थानो पर होता है। यह समकालीन के लिए प्रयुक्त होता है। इसका कर्ता कोई व्यक्ति होता है और विधेय शतृ-प्रत्ययान्त रूप या इसी भाव वाला शब्द होता है। इसका अनुवाद 'जबकि' 'यद्यपि' 'क्योकि' के द्वारा किया जा सकता है। जैसे—पश्यतो मे परिभ्रमन् (यद्यपि मैं देख रहा था, फिर भी घूमते हुए)। एव वदतस्तस्य स लुब्धको निभृत स्थित (जबकि वह इस प्रकार कह रहा था, तब वह बहेलिया छिपकर खडा रहा)। एव चिन्तयतस्तस्य तत्र तोयार्थमाययु स्त्रिय (जब वह इस प्रकार सोच रहा था, तभी जल लेने के लिए स्त्रियाँ आईं)।

कालार्थक कृत् प्रत्यय (क्त, क्तवतु, शतृ, शानच्

(Participles)

२०६ सस्कृत मे कालार्थक कृत् प्रत्ययान्तो का प्रयोग मुख्य क्रिया के विशेषण के रूप मे होता है और वे आश्रित उपवाक्य का कार्य करते है। लेटिन और ग्रीक के तुल्य ही ये शब्द निम्नलिखित अर्थो को प्रकट करते हैं —

सबन्ध-बोधक लौकिक कारण, स्वीकृति और काल्पनिक । भविष्यन् अर्थ वाले कृत् प्रत्यय समाप्ति-सूचक अर्थ भी प्रकट करते है । उपर्युक्त अर्थ प्रत्ययो मे स्वभाव-सिद्ध है और इसके लिए कोई निपात जोडने की आवश्यकता नही होती, केवल स्वीकृति-सूचक कृत् प्रत्ययान्तो मे अन्त मे 'अपि' साधारणतया जोडा जाता है ।

जैसे— शृगाल कोपाविष्टस्तम् उवाच (क्रोध से भरा हुआ गीदड उससे बोला) । निषिद्धस्त्व मयाऽनेकशो न शृणोषि (यद्यपि मैने तुम्हे अनेक बार मना किया है, परन्तु तुमने मेरी बात नही सुनी) । अजल्पतो जानतस्ते शिरो यास्यति खण्डश (जानते हुए भी यदि तुम नही बताते हो तो तुम्हारा शिर टुकडे-टुकडे कर दिया जाएगा) । ताडयिष्यन् भीम पुनरभ्यद्रवत् (वह फिर भीम को चोट मारने के लिए उसकी ओर दौडा) ।

(क) कालार्थक कृत्प्रत्ययान्त शब्दो के अर्थ मे बहुव्रीहिसमास वाले शब्दो का प्राय प्रयोग होता हे और 'सत्' शब्द लुप्त रहता है । जैसे—अथ शङ्कितमना व्यचिन्तयन् (शकित-चित्त होकर उसने सोचा) ।

२०७ **वतमानार्थक कृत्प्रत्यय (Present Participle)** । क्रिया की निरन्तरता (रहा अर्थ) को सूचित करने के लिए (वर्तमानाथक कृत्प्रत्ययो तथा) वर्तमान अर्थ वाले क्त-प्रत्ययान्त रूपो) के साथ अस्ति या भवति (है), आस्ते (बैठता है), तिष्ठति (रुकता है), वर्तते (है) का प्रयोग होता है । इगलिश् मे 'Is doing' (कर रहा है) के तुल्य ये शब्द 'रहा' अर्थ को प्रकट करने है । जैसे—एतदेव वन यस्मिन्नभूम चिरमेव पुरा वसन्त (यह वही वन है, जिसमे हम लोग पहले बहुत दिनो तक रहे थे) । भक्षयन्नास्ते (वह खा रहा है) । सा यत्नेन रक्ष्यमाणा तिष्ठति (वह यत्नपूबक सुरक्षित रखी जा रही है) । परिपूर्णोऽय घट सक्तुभिवर्तते (यह घडा सत्तू से भरा हुआ है) ।

(क) इसी प्रकार 'शान्त होना' 'रुकना' अथ वाली क्रिया-निपेधाथक धातुओ का प्रयोग वर्तमानाथक कृत प्रत्ययो के साथ होता है । जैसे—सिहो मृगान् व्यापादयन्नोपरराम (सिह मृगो को मारने से नही रुका) ।

(ख) 'लज्जित होना' 'सहन करना' आदि भावावेश-बोधक धातुओ के बाद भावावेश का कारण बताने के लिए शतृ या शानच् प्रत्ययान्त रूपो का

प्रयोग होता है। जैसे—कि न लज्जसे एवं ब्रुवाण (क्या ऐसा कहते हुए तुम्हे लज्जा नही आती ?)

(ग) देखना, सुनना, जानना, सोचना, चाहना अर्थ वाली धातुओ (१६८, १) के साथ विधेयरूप मे प्रयुक्त शतृ, शानच् (या क्त) प्रत्ययान्त रूपो मे कर्तृवाच्य मे द्वितीया और कर्मवाच्य मे प्रथमा होती है। जैसे—प्रविशन्न न मा कश्चिदपश्यत् (मुझ को प्रविष्ट होते हुए किसी ने नही देखा)। स भूपतिरेकदा केनापि पठ्यमान श्लोकद्वय शुश्राव (उस राजा ने एक बार किसी के द्वारा पढे जाते हुए दो श्लोक सुने)। गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यका श्रूयन्ते परिणीता (राजर्षियो की बहुत सी कन्याएँ गान्धर्वविधि से विवाहित हुई सुनी जाती है)।

२०८ भूतार्थक कृत्प्रत्यय (Past Participles) कर्मवाच्य क्त (त) प्रत्यय और कर्तृवाच्य तवत् प्रत्यय वाले रूप (१६१, ८६ पादटिप्पणी ३) (लिट् के स्थान मे होने वाला 'वस्' प्रत्ययान्त रूप, बहुत कम नि० ८६) प्राय मुख्य क्रिया के रूप मे प्रयुक्त होते है (सयोजक शब्द लुप्त रहता है)। जैसे—तेनेदम् उक्तम् (उसने यह कहा)। स इदमुक्तवान् (उसने यह कहा)।

(क) अकर्मक धातुओ से कर्मवाच्य मे क्त (त) प्रत्यय होने पर उनका प्रयोग भाववाच्य मे होता है। अन्यत्र क्त-प्रत्ययान्त का कर्तृवाच्य प्रयोग होता है। जैसे—मयाऽत्र चिर स्थितम् (मैं यहाँ देर तक रहा था)। स गङ्गा गत (वह गगा नदी पर गया)। स पथि मृत (वह रास्ते मे मर गया)।

(ख) कुछ क्त-प्रत्ययान्त रूपो का प्रयोग दोनो प्रकार मे होता है—कर्मवाच्य मे और सकर्मक कर्तृवाच्य मे। जैसे—प्राप्त ('पाया' और 'पहुँच कर' या 'पाकर') प्रविष्ट ('प्रविष्ट' और 'प्रवेश करके'), पीत ('पिया हुआ' और 'पीकर'), विस्मृत ('भूला हुआ' और 'भूलकर'), विभक्त ('बँटा हुआ' और बाँटकर), प्रसूत ('उत्पन्न और 'उत्पन्न होकर') आरूढ (चढा हुआ' आदि और 'चढ कर' आदि)।

(ग) 'न' अन्त वाले क्त-प्रत्ययान्त रूपो का प्रयोग सकर्मक कर्तृ-वाच्य के रूप मे कभी नही होता है।

२०९ कृत्य प्रत्यय (Future Participles Passive) । कृत्य प्रत्यय (१६२) आवश्यकता, अवश्य-कर्तव्यता, योग्यता और सभावना अर्थों को प्रकट

करन है । कृत्य-प्रत्ययान्त के साथ भी वाक्य-रचना क्त-प्रत्ययान्त के स''श ही होती है । जैसे—मयाऽवश्य देशान्तर गन्तव्यम् (मुझे अवश्य दूसरे देश जाना चाहिए) । हन्तव्योऽस्मि न ते राजन् (हे राजन्, मुझे मत मारिए) । ततस्तेनापि शब्द कतव्य (तब वह भी बोलेगा) ।

(क) कभी-कभी कृत्य प्रत्यय केवल भविष्यत् काल का अर्थ बताते है। जैमे—युवयो पक्षबलेन मयापि सुखेन गन्तव्यम् (तुम्हारे पखो के बल पर मैं भी सुखपूर्वक जाऊगा) ।

(ख) भू (होना) धातु से बने रूप भवितव्यम् और भाव्यम् का भाववाच्य के रूप मे प्रयोग होता है और ये आवश्यकता और उच्च सभावना को प्रकट करते ह । विधेय का विशेषण या अन्य सज्ञाशब्द तृतीयान्त कर्ता के अनुकूल ही हो जाते हे । जैसे—तया सनिहितया भवितव्यम् (वह समीप मे ही होगी) । तस्य प्राणिनो बलेन सुमहता भवितव्यम् (उस प्राणी का बल बहुत अधिक होगा) ।

२१० **क्त्वा (त्वा) और ल्यप् (य) (Indeclinable Participle, Gerund)** —ये प्रत्यय प्राय सदा एक कार्य के प्रारम्भ होने से पूव दूसरे कार्य की समाप्ति को सूचित करते है (बहुत कम स्थानो पर दोनो कार्यो का एक साथ होना सूचित किया जाता है) । यह मुख्य काय के व्याकरण-सम्बन्धी या वास्तविक कर्ता को बताता है और सामान्यतया प्रथमा से सबद्ध रहता है, या कमवाच्य मे तृतीया से, किन्तु कभी कभी अन्य कारको से भी सबद्ध रहता है। जैसे—त प्रणम्य स गत (उसको प्रणाम करके, वह गया) । अथ तेनात्मान तस्योपरि प्रक्षिप्य प्राणा परित्यक्ता (इसके बाद उसने अपने आपको उसके ऊपर फेककर अपने प्राण छोड दिए) । (इसमे प्रक्षिप्य का तेन से सबन्ध है) । तस्य दृष्ट्वैव ववृधे कामस्ता चारुहासिनीम् (सुन्दर हास्य वाली उस कन्या को देखते ही उसकी काम-भावना बढ गई) (यहाँ दृष्ट्वा का तस्य से सबन्ध है) ।

(क) धातुज सज्ञा-शब्द के बाद 'कर' या 'करके' के द्वारा प्राय इसका अनुवाद किया जा सकता है । जैसे—मा निर्धन हत्वा किं लभेध्वम् (मुझ गरीब को मारकर क्या पाओगे ?) । इस प्रकार का प्रयोग यह बताता है कि मूलरूप मे यह धातुज सज्ञाशब्द का तृतीयान्त प्रयोग था ।

(ख) इसमे रूप चलने वाले कृत् प्रत्ययो की सभी विशेषताएँ है ग्रान नद-नुसार यह अन्य कृत् प्रत्ययो के तुल्य विभिन्न सबन्धो को प्रकट कर सकना है—तथा इसके बाद क्रिया की निरन्तरता को सूचित करनेवाले आस्ते, तिष्ठति, वतते आदि क्रियापद भी लग सकते है। जैसे—सवपौरान् अतीत्य वर्तते (वह सारे नागरिको से बढकर है, अर्थात् सारे नागरिको का प्रमुख ह)।

(ग) कतिपय क्त्वा और ल्यप् प्रत्ययान्त रूप अर्थ की दृष्टि से उपसर्गों के समकक्ष है (१७९)।

(घ) 'त्वा' का मौलिक तृतीयान्त स्वरूप किम् और अलम् के साथ प्रयोगो मे तथा भाववाच्य प्रयोगो मे अभीष्ट सामान्य कर्ता के साथ अभी तक सुरक्षित है। जैसे—किं तव गोपायित्वा (छिपाने से तुम्हे क्या लाभ होगा ?)। अल ते वन गत्वा (वन जाने से बस करो, अर्थात् वन मे मत जाओ)। पशून् हत्वा यदि स्वर्गे गम्यते (यदि पशुओ को मारने से कोई स्वग को जाता हे नो)।

तुम् प्रत्यय (Infinitive)

२११ यह अतिप्रचलित प्रत्यय काय के लक्षरण को प्रकट करता है और प्रयोजन अर्थ मे जहाँ पर चतुर्थी विभक्ति होती है, उन स्थानो पर इसका प्रयोग हो सकता है (२०० आ)। सामान्य चतुर्थी विभक्ति से इसका अन्तर यह है कि तुम्-प्रत्ययान्त के साथ कर्म मे द्वितीया होती है और चतुर्थ्यन्त के साथ कम मे षष्ठी होती है। जैसे—त जेतु यतते = तस्य जयाय यतने (वह उसको जीतने का प्रयत्न करता है)। यह अपने मूल द्वितीयान्त अथ को सुरक्षित रखे हुए है और यह क्रिया के मुख्य कर्म के रूप मे प्रयुक्त होता है। (जैसे—स्नातु लभते—स्नान को प्राप्त करता है) तथा वाक्य के कर्ता के रूप मे इसका प्रयोग नही हो सकता है। सामान्यतया धातुज सज्ञाशब्द कर्ता के रूप मे इसके स्थान पर प्रयुक्त होते है। जैसे—वर दान न तु प्रतिग्रह (देना अच्छा है, न कि लेना)। दानम् और प्रतिग्रह दातुम् और प्रतिग्रहीतुम् के स्थान पर हैं।

(समय, अवसर आदि के बोधक) सज्ञाशब्दो, (योग्य, समर्थ आदि) विशेषणशब्दो और (समर्थ होना, चाहना, प्रारम्भ करना आदि) क्रियाओ के साथ

तुम् का प्रयोग हो सकता है। जैसे—नाय कालो विलम्बितुम् (यह विलम्ब करने का समय नही है)। अवसरोऽयम् आत्मान प्रकाशयितुम् (यह अपने आपको प्रकट करने का अवसर है)। लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितु क समर्थ (माथे पर अर्थात् भाग्य मे लिखे हुए को कौन मिटा सकता है)। अह त्वा प्रष्टुम् आगत (मै तुमसे पूछने के लिए आया हू)। कथयितु शक्नोति (वह कह सकता है)। इयेष सा कर्तुम् (वह करना चाहती थी)।

(क) सादर प्रश्न करने अर्थ मे (=कृपया आदि) अर्ह् (योग्य होना) धातु के लट् प्र०१ और म०१ के साथ तुम् प्रत्यय का प्रयोग होता है। जैसे—भवान् मा श्रोतुमर्हति (कृपया आप मेरी बात सुनिए)।

(ख) तुम् के म् का लोप हो जाता है, यदि बाद मे काम (चाहना) या मनस् (मन) शब्द होता है। इसके साथ बहुव्रीहि समास (१८९) होता है और प्रयुक्त क्रिया को करने की इच्छा प्रकट की जाती है। जैसे—द्रष्टुकाम (देखने का इच्छुक)। कि वक्तुमना भवान् (आप क्या कहना चाहते है ?)।

(ग) सस्कृत मे तुम् का कर्मवाच्य प्रयोग नही होता है, अत तुमको कर्मवाच्य बनाने के लिए मुख्य क्रिया के कर्मवाच्य का रूप प्रयुक्त किया जाता है। जैसे—कर्तु न युज्यते (यह करने योग्य नही है)। मया नीतिं ग्राहयितु शक्यन्ते (ये मेरे द्वारा नीतिशास्त्र पढाए जा सकते है)। तेन मण्डप कारयितुम् आरब्ध (उसने एक मण्डप बनवाना शुरू किया)।

(घ) कृत्य-प्रत्ययान्त 'शक्य' का प्रयोग दो प्रकार से होता है—(१) कर्ता के अनुसार लिंग, विभक्ति आदि, (२) नपु० एक०। जैसे—न शक्यास्ते (दोषा) समाधातुम् (वे दोष दूर नही किए जा सकते है)। सा न शक्यम् उपेक्षितु कुपिता (उस क्रुद्ध हुई की उपेक्षा नही की जा सकती है)। इसी प्रकार युक्त (योग्य) और न्याय्य (न्यायसगत) शब्दो का भी प्रयोग होता है। जैसे—सेय न्याय्या मया मोचयितु भवत्त (यह उचित है कि मैं उसको तुमसे छुडाऊँ)।

लकार

(Tenses and Moods

वर्तमान काल

(Present)

२१२ सस्कृत मे लट (वतमान काल) का प्रयोग प्राय वैसा ही है, जैसा इग्लिश् मे है। तथापि निम्नलिखित अन्तर उल्लेखनीय है —

(१) वर्णनो मे ऐतिहासिक वतमान का प्रयोग अग्रेजी की अपेक्षा सस्कृत मे अधिक होता है, विशेषरूप से समय की अवधि बताने अर्थ मे (यह कार्य सस्कृत मे लड् लकार नही कर पाता है)। जैसे—दमनक पृच्छति कथमेतत् (दमनक ने पूछा—यह कैसे?), हिरण्यको भोजन कृत्वा बिले स्वपिति (हिरण्यक भोजन करके बिल मे सोता था)।

(क) कभी कभी लट् के साथ पुरा (पहले) का प्रयोग होता है। जैसे—कस्मिश्चिद् वृक्षे पुराऽह वसामि (मै एक पेड पर पहले रहता था)। 'स्म' निपात भी इसी प्रकार बहुत प्रयुक्त होता था (यह प्राचीन सस्कृत मे प्राय 'पुरा' के साथ रहता था, अत अकेले होने पर भी इसमे 'पुरा' का अर्थ शेष रह गया है। जैसे—कस्मिश्चिद् अधिष्ठाने सोमिलको नाम कौलिको वसति स्म (एक स्थान पर सोमिलक नाम का एक जुलाहा रहता था)।

(ख) वतमान के समीपवर्ती भूतकाल को प्रकट करने के लिए भी लट् लकार का प्रयोग होता है। जैसे—अयम् आगच्छामि (मै आता हूँ, अर्थात् मैं अभी आया हूँ)।

(२) लट् लकार वतमान के समीपवर्ती भविष्यत् काल को भी प्रकट करता हे। इस अर्थ मे इसके साथ कभी कभी 'पुरा' (अभी) और यावत् (अभी) का भी प्रयोग होता है। जैसे—तर्हि मुक्त्वा धनुर्गच्छामि (तो मैं अपना धनुष छोडकर जाऊँगा। तद् यावच्छत्रुघ्न प्रेषयामि (तो मैं अभी शत्रुघ्न को भेजूगा)।

(क) प्रश्नवाचक शब्दो के साथ लट् भावी कार्य के विषय मे सन्देह प्रकट करता है। जैसे—किं करोमि (मै क्या करूँ ?)।

(ख) यह तुरन्त करने योग्य 'सलाह' का अभिप्राय भी प्रकट करना है। जैसे—तर्हि गृहमेव प्रविशाम (तो हम लोग घर मे ही प्रवेश करे)।

भूतार्थक लकार (Past Tenses)

२१३ भूतार्थक कृत प्रत्यय त और तवत् (तथा ऐतिहासिक वर्तमान) के अतिरिक्त तीन लकार लङ्, लिट् और लुङ् ऐतिहासिक या परोक्ष भूत अर्थ को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त होते है। ये लकार एक बार घटित, अनेक बार घटित और निरन्तर चालू, सभी प्रकार की घटनाओ को समान रूप से प्रकट करते है। इन लकारो का बिना भेद-भाव के प्रयोग मिलता है।

(क) **लिट् लकार** का प्रयोग मुख्यतया परोक्ष तथ्यो के लिए होता है, जिनका अनुभव वक्ता को नही है। अत म० पु० १ और उ० पु० १ के प्रयोग बहुत कम मिलते है।

(ख) **लङ् लकार**—ऐतिहासिक भूत के वर्णन के अतिरिक्त स्वय दृष्ट या अनुभूत भूतकालिक तथ्यो का भी वर्णन करता है।

(ग) **लुङ् लकार**—(तथा त और तवत् कृत् प्रत्यय) की विशेषता यह है कि यह पूर्ण भूत के साथ ही वर्तमान काल मे उसकी समाप्ति बताता है, अत सवादो के लिए अधिक उपयुक्त है। जैसे—अभूत् सम्पादितस्वादुफलो मे मनोरथ (मेरे मनोरथ को स्वादिष्ट फल मिल गया है)। तुभ्य मया राज्यम् अदायि (मैंने तुम्हे राज्य दे दिया है)। त दृष्टवानस्मि (मैंने उसे देखा है)।

(घ) 'मा' के साथ लुङ् (लङ् का बहुत कम) का अडागम (अ) के बिना लोट् लकार के अर्थ मे प्रयोग होता है। (नि० २१५ ड और १८०)।

(ङ) सस्कृत मे Pluperfect लकार नही है, अत इसका अभिप्राय (जो कि प्रसगानुसार ज्ञेय होता है) अन्य भूतकालिक लकारो से, क्त्वा प्रत्यय से या कभी-कभी सहायक क्रिया-रहित त या तवत् प्रत्ययान्त रूपो से प्रकट किया जाता है।

भविष्यत् (Future)

२१४ लृट् सामान्य भविष्यत् के लिए प्रयुक्त होता है। यह किसी भी भविष्यत् कालिक कार्य के लिए प्रयुक्त हो सकता है। लुट् लकार, जो कि अपेक्षाकृत बहुत कम प्रयुक्त होता है, सुदूर भविष्यत् के लिए प्रयुक्त होता है। अत ये दोनो लकार किसी भी वर्णन मे एक साथ आ सकते हैं और एक दूसरे से बदल कर प्रयुक्त हो सकते है।

(क) यदि लृट् के साथ लोट् का प्रयोग भी है तो लृट् कभी-कभी आज्ञा अर्थ को सूचित करता है। जैसे—भद्रे यास्यसि मम तावद् अर्थित्व श्रूयताम् (प्रिये, जाती हो जाओ, परन्तु मेरी प्रार्थना सुनती जाओ)।

आज्ञा अर्थ (Imperative)

२१५ सामान्य आज्ञा या उपदेश अर्थ के अतिरिक्त इस लकार के कुछ विशेष प्रयोग भी हैं।

(क) उत्तम पुरुष का अनुवाद 'चाहिए' या 'गा' के द्वारा करना चाहिए। यह प्राचीन लेट् लकार का अवशेष है। जैसे—दीव्यावेत्यब्रवीद् भ्राता (उसके भाई ने कहा—हमे जुआ खेलना चाहिए)। अह करवाणि (मैं करूंगा)।

(ख) कर्तृवाच्य म० पु० के स्थान पर कर्मवाच्य प्र० पु० १ का प्रयोग सामान्यतया सादर अनुरोध मे होता हैं। जैसे—देव श्रूयताम् (श्रीमन्, आप सुनिए!) (नि० २११ क)।

(ग) विधिलिङ् और आशीर्लिङ् के स्थान पर आशीर्वाद या शुभकामना प्रकट करने मे लोट् लकार भी होता है। जैसे—चिर जीव (चिरकाल तक जीवित रहो)। शिवास्ते पन्थान सन्तु (आपके मार्ग प्रशस्त हो)।

(घ) लोट् लकार सभावना या सन्देह अर्थ को प्रकट करता है, विशेषरूप से प्रश्नवाचक शब्दो के साथ। जैसे—विष भवतु मा वाऽस्तु फटाटोपो भयकर (विष हो या न हो, सर्प का फन फैलाना भयकर होता है)। प्रत्येतु कस्तद् भुवि (पृथ्वी पर कौन इस बात पर विश्वास करेगा ?)। किमधुना करवाम (हमें अब क्या करना चाहिए ?)

(ङ) निषेधाथक 'मा' के साथ लोट् का प्रयोग दुर्लभ है। सामान्यतया

इसके स्थान पर अडागम (अ)-रहित लुङ् लकार हो जाता है (२१३ घ), या न के साथ विधिलिङ् हो जाता है, या अलम् और कृतम् के साथ तृतीया विभक्ति हो जाती है (१८०) ।

विधिलिङ् (optative or Potential)

२१६ विधिलिङ् अपने निर्धारित अर्थों के अतिरिक्त कुछ अन्य अर्थों को भी प्रकट करता है, जो लेट् लकार (जो अब सस्कृत मे लुप्त है) के द्वारा प्रकट किए जाते थे ।

(१) **मुख्य वाक्यो मे**—यह निम्नलिखित अर्थों को प्रकट करता है —

(क) इच्छा (प्राय 'अपि' निपात के साथ प्रयुक्त) —जैसे—अपि पश्येय-मिह राघवम् (क्या मैं राम को यहाँ देख सकता हूँ ?) ।

(ख) सभावना या सन्देह —जैसे—कदाचिद् गोशब्देन बुध्येत (सभव है कि वह गायो की आवाज से जाग जाए) । पश्येयु क्षितिपतयश्चारदृष्ट्या (राजा लोग दूतो की दृष्टि से देख सकते है) । एक हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता (धनुर्धारी के द्वारा छोडा गया बाण एक व्यक्ति को मार भी सकता है, नही भी) ।

(ग) सभावना । इस अर्थ मे यह भविष्यत् के समकक्ष होता है । जैसे—इय कन्या नात्र तिष्ठेत् (सभव है कि यह कन्या यहाँ न रुके) ।

(घ) उपदेश या शिक्षा । जैसे—त्वमेव कुर्या (तुम्हे ऐसा करना चाहिए)। आपदर्थ धन रक्षेत् (आपत्ति के समय के लिए धन बचाकर रखना चाहिए) ।

(२) **आश्रित उपवाक्यो मे**—विधिलिङ् का प्रयोग निम्नलिखित रूप से होता है —

(क) सामान्य सबद्ध उपवाक्य के रूप मे । जैसे—कालातिक्रमण वृत्तेर्यो न कुर्वीत भूपति (जो राजा वेतन देने मे समय का उल्लघन नही करता है) ।

(ख) अन्तिम उपवाक्यो मे ('इसलिए कि') । जैसे—आदिश मे देश यत्र वसेयम् (मुझे वह स्थान बताइए, जहाँ मैं रह सकू) ।

(ग) परिणामात्मक उपवाक्य ('जिससे कि') जैसे—स भारो भतव्यो यो नर नावसादयेत् (आदमी को उतना ही बोझ उठाना चाहिए, जितना उसे नष्ट न करदे) ।

(घ) हेतु-हेतुमद् भाव-बोधक उपवाक्य। जैसे—यदि न स्यान्नरपतिर्विप्लवेत नौरिव प्रजा (यदि राजा न हो तो राज्य जहाज के तुल्य डूब जाएगा)।

आशीर्लिङ् (Benedictive or Precative)

२१७ यह लकार बहुत कम मिलता हे (१५०)। यह लुङ् का ही एक भेद मानना चाहिए। यह आशीर्वाद अर्थ मे ही प्रयुक्त होता है। उत्तमपुरुष मे यह वक्ता की इच्छा को प्रकट करता है। जैसे—वीर-प्रसवा भूया (तुम वीर सन्तान को जन्म देने वाली होओ)। कृतार्थो भूयासम् (मै सफल होऊँ)। इस अर्थ मे लोट् लकार का भी प्रयोग होता है (२१५ ग)। थोडे से स्थानो पर अर्थ की ष्टि से आशीर्लिङ् और लोट् या विधिलिङ् मे स्पष्ट अन्तर प्रतीत नही होता है। जैसे—इद वचो ब्रूयास्त (तुम लोग यह वचन कहो)। नहि प्रपश्यामि ममापनुद्याद् यच्छोकम् (मैं ऐसी कोई चीज नही देखता हूँ जो मेरे शोक को दूर कर सके)।

लृङ् (Conditional)

२१८ यह लकार हेतु (कारण) और हेतुमत् (काय) अर्थ को बताता है। हेतु-हेतुमद्भाव अर्थ मे यह लकार होता है। प्रथमपद मे कोई अतीत (भूतकालिक) कारण बताया जाता है—और द्वितीय पद मे उसका कार्य बताया जाता है। दोनो पदो का कार्यकारण सबन्ध होता है। दोनो ही पदो मे लृङ् लकार का प्रयोग होता है। यह लेटिन और इग्लिश् के Pluperfect (conditional) subjunctive और ग्रीक के Aorist indicative के समकक्ष है। जैसे—सुवृष्टिश्चेदभविष्यद् दुर्भिक्ष नाभविष्यत् (यदि अच्छी वर्षा होती तो दुर्भिक्ष न होता)। यदि प्रथम हेतु-वाक्य मे विधिलिङ् हो और द्वितीय हेतुमद् वाक्य मे लृङ् हो तो सभावनामूलक भूतकालिक अर्थ होगा। जैसे—यदि न प्रणयेद् राजा दण्ड शूले मत्स्यानिवापक्ष्यन् दुर्बलान् बलवत्तरा (यदि राजा दण्डविधान ठीक से न करे तो बलवान् दुर्बलो को इसी प्रकार भून देगे, जैसे मछली को काँटे पर भूना जाता है)।

परिशिष्ट १

धातुसूची

जहाँ पर धातुओ के सभी लकारो आदि के रूप दिए गए है, वहाँ पर उनका क्रम निम्नलिखित है —लट् (Present), लोट् (Imperative), विधिलिङ् (Optative), लिट् (Perfect), लुङ् (Aorist), लृट् (Future), कर्मवाच्य या भाववाच्य (Passive)—लट् (Present), लुङ् (Aorist), क्त (त)(Participle), क्त्वा (त्वा) या ल्यप् (य) (Gerund), तुमुन् (तुम्) (Infinitive), णिच् (causative), लुङ् (Aorist), सन् (Desiderative), यङ् या यङ्लुक् (Intensive)

धातुओ के बाद दिए गए अक गण-सूचक है, अर्थात् भ्वादिगण आदि १० गणो मे से धातु किस गण की है। प० का अभिप्राय है कि धातु के रूप परस्मैपद मे ही चलते है। आ० का अभिप्राय है कि धातु के रूप आत्मनेपद मे ही चलते है। उ०=उभयपदी, दोनो पदो मे रूप चलते है।

अञ्च् (झुकना)—१ प०, लट्—अञ्चति, कर्म० अच्यते, क्त—अञ्चित, णिच्—अञ्चयति।

अञ्ज् (लेप करना)—७ प०, लट्—अनक्ति, लङ्—आनक्, लोट्—अनक्तु, विधि० अञ्ज्यात्, कर्म० अज्यते, क्त—अक्त, णिच्—अञ्जयति।

अद् (खाना)—२प०, लट्—अत्ति, अदन्ति, अत्सि, अद्मि। लङ्—आदत्, आदन्, आद, आदम्। लोट्—अत्तु, अदन्तु, अद्धि, अदानि। विधि०—अद्यात्। लृट्—अत्स्यति। कर्म०—अद्यते। क्त—जग्ध (अन्न—नपु० अन्न)। क्त्वा—जग्ध्वा। तुम्—अत्तुम्। णिच्—आदयति।

अन् (साँस लेना)—२ प०, लट्—अनिति। लङ्—आनीत्—आनत्, आनी—आन, आनम्। लोट्—अनितु, अनिहि, अनानि। विधि०—अन्यात्। णिच्—आनयति।

अश् (प्राप्त करना)—५ उ०, लट्—अश्नोति, अश्नुते। लङ्—आ० आश्नुत, आश्नुथा, आश्नुवि। लङ्—अश्नुताम्, अश्नुष्व, अश्नवै। विधि०—अश्नुवीत। लिट्—आनश, आनशे।

अश् (खाना)—९ प०, लट्—अश्नाति। लोट्—अश्नातु, अशान, अश्नानि। विधि०—अश्नीयात्। लिट—आश। लुङ्—आशीत्। लृट—अशिष्यति। कर्म०—अश्यते। क्त—अशित। क्त्वा—अशित्वा। तुम्—अशितुम्। णिच्—आशयति। सन्—अशिशिषति।

अस् (होना)—२ प०, लट्—अस्ति, स्त, सन्ति, असि, स्थ, स्थ, अस्मि, स्व, स्म। लङ्—आसीत्, आस्ताम्, आसन् आसी, आस्तम्, आस्त, आसम्, आस्व, आस्म। लोट्—अस्तु, स्ताम्, सन्तु, एधि, स्तम्, स्त, असानि, असाव, असाम। विधि०—स्यात्, स्याताम्, स्यु, स्या, स्यातम्, स्यात, स्याम्, स्याव, स्याम। लिट्—आस, आसतु, आसु, आसिथ, आसथु, आस, आस, आसिव, आसिम।

अस् (फेंकना)—४ प०, लट्—अस्यति। लिट्—आस, आसिथ आदि, अस् (होना) के तुल्य। लुङ—आस्यत्। लृट्—असिष्यति। कर्म०—अस्यते, लुङ्—आसि। क्त—अस्त। णिच्—आसयति।

आप् (पाना)—५ प०, लट्—आप्नोति। लङ्—आप्नोत्। लोट्—आप्नोतु, आप्नुहि, आप्नवानि। विधि० आप्नुयात्। लिट्—आप। लुङ्—आपत्। लृट्—आप्स्यति। कम०—आप्यते। क्त—आप्न। क्त्वा—आप्त्वा, ०आप्य। तुम्—आप्तुम्। णिच्—आपयति। सन्—ईप्सति।

आस् (बैठना)—२ आ०, लट्—आस्ते। लङ्—आस्त लोट्—आस्ताम्, विधि० आसीत। लिट्—आसाचक्रे। लृट्—आसिष्यते। कर्म०—आस्यते। क्त—आसित। शानच्—आसीन। तुम्—आसितुम्।

इ (जाना)—२ प०, लट्—एति, यन्ति, एषि, एमि, इव। लङ्—ऐत्, आयन्, ऐ, आयम्, ऐव। लोट्—एतु, यन्तु, इहि, अयानि—अयाव। विधि० —इयात्। लिट्—इयाय, ईयु, इयेथ, इयाय, ईयिव। लृट्—एष्यति। लुट् एता। कर्म० ईयते। क्त—इत। क्त्वा—इत्वा, ०इत्य। तुम्—एतुम्। णिच्—आययति।

अधी (अधि+इ) (पढना)—२ आ०, लट्—अधीते। लङ्—अध्यैत, अध्यैयाताम्, अध्यैयत। लोट्—अधीताम्, अधीयाताम्, अधीयताम्, अधीष्व, अधीयाथाम्, अधीध्वम्, अध्ययै, अध्ययावहै, अध्ययामहै। विधि०—अधीयीत। लुङ्—अध्यैष्ट, अध्यैषाताम्, अध्यैषत। लृट्—अध्येष्यते। कर्म०—अधीयते। क्त—अधीत। णिच्—अध्यापयति।

इध्, इन्ध् (जलाना)—७ आ०, लट्—इन्द्धे, इन्धते। लङ्—ऐन्ध। लोट्—इन्धाम्, इन्त्स्व, इनधै। विधि०—इन्धीत। लृट्—इन्धिष्यते। कर्म० इध्यते। क्त—इद्ध।

इष् (चाहना)—६ प०, लट्—इच्छति। लङ्—ऐच्छत्। लिट्—इयेष, ईषु, इयेषिथ, इयेष, ईषिव। लुङ्—ऐषीन्। लृट् एषिष्यति। कर्म० इष्यते। क्त—इष्ट। तुम्—एष्टुम्। णिच्—एषयति।

ईक्ष् (देखना)—१ आ०, लट्—ईक्षते। लङ्—ऐक्षत। लिट्—ईक्षाचक्रे। लुङ्—ऐक्षिष्ट। लृट्—ईक्षिष्यते। कर्म० ईक्ष्यते, लुङ्—ऐक्षि। क्त—ईक्षित। तुम्—ईक्षितुम्। णिच्—ईक्षयति।

उष् (जलाना)—१ प०, लट्—ओषति। लङ्—औषत्। लुङ्—औषीत्। कम० उष्यते। क्त—उष्ट।

ऋ (जाना)—६ प०, लट्—ऋच्छति। लङ्—आर्च्छत्। लिट्—आर, आरिथ, आर, आरिव। क्त—ऋत। णिच्—अर्पयति।

एध् (बढना)—१ आ०, लट्—एधते। लङ्—ऐधत। लोट्—एधताम्। विधि० एधेत। लिट्—एधामास। एधित। एधितुम्। एधयति। सन्—एदिधिषते।

कम् (चाहना, प्रेम करना)—आ०, लट्—प्रयोग नहीं होता। लिट्—चकमे, कामयाचक्रे। लृट्—कामयिष्यते। क्त—कान्त। णिच्—कामयते।

काश् (चमकना)—१ आ०, काशते। चकाशे। काशित। काशयति।

कृ (करना)—८ उ०, लट्—करोति, कुरुतः, कुर्वन्ति, करोषि, कुरुथः, कुरुथ, करोमि, कुर्वः, कुर्मः। लङ्—अकरोत्, अकुर्वन्, अकरोः, अकरवम्, अकुर्व। लोट्—करोतु, कुर्वन्तु, कुरु, करवाणि, करवाव। विधि० कुर्यात्। लिट्—चकार (१३८)। लुङ्—अकार्षीत्, अकार्ष्टाम्, अकार्षुः, अकार्षीः,

अकाष्टम्, अकार्ष्ट, अकार्षम्, अकाष्व, अकार्ष्म। लृट्—करिष्यति। लुट्—कर्ता। आत्मने० लट्—कुरुते, कुर्वते, कुरुषे, कुर्वे, कुर्वहे। लङ्—अकुरुत, अकुर्वत, अकुरुथा, अकुर्वि, अकुर्वहि। लोट्—कुरुताम्, कुर्वताम्, कुरुष्व, करवै, करवावहे विधि० कुर्वीत। लिट्—चक्रे (१३८)। लुङ—अकृत, अकृषत, अकृथा, अकृषि, अकृष्वहि। लृट्—करिष्यते। कर्म०—क्रियते, लुङ् अकारि। क्त—कृत। क्त्वा—कृत्वा, ० कृत्य। तुम्—कर्तुम्। णिच्—कारयति, लुङ्—अचीकरन्। सन्—चिकीर्षति।

कृन् (काटना),—६ प०, लट्—कृन्तति। लिट्—चकर्त। लृट्—कर्तिष्यति। कर्म० कृत्यते। क्त—कृत्त। णिच्—कर्तयति। सन्—चिकर्तिषति।

कृष् (खींचना)—१ प० कर्षति। (जोतना)—६ प०, कृषति। लिट् चकर्ष, चकर्षिथ, चकर्ष, चकर्षिव। लृट्—क्रक्ष्यति। कर्म० कृष्यते। क्त—कृष्ट। क्त्वा—कृष्ट्वा,० कृष्य। तुम्—क्रष्टुम्। णिच्—कर्षयति।

कॄ (फैलाना)—६ प०, किरति। लिट्—चकार। लृट्—करिष्यति। कर्म० कीर्यते। क्त—कीर्ण। ल्यप्—०कीर्य।

क्लृप् (समर्थ होना)—१ आ०, कल्पते। लिट्—चक्लृपे। लृट्—कल्पिष्यते। क्त—क्लृप्त। णिच्—कल्पयति, लुङ्—अचीक्लृपत्।

क्रम् (चलना)—१ उ०, क्रामति, क्रमते। लिट्—चक्राम, चक्रमे। लुङ् अक्रमीत्। लृट्—क्रमिष्यति०, ०ते। कर्म० क्रम्यते। क्त—क्रान्त। क्त्वा—क्रान्त्वा, ०क्रम्य। णिच—क्रमयति, क्रामयति। सन्—चिक्रमिषति। यङ्—चङ्क्रम्यते, चङ्क्रमीति।

क्री (खरीदना)—६ उ०, क्रीणाति, क्रीणीते (१०२ मे क्री धातु)। लिट्—चिक्राय। लृट्—क्रेष्यति,—ते। कर्म०—क्रीयते। क्रीत। क्रीत्वा० क्रीय। तुम्—क्रेतुम्। सन्—चिक्रीषते।

क्षन् (हिंसा करना)—८ उ०, क्षणोति, क्षणुते। क्त—क्षत।

क्षि (नष्ट करना)—५ प०—क्षिणोति। कर्म० क्षीयते। क्त—क्षित। णिच्—क्षययति, क्षपयति।

क्षिप् (फेंकना)—६ उ०—क्षिपति, ०ते। लोट्—क्षिपतु, क्षिपाणि, क्षिपताम्, क्षिपै। लिट्—चिक्षेप, चिक्षिपे। लृट्—क्षेप्स्यति, ०ते। कर्म० क्षिप्यते।

क्त—क्षिप्त। क्त्वा—क्षिप्त्वा—,०क्षिप्य। तुम्—क्षेप्तुम्। णिच्—क्षेपयति। सन्—चिक्षिप्सति।

क्षुभ् (क्षुब्ध होना)—४ उ०, लट्—क्षुभ्यति,—ते। लिट्—चुक्षोभ, चुक्षुभे। क्त—क्षुब्ध, क्षुभित। णिच्—क्षोभयति,—ते।

खन् (खोदना)—१ उ०, लट्—खनति,—ते। लिट्—चखान, चखनु। लृट्—खनिष्यति। कर्म० खन्यते, खायते, क्त—खात। क्त्वा—खात्वा, खनित्वा, ०खाय। तुम्—खनितुम्। णिच्—खानयति।

खाद् (खाना)—१ प०, लट्—खादति। लिट्—चखाद। लृट्—खादिष्यति। कम० खाद्यते। क्त—खादित। णिच्—खादयति। सन्—चिखादिषनि।

ख्या (कहना)—२ प०, लट्—ख्याति। लोट्—ख्यातु, ख्याहि। लिट—चख्यौ, चख्यु। लुङ्—अख्यत्। लृट—ख्यास्यति। कर्म० ख्यायते। ख्यात। ०ख्याय। ख्यातुम्। णिच्—ख्यापयति,—ते। सन्—चिख्यासति।

गद् (कहना)—१ प०, गदति। लिट्—जगाद। गदिष्यति। गद्यते। गदित। गदितुम्। णिच्—गादयति। सन्—जिगदिषति। यङ्—जागद्यते।

गम् (जाना)—१ प०, गच्छति। जगाम (१३८, ७)। लुङ्—अगमत्। लृट्—गमिष्यति। लुट्—गन्ता। कर्म० गम्यते। क्त—गत। त्वा—गत्वा, ०गम्य, ०गत्य। तुम्—गन्तुम्। णिच्—गमयति। सन्—जिगमिषति। यङ्—जङ्गम्यते, जङ्गन्ति।

गाह् (घुसना)—१ आ०, गाहते। लिट्—जगाहे। लृट्—गाहिष्यते। कर्म० गाह्यते। क्त—गाढ, गाहित। ल्यप्—० गाह्य। णिच्—गाहयति।

गुह् (छिपाना)—१ उ०, गूहति,—ते। लिट्—जुगूह। लुङ अघुक्षत्। कर्म० गुह्यते। क्त—गूढ। ल्यप्—०गुह्य। तुम्—गूहितुम्। णिच्—गूहयति।

गै (गाना)—१उ०, गायति, ०ते। लिट्—जगौ, जगे। लुङ—अगासीत्। लृट्—गास्यति। कर्म० गीयते। क्त—गीत। क्त्वा—गीत्वा, ०गाय। गातुम्। णिच्—गापयति।

ग्रथ्, ग्रन्थ् (बाँधना)—९ प०, ग्रथ्नाति। कर्म० ग्रथ्यते। क्त—ग्रथित। ल्यप्—०ग्रथ्य। णिच्—ग्रथयति, ग्रन्थयति।

ग्रह् (लेना)—९उ०, गृह्णाति, गृह्णीते। लोट्—गृह्णातु, गृहाण। लिट्—

जग्राह, जगृहे। लुङ्—अग्रहीत्, अग्रहीष्ट। लृट्—ग्रहीष्यति, ०ते। लुट्—ग्रहीता। कर्म० गृह्यते। गृहीत। क्त्वा—गृहीत्वा, ०गृह्य। तुम्—ग्रहीतुम्। णिच्—ग्राहयति,० ते, लुङ्—अजिग्रहत्। सन्—जिघृक्षति, ०ते।

ग्लै (खिन्न होना)—१ प०, ग्लायति। क्त—ग्लान। णिच्—ग्लापयति, ग्लपयति।

घुष् (शब्द करना)—१ उ०, घोषति,० ते। कर्म० घुष्यते। क्त—घुष्ट। ल्यप्—०घुष्य। णिच्—घोषयति।

घ्रा (सूंघना)—१ प०, जिघ्रति। लिट्—जघ्रौ। कम० घ्रायते। क्त—घ्रात। णिच्—घ्रापयति।

चक्ष् (कहना)—२ आ०, लट्—चष्टे, चक्षते, चक्षे, चड्ढ्वे, चक्षे, चक्ष्महे। लिट्—चचक्षे। लृट्—चक्ष्यते। ल्यप्—०चक्ष्य। तुम्—चष्टुम्। णिच्—चक्षयति।

चर् (चलना)—१ प०, चरति। लिट्—चचार, प्र०३ चेरु, चचर्थ। लृट्—चरिष्यति। कर्म० चर्यते। चरितुम्। क्त—चरित। क्त्वा—चरित्वा, ल्यप्—०चर्य। णिच्—चारयति, लुङ्—अचीचरत्

चल् (चलना)—१ प०, चलति। लिट्—चचाल, प्र० ३ चेलु। लृट—चलिष्यति। क्त—चलित। तुम्—चलितुम्। णिच्—चलयति, चालयति। सन्—चिचलिषति।

चि (इकट्ठा करना, चुनना)—५उ०, चिनोति, चिनुते। लिट्—चिकाय, चिक्ये। लृट्—चेष्यति, ०ते। लुट्—चेता। कर्म० चीयते। क्त—चित। क्त्वा—चित्वा, ०चित्य। तुम्—चेतुम्। णिच्—चाययते। सन्—चिकीषते, चिचीषति।

चिन्त् (सोचना)—१० प०, चिन्तयति। लिट्—चिन्तयामास। कर्म० चिन्त्यते। क्त—चिन्तित। क्त्वा—चिन्तयित्वा, ०चिन्त्य।

चुर् (चुराना)—१० प०, चोरयति। लिट्—चोरयाचकार। लुङ्—अचुचूरत्। कर्म० चोर्यते। क्त—चोरित।

छिद् (काटना)—७ उ०, छिनत्ति, छिन्दन्ति। लिट्—चिच्छेद, चिच्छिदे। लुङ्—अच्छिदत्, अच्छैत्सीत्। लृट्—छेत्स्यति, ०ते। कर्म० छिद्यते। क्त—छिन्न। क्त्वा—छित्त्वा, ०छिद्य। तुम्—छेत्तुम्। णिच्—छेदयति।

जन् (पैदा होना)—४ आ०, जायते। लिट्—जज्ञे। लुङ्—अजनिष्ट। लृट्—जनिष्यते। लुट्—जनिता। क्त—जात। णिच्—जनयति, ०ते, लुङ्—अजीजनत्। सन्—जिजनिषते।

जागृ (जागना)—२ प० (१३४ अ ४) लट्—जागर्ति, जागृत, जाग्रति। लङ्—अजागः, अजागृताम्, अजागरुः, अजागः, अजागरम्। लोट्—जागर्तु, जागृहि, जागराणि। लिट्—जजागार, जागरामास। लृट्—जागरिष्यति। क्त—जागरित। णिच्—जागरयति।

जि (जीतना)—१ प० (वि और परा के साथ आ०) जयति। लिट्—जिगाय, जिग्यु, जिग्यिव। लुङ्—अजैषीत्। लृट्—जेष्यति। कर्म० जीयते। क्त—जित। क्त्वा—जित्वा०, ०जित्य। तुम्—जेतुम्। णिच्—जापयति। सन्—जिगीषति।

जीव् (जीवित होना)—१ प०, जीवति। लिट्—जिजीव, जिजीवु। लुङ्—अजीवीत्। लृट्—जीविष्यति। कर्म० जीव्यते। क्त—जीवित। ल्यप्—०जीव्य। तुम्—जीवितुम्। णिच्—जीवयति। सन्—जिजीविषति।

जॄ (वृद्ध होना)—४ प०, जीर्यति। लिट्—जजार। कर्म० जीर्यते। क्त—जीर्ण। णिच्—जरयति।

ज्ञा (जानना)—९ उ०, जानाति, जानीते। लिट्—जज्ञौ, जज्ञे। लुङ्—अज्ञासीत्। लृट्—ज्ञास्यति। लुट—ज्ञाता। कर्म० ज्ञायते, लुङ्—अज्ञायि। क्त—ज्ञात। क्त्वा—ज्ञात्वा, ०ज्ञाय। तुम्—ज्ञातुम्। णिच्—ज्ञापयति, ०ते, ज्ञपयति, ०ते। क्त—ज्ञापित, ज्ञप्त। सन्—जिज्ञासते।

तन् (फैलाना)—८ उ०, तनोति, तनुते। लिट्—ततान, तेने। कर्म० तन्यते, तायते। क्त—तत। क्त्वा—तत्वा, ०त्य, ०ताय। णिच्—तानयति।

तप् (तपाना)—१ उ०, तपति०, ०ते, तप्यति, ०ते। लिट्—तताप, तेपे। लृट्—तप्स्यति। कर्म० तप्यते। क्त—तप्त। क्त्वा—तप्त्वा, ०तप्य। तुम्—तप्तुम्। णिच्—तापयति।

तुद् (चोट मारना)—६ उ०, तुदति, ०ते। लिट्—तुतोद। कर्म० तुद्यते। क्त—तुन्न। णिच्—तोदयति।

तृप् (तृप्त होना)—४ प०, तृप्यति। लिट्—ततर्प, ततृपिव। क्त—तृप्त। णिच्—तर्पयति। लुङ्—अतीतृपत्।

तॄ (तैरना, पार करना)—१ प० या ६ आ० तरति, तिरते । लिट्—ततार, तेरु । लुङ—अतार्षीत्, अतारीत् । लृट्—तरिष्यति०, ते । क्त—तीर्ण । क्त्वा—तीर्त्वा, ०तीय । तुम्—तर्तुम्, तरीतुम्, तरितुम् । णिच्—तारयति, ०ते । सन्—तितीर्षति ।

त्यज् (छोडना)—१ उ०, त्यजति, ०ते । लिट्—तत्याज, तत्यजे । लुङ्—अत्याक्षीत् । लृट्—त्यक्ष्यति, ०ते,—त्यजिष्यति, ०ते । कर्म० त्यज्यते । क्त—त्यक्त । त्वा—त्यक्त्वा, ०त्यज्य । णिच्—त्याजयति । सन्—तित्यक्षति ।

त्रस् (काँपना)—१ प०, ४ उ०, त्रसति, त्रस्यति, ०ते । लिट्—तत्रास, तत्रसु, त्रेसु । लृट्—त्रसिष्यति । क्त—त्रस्त । णिच्—त्रासयति ।

त्वर् (शीघ्रता करना)—१आ०, त्वरते । लिट्—तत्वरे । क्त—त्वरित । णिच्—त्वरयति ।

दश् (काटना)—१ प०, दशति । लिट्—ददश । लृट्—दशिष्यति । कर्म०—दश्यते । क्त—दष्ट । त्वा—दष्ट्वा, ०दश्य । णिच् —दशयति ।

दह (जलाना)—१ प०, दहति । लिट्—ददाह, देहिथ—ददग्ध । म० १, लुङ्—अधाक्षीत् । लृट्—धक्ष्यति । कम०—दह्यते । क्त—दग्ध । त्वा—दग्ध्वा, ०दह्य । तुम्—दग्धुम् । णिच् —दाहयति । सन्—दिधक्षति ।

दा (देना)—३ उ०, ददाति, दत्ते । लिट्—ददौ, ददे । लुङ्—अदात्, अदित, प्र० ३ अदिषत । लृट्—दास्यति, ०ते । लुट्—दाता । दीयते । दत्त । त्वा—दत्त्वा, ०दाय । णिच्—दापयति । सन्—दित्सति ।

दिव् (खेलना, जुआ खेलना)—४ प०, दीव्यति । लुङ्—अदेवीत् । लृट्—देविष्यति । क्त—द्यूत । तुम्—देवितुम् । णिच्—देवयति ।

दिश् (बताना, कहना)—६ उ०, दिशति, ०ते । लिट्—दिदेश, दिदिशे । लुङ्—अदिक्षत् । लृट्—देक्ष्यति, ०ते । कर्म०—दिश्यते । क्त—दिष्ट । ल्यप्—०दिश्य । तुम्—देष्टुम् । णिच्—देशयति । सन्—दिदिक्षति ।

दिह् (लीपना)—२ उ०, लट्—देग्धि, दिग्ध, दिहन्ति । धेक्षि, दिग्ध, दिग्ध । देह्मि, दिह्वः, दिह्मः । आ० दिग्धे, दिहाते, दिहते । धिक्षे, दिहाथे, धिग्ध्वे । दिहे, दिह्वहे, दिह्महे । लङ्—अधेक्, अदिग्धाम्, अदिहन् । अधेक्, अदिग्धम्, अदिग्ध । अदेहम्, अदिह्व, अदिह्म । आ० अदिग्ध, अदिहाताम्,

अदिहत। अदिग्धा, अदिहाथाम्, अधिग्ध्वम्। अदिहि, अदिह्वहि, अदिह्महि। लोट्—देग्धु, दिग्धाम्, दिहन्तु। दिग्धि, दिग्धम्, दिग्ध। देहानि, देहाव, देहाम। आ० दिग्धाम्, दिहाताम्, दिहताम्। धिक्ष्व, दिहाथाम्, धिग्ध्वम्। देहै, देहावहै, देहामहै। विधि० दिह्यात्, आ० दिहीत। लिट्—दिदेह, आ० दिदिहे। कर्म० दिह्यते। क्त—दिग्ध। ल्यप्—०दिह्य। णिच्—देहयति।

दुह् (दुहना)—२ उ०, दिह् के तुल्य। लट्—दोग्धि। लङ्—अधोक्। लोट्—दोग्धु। विधि० दुह्यात्। लिट्—दुदोह, दुदुहे। लुङ्—अधुक्षत्, अधुक्षत। लृट्—धोक्ष्यते। कम—दुह्यते। क्त—दुग्ध। त्वा—दुग्ध्वा। तुम्—दोग्धुम्। णिच्—दोहयति, लुङ्—अदूदुहत्। सन्—दुधुक्षति।

दृश् (देखना)—१ प०, पश्यति। लिट्—ददर्श, ददृशु। लुङ्—अद्राक्षीत्, अदर्शत्। लृट्—द्रक्ष्यति। लुट्—द्रष्टा। कर्म०—दृश्यते। क्त—दृष्ट। त्वा—दृष्ट्वा, ०दृश्य। द्रष्टुम्। णिच्—दर्शयति। लुङ्—अदीदृशत्। सन्—दिदृक्षते।

द्युत् (चमकना)—१ आ० द्योतते। लिट्—दिद्युते। लुङ्—अद्युतत्। णिच्—द्योतयति।

द्रु (दौडना)—१ प०, द्रवति। लिट्—दुद्राव, दुद्रोथ, दुद्रुव, उ०२। लुङ्—अदुद्रुवत्। क्त—द्रुत। ०द्रुत्य। तुम्—द्रोतुम्। णिच्—द्रावयति।

द्रुह् (द्रोह करना)—४ प०, द्रुह्यति। लिट्—दुद्रोह, दुद्रोहिथ, दुद्रुहिव, उ० २। लुङ्—अद्रुहत्। क्त—द्रुग्ध।

द्विष् (द्वेष करना)—२ उ०, द्वेष्टि (४ १३२, द्विष् के रूप)। क्त—द्विष्ट। द्वेष्टुम्। द्वेषयति।

धा (रखना)—३ उ०, दधाति, धत्त, दधति। आ० धत्ते, दधाते, दधते। लङ्—अदधात्, अधत्ताम्, अदधु। आ०, अधत्त, अदधाताम्, अदधत। लोट्—दधातु, धत्ताम्, दधतु, धेहि। दधानि। आ० धत्ताम्, दधाताम्, दधताम्, धत्स्व, दधै। विधि० दध्यात्, दधीत। लिट्—दधौ, दधे। लुङ्—अधात्, अधित। लृट्—धास्यति, ०ते। कर्म० धीयते, लुङ्—अधायि। क्त—हित। ल्यप्—०धाय। तुम्—धातुम्। णिच्—धापयति। सन्—धित्सति।

धाव् (दौडना, धोना)—१ उ०, धावति, ०ते। लिट्—दधाव। कर्म० धाव्यते। क्त—धावित (दौडा), क्त—धौत (धोया)। कर्म० धावयति।

धू (हिलाना)—५ उ०, ९ उ, धुनोति, धुनुते , धुनाति, धुनीते । लिट्—दुधाव । लृट्—धविष्यति । कर्म० धूयते । क्त—धूत । णिच्—धूनयति । यङ्—दोधूयते, यङ्लुक्—दोधवीति ।

धृ (धारण करना)—वर्तमान वाले रूप नही होते) । लिट्—दधार, दध्रे । धरिष्यति, ०ते । ध्रियते । धृत । धृत्वा । धर्तुम् । णिच्—धारयति, ०ते, लुङ्—अदीधरत् ।

ध्मा (फूंकना, साँस से फूँककर बजाना) १ प०, धमति । लिट्—दध्मौ । लुङ् अध्मासीत् । कम० धम्यते, ध्मायते । क्त—ध्मात । ल्यप्—०ध्माय । णिच्—ध्मापयति ।

नद् (शब्द करना, अस्पष्ट ध्वनि करना)—१ प० नदति । लिट्—ननाद, नेदतु , नेदु , नेदिथ । क्त—नदित । णिच्—नदयति, नादयति । यङ्—नानद्यते ।

नम् (झुकना)—१ प०, नमति । लिट्—ननाम, नेमतु , नेमु । लुङ्—अनसीत् । नस्यति । कर्म० नम्यते । क्त—नत । त्वा—नत्वा, ०नम्य । तुम्—नमितुम्,नन्तुम् । णिच्—नमयति, नामयति, लुङ्—अनीनमत् । मन्—निनसति ।

नश् (नष्ट होना)—४ प०, नश्यति । लिट्—ननाश, नेशु । लुङ्—अनशन् । लृट्—नशिष्यति, नङ्क्ष्यति । क्त—नष्ट । णिच्—नाशयति, लुङ—अनीनशन् ।

नह् (बाँधना)—४ उ०, नह्यति, ०ते । कर्म० नह्यते । क्त—नद्ध । ल्यप्—०नह्य । णिच् —नाहयति ।

नी (ले जाना)—१ उ०, नयति, ०ते । लिट—निनाय (४ १३८) । लुङ्—अनैषीत् । लृट्—नेष्यति । लुट्—नेता । कर्म० नीयते । क्त—नीत । त्वा—नीत्वा, ०नीय । नेतुम् । णिच्—नाययति । सन्—निनीषति, ०ते । यङ्—नेनीयते ।

नृत् (नाचना)—४ प०, नृत्यति । लिट्—ननर्त, ननृतु । लृट्—नर्तिष्यति । कर्म० नृत्यते । क्त—नृत्त । णिच्—नर्तयति । सन्—निनर्तिषति । यङ्—नरीनृत्यते । यङलुक्—नरीनर्ति ।

पच् (पकाना)—१ उ०, पचति, ०ते । लिट्—पपाच, पेचे । लृट्—

पक्ष्यति । कर्म० पच्यते । क्त—पक्व (विशेषण) । त्वा—पक्त्वा । णिच्—पाचयति । यङ्—पापच्यते ।

पत् (गिरना)—१ प०, पतति । लिट्—पपात, पेतु । लुङ्—अपप्तत् । लृट्—पतिष्यति । क्त—पतित । तुम्—पतितुम् । त्वा—पतित्वा, ०पत्य । णिच्—पातयति । सन्—पित्सति ।

पद् (जाना)—४ आ०, पद्यते । लिट्—पेदे । लुङ्—अपादि । लृट्—पत्स्यते । क्त—पन्न । ल्यप्—०पद्य । तुम्—पत्तुम् । णिच्—पादयते । सन्—पित्सते । यङ—पनीपद्यते ।

पा (पीना)—१ प०, पिबति । लिट्—पपौ, पपु , पपिथ—पपाथ । लुङ्—अपात् । पास्यति । कर्म०—पीयते, लुङ्—अपायि । क्त–पीत । त्वा–पीत्वा, ०पाय । तुम्—पातुम् । णिच्—पाययति । सन्—पिपासति । यङ्—पेपीयते ।

पा (रक्षा करना)—२प०, पाति । लुङ्—अपासीत् । तुम्—पातुम् ।

पुष् (पुष्ट होना)—४ प०, ९प०, पुष्यति, पुष्णाति । लिट्—पुपोष । कर्म० पुष्यते । क्त—पुष्ट । णिच्—पोषयति ।

पू (पवित्र करना)—९ उ०, पुनाति, पुनीते । लिट्—पुपाव, पुपुवे । कर्म० पूयते । क्त—पूत । ल्यप्—०पूय । णिच्—पावयति ।

पृ (पूर्) (भरना)—३ प०, पिपर्ति, पिप्रति । लिट्—(पपार), पुपूरे । कर्म० पूर्यते । क्त—पूर्त, पूर्ण । ल्यप्—०पूर्य । णिच्—पूरयति ।

प्रछ् (पूछना)६प०, पृच्छति । लिट्—पप्रच्छ, पप्रच्छु । लुङ्—अप्राक्षीत्, अप्रष्ट । लृट्—प्रक्ष्यति । कर्म०—पृच्छ्यते । क्त—पृष्ट । त्वा—पृष्ट्वा, ०पृच्छ्य । तुम्—प्रष्टुम् । सन्—पिपृच्छिषति ।

प्री (प्रसन्न करना)–९ उ०, प्रीणाति, प्रीणीते । लुङ्—अप्रैषीत् । क्त—प्रीत । णिच्—प्रीणयति ।

फल् (फलना)—१ प०, फलति । लिट्—पफाल । क्त—फलित, फुल्ल । णिच्—फालयति ।

बन्ध् (बाँधना)—९प०, बध्नाति । लिट्—बबन्ध, बबन्धिथ—बबन्द्ध, बबन्ध । लृट्—भन्त्स्यति । कर्म० बध्यते । क्त—बद्ध । त्वा—बद्ध्वा,०बध्य । तुम्—बन्द्धुम् । णिच्—बन्धयति ।

भुज् (भोगना, उपभोग करना)—७ उ०, भुनक्ति, भुङ्क्ते। लिट्—बुभुजे। लृट्—भोक्ष्यति, ०ते। कर्म० भुज्यते। क्त—भुक्त। त्वा—भुक्त्वा। तुम्—भोक्तुम्। णिच्—भोजयति,०ते। सन्—बुभुक्षते। यङ्—बोभुज्यते। यङ्लुक्—बोभुजीति।

भू (होना)—१ उ०, भवति, ०ते (४ १३२)। बभूव (१३६, ७)। अभूत् (१४८,२)। भविष्यति। भविता (१५२)। भूयते (१५४)। कर्म० लुङ्—अभावि। क्त—भूत। त्वा—भूत्वा, ०भूय। तुम्—भवितुम्। णिच्—भावयति, ०ते। सन्—बुभूषति, ०ते। यङ्लुक्—बोभवीति।

भृ (ले जाना)—३ प० (१ उ० भी भरति, ०ते) बिभर्ति, बिभ्रति। लोट्—बिभर्तु, बिभृहि, बिभराणि। लिट्—बभार, बभर्थ, बभृव, बिभराबभूव। लृट्—भरिष्यति। कर्म० भ्रियते। क्त—भृत। ल्यप्—०भृत्य। तुम्—भर्तुम्। णिच्—भारयति। सन्—बुभूर्षति। यङ्लुक्—बरीभर्ति।

भ्रज्ज् (भूनना)—६ प०, भृज्जति। कर्म० भृज्ज्यते। क्त—भृष्ट। त्वा—भृष्ट्वा। णिच्—भर्ज्जयति।

भ्रम् (घूमना)—४ प०, १ उ०, भ्राम्यति, भ्रमति, ०ते। लिट्—बभ्राम, बभ्रमु—भ्रेमु (१३६)। लृट्—भ्रमिष्यति। क्त—भ्रान्त। त्वा—भ्रान्त्वा, ०भ्रम्य, ०भ्राम्य। तुम्—भ्रमितुम्, भ्रान्तुम्। णिच्—भ्रामयति, भ्रमयति, यङ्—बम्भ्रम्यते, बम्भ्रमीति।

मज्ज् (डूबना)—१ प०, मज्जति। लिट्—ममज्ज। लुङ्—अमाङ्क्षीत्। लृट्—मङ्क्ष्यति। क्त—मग्न। ०मज्ज्य। तुम्—मज्जितुम्। मज्जयति। सन्—मिमङ्क्षति।

मद् (प्रसन्न होना)—४ प०, माद्यति। लुङ्—अमादीत्। क्त—मत्त। णिच्—मादयति, मदयति।

मन् (सोचना)—४ आ०, ८ आ०, मन्यते, मनुते। लिट्—मेने। लुङ्—अमस्त। लृट्—मस्यते। कर्म० मन्यते। क्त—मत। त्वा—मत्वा, ०मन्य, ०मत्य। तुम्—मन्तुम्। णिच—मानयते। सन्—मीमासते।

मन्थ् (मथना)—१ प०, ९ प०, मथति (मन्थति), मथ्नाति। लिट्—ममन्थ, ममन्थिथ। लृट्—मन्थिष्यति। कर्म० मथ्यते। क्त—मथित। ल्यप्—०मथ्य। णिच्—मन्थयति।

मा (मापना)—२ प०, ३ आ०, माति, मिमीते। लिट्—ममौ, ममे। कर्म० मीयते, लुङ्—अमायि। क्त—मित। क्त—मित। त्वा—मित्वा, ०माय। तुम्—मातुम्। णिच्—मापयति। सन्—मित्सति।

मुच् (छोडना)—६ उ०, मुञ्चति, ०ते। लिट्—मुमोच, मुमुचे। लुङ्—अमुचत्, अमुक्त। लृट्—मोक्ष्यति, ०ते। कर्म० मुच्यते। मुक्त। मुक्त्वा, ०मुच्य। मोक्तुम्। णिच्—मोचयति, ते, लुङ्—अमूमुचत्। सन्—मुमुक्षति, मोक्षते।

मुह् (किंकर्तव्यविमूढ होना)—४ प०, मुह्यति। लिट्—मुमोह, मुमोहिथ—मुमोग्ध—मुमोढ। क्त—मुग्ध—मूढ। णिच्—मोहयति। यङ्—मोमुह्यते।

मृ (मरना)—पर०, (वर्तमान के रूप नहीं)। लिट्—ममार, ममर्थ, मम्रिव। लृट्—मरिष्यति। कर्म० म्रियते। क्त—मृत। त्वा—मृत्वा। तुम्—मर्तुम्। णिच—मारयति, लुङ्—अमीमरत्। सन्—मुमूर्षति। यङ् लुक्—मरीमर्ति।

मृज् (स्वच्छ करना)—२ प०, मार्ष्टि, मृष्टः, मृजन्ति। लङ्—अमार्ट्, अमृष्टाम्, अमृजन्। लोट्—मार्ष्टु, मृष्टाम्, मृजन्तु, मृड्ढि, मार्जानि। विधि० मृज्यात्। लिट्—ममार्ज, ममृजु। लुङ्—अमार्जीत्, अमार्क्षीत्, अमृक्षत्। लृट्—मार्क्ष्यति। कर्म० मृज्यते। क्त—मृष्ट। ल्यप्—०मार्ज्य, ०मृज्य। तुम्—मर्ष्टुम्, मार्ष्टुम्, मार्जितुम्। णिच्—मार्जयति। यङ्—मर्मृज्यते।

म्ना (वर्णन करना)—१ प०, मनति। लुङ्—अम्नासीत्। कर्म० म्नायते। क्त—म्नात।

म्लै (मुरझाना)—१ प०, म्लायति। लिट्—मम्लौ। लुङ्—अम्लासीत्। क्त—म्लान। णिच्—म्लापयति, म्लपयति।

यज (पूजा करना)—१ उ०, यजति, ०ते। लिट्—इयाज, ईजे। लुङ्—अयाक्षीत्, अयष्ट। लृट्—यक्ष्यति। कर्म० इज्यते। क्त—इष्ट। त्वा—इष्ट्वा। तुम्—यष्टुम्। णिच्—याजयति। सन्—यियक्षति।

यम् (रोकना)—१ प०, यच्छति। लिट्—ययाम, येमु, ययन्थ। लृट्—यमिष्यति। कर्म० यम्यते। क्त—यत। त्वा—यत्वा, यम्य०। तुम्—यन्तुम्, यमितुम्। णिच्—यमयति, यामयति।

या (जाना)—२ प०, याति। लङ्—अयात्, अयान्—अयु। लोट्—यातु। विधि० यायात्। लिट्—ययौ। लुङ्—अयासीत्। लृट्—यास्यति। लुट्—याता। कर्म० यायते। क्त—यात। त्वा—यात्वा, ०याय। तुम्—यातुम्। णिच्—यापयति। सन्—यियासति।

यु (मिलाना)—२ प०, यौति, युवन्ति। लङ्—अयौत्, अयुवन्। लोट्—यौतु, युवन्तु। विधि० युयात्। क्त—युत।

युज् (मिलाना)—७ उ०, युनक्ति, युङ्क्ते। लिट्—युयोज, युयुजे। लुङ्—अयुजत्, अयुक्त। लृट्—योक्ष्यति, ०ते। कर्म० युज्यते। युक्त। युक्त्वा, ०युज्य। योक्तुम्। णिच्—योजयति, ०ते, लुङ्—अयूयुजत्। सन्—युयुक्षति।

रक्ष् (रक्षा करना)—१ उ०, रक्षति, ०ते। लिट्—ररक्ष। लुङ्—अरक्षीत्। रक्षिष्यति, रक्षिता। कम० रक्ष्यते। क्त—रक्षित। ल्यप्—०रक्ष्य। तुम्—रक्षितुम्। णिच्—रक्षयति।

रञ्ज् (रँगना)—४ प०, रज्यति। कर्म० रज्यते। क्त—रक्त। ल्यप्—०रज्य। णिच्—रञ्जयति।

रभ् (पाना) (आ—रभ्—आरम्भ करना)—१ आ०, रभते। लिट्—रेभे। लृट्—रप्स्यते। कम० रभ्यते, लुङ्—अरम्भि। क्त—रब्ध। ल्यप्—०रभ्य। तुम्—रब्धुम्। णिच्—रम्भयति। सन्—रिप्सते।

रम् (क्रीडा करना)—१ आ० (सकर्मक होने पर परस्मैपदी है), रमते। लिट्—रेमे। लुङ्—अरसीत्। लृट्—रस्यते। तुम्—रन्तुम्। क्त—रत। त्वा—रत्वा, ०रम्य। कर्म० रम्यते। णिच्—रमयति। सन्—रिरसते।

राज् (चमकना)—१ उ०, राजति, ०ते। रराज, रेजे। राजयति।

रु (चिल्लाना)—२ प०, रौति, रुत, रुवन्ति। लिट्—रुराव, रुरुवु। क्त—रुत। तुम्—रोतुम्। णिच्—रावयति, लुङ्—अरूरुवत्। यङ्—रोरूयते, रोरवीति।

रुद् (रोना)—२प०, रोदिति, रुदन्ति। लङ्—अरोदीत्—अरोदत्, अरुदन्, अरोदी—अरोद, अरोदम्, अरुदिव। लोट्—रोदितु, रुदन्तु, रुदिहि, रोदानि, रोदाव। विधि० रुद्यात्। लिट्—रुरोद। लुङ्—अरुदत्। लृट्—रोदि-

ष्यति । कम० रुद्यते । क्त—रुदित । त्वा—रुदित्वा, ०रुद्य । तुम्—रोदितुम् । णिच्—रोदयति । सन्—रुरुदिषति । रोरुद्यते ।

रुध् (रोकना)—७ उ०, रुणद्धि, रुन्द्धे (१३२, रुध्) । लिट्—रुरोध, रुरुधे । लुङ्—अरुधत्—अरौत्सीत्, अरुद्ध । लृट्—रोत्स्यति । कम० रुध्यते । क्त—रुद्ध । त्वा—रुद्ध्वा, ०रुध्य । तुम्—रोद्धुम् । णिच्—रोधयति । सन्—रुरुत्सति ।

रुह् (उगना, उत्पन्न होना)—१ प०, रोहति । लिट्—रुरोह । लुङ्—अरुक्षत्—अरुहत् । लृट्—रोक्ष्यति । कर्म० रुह्यते । क्त—रूढ । ल्यप्—०रुह्य । तुम्—रोढुम् । णिच्—रोहयति, रोपयति । सन्—रुरुक्षति ।

लभ् (पाना)—१ आ०, लभते । लिट्—लेभे । लृट्—लप्स्यते । कर्म० लभ्यते । क्त—लब्ध । त्वा—लब्ध्वा, ०लभ्य । णिच्—लम्भयति । सन्—लिप्सते ।

लिख् (लिखना)—६ प०, लिखति । लिट्—लिलेख । कम० लिख्यते । क्त—लिखित । त्वा—लिखित्वा, ०लिख्य । णिच्—लेखयति ।

लू (काटना)—९ उ०, लुनाति, लुनीते । लिट्—लुलाव, लुलुवे । क्त—लून ।

वच् (कहना)—२ प०, वक्ति, वक्त, (वदन्ति) । वक्षि, वक्थ, वक्थ । वच्मि, वच्व, वच्म । लङ्—अवक्, अवक्ताम्, (अवदन्) । अवक्, अवक्तम्, अवक्त । अवचम्, अवच्व, अवच्म । लोट्—वक्तु, वग्धि, वचानि, वचाव । विधि० वच्यात् । लिट्—उवाच, ऊचु । लुङ्—अवोचत् । लृट्—वक्ष्यति । लुट्—वक्ता । कम० उच्यते, लुङ्—अवाचि । उक्त । उक्त्वा, ०उच्य । वक्तुम् । णिच्—वाचयति । सन्—विवक्षति ।

वद् (कहना)—१ प०, वदति । लिट् उवाद, ऊदु । लुङ्—अवादीत् । लृट्—वदिष्यति । कर्म० उद्यते । क्त—उदित । उदित्वा, ०उद्य । तुम्—वदितुम् । णिच्—वादयति । सन्—विवदिषति ।

वप् (बोना)—१ प०, वपति । लिट्—उवाप, ऊपु, उवपिथ—उवप्थ । लुङ्—अवाप्सीत् । लृट्—वप्स्यति, वपिष्यति । कर्म० उप्यते । क्त—उप्त । णिच्—वापयति ।

वश् (चाहना)—२ प०, वष्टि, उशन्ति, वक्षि, वश्मि, उश्व । लङ्—

अवट्, अवट्, अवशम्, औश्व । लोट्—वष्टु, उड्ढि, वशानि । विधि० उश्यात् । णिच्—वशयति ।

वस् (रहना)—१ प०, वसति । लिट्—उवास, ऊषु । लुङ्—अवात्सीत् । लृट्—वत्स्यति । कर्म० उष्यते । क्त—उषित । त्वा—उषित्वा, ०उष्य । तुम्—वस्तुम् । णिच्—वासयति ।

वस् (पहनना)—२ आ०, वस्ते । लिट्—ववसे । क्त—वसित । त्वा, वसित्वा, ०वस्य । तुम्—वसितुम् । णिच्—वासयति ।

वह् (ढोना)—१ उ०, वहति, ०ते । लिट—उवाह, ऊहु । लुङ्—अवाक्षीत् । लृट्—वक्ष्यति । कर्म० उह्यते, लुङ्—अवाहि । क्त—ऊढ । ल्यप्—०उह्य । तुम्—वोढुम् । णिच्—वाहयति । यङ्लुक्—वावहीति ।

विद् (जानना)—२ प०, वेत्ति, वित्त, विदन्ति । वेत्सि, वित्थ, वित्थ । वेद्मि, विद्व, विद्म । लङ्—अवेत्, अवित्ताम्, अविदन्—अविदु । अवे—अवेत्, अवित्तम्, अवित्त । अवेदम्, अविद्व, अविद्म । लोट—वेत्तु वित्ताम्, विदन्तु । विद्धि, वित्तम्, वित्त । वेदानि, वेदाव, वेदाम । विधि०-- विद्यात् । लिट—विवेद, विदाचकार । लुङ्—अवेदीत् । लृट्—वेदिष्यति । कर्म० विद्यते । क्त—विदित । त्वा—विदित्वा । तुम्—वेदितुम् । वेदयति । विविदिषति । लट् अर्थ मे लिट्—वेद, विदतु, विदु । वेत्थ, विदथु, विद । वेद, विद्व, विद्म (१३९ ३) ।

विद् (पाना)—६ उ०, विन्दति, ०ते । विवेद, विविदे । लुङ्—अविदत्, अविदत । वेत्स्यति, ०ते । कर्म० विद्यते (है) । क्त—वित्त—विन्न । त्वा—वित्त्वा, ०विद्य । तुम्—वेत्तुम् । णिच्—वेदयति । सन्—विवित्सति ।

विश् (प्रवेश करना)—६ प०, विशति । लिट्—विवेश । लुङ्—अविक्षत् । लृट्—वेक्ष्यति । कर्म० विश्यते, लुङ्,—अवेशि । क्त—विष्ट । ०विश्य । तुम्—वेष्टुम् । णिच्—वेशयति, लुङ्—अवीविशत् । सन्—विविक्षति ।

वृ (ढकना)—५ उ०, वृणोति, वृणुते । लिट्—ववार, वव्रु, ववथ, ववृव, वव्रे । कर्म० व्रियते । क्त—वृत । त्वा—वृत्वा, ०वृत्य । तुम्—वरितुम्-वरीतुम् । णिच्—वारयति ।

वृ (चुनना)—९ आ०, वृणीते । लिट्—वव्रे । लुङ्—अवृत । कर्म० व्रियते । क्त—वृत । त्वा—वृत्वा । तुम्—वरीतुम् । णिच्—वरयति ।

वृत् (होना)—१ आ० (लुङ्, लृट् लृङ् मे पर० भी), वर्तते। लिट्—ववृते। लुङ्—अवृतत्। लृट्—वर्तिष्यते, वर्त्स्यति। क्त—वृत्त। ल्यप्—०वृत्य। तुम्—वर्तितुम्। णिच्—वर्तयति।

वृध् (बढना)—१ आ०। (लुङ्, लृट्, लृङ मे पर० भी), वर्धते। लिट्—ववृधे। लुङ्—अवृधत्, अवर्धिष्ट। लृट्—वर्त्स्यति। क्त—वृद्ध। तुम्—वर्धितुम्। णिच्—वर्धयति, ०ते, लुङ्—अवीवृधत्।

व्यध् (बीधना)—४ प०, विध्यति। लिट्—विव्याध विविधु। कर्म० विध्यते। क्त—विद्ध। त्वा—विद्ध्वा, ०विध्य। णिच्—व्यधयति।

व्रज् (जाना)—१ प०, व्रजति। लिट्—वव्राज, वव्रजिथ। लुङ्—अव्राजीत्। लृट्—व्रजिष्यति। कर्म० व्रज्यते। क्त—व्रजित। त्वा—व्रजित्वा, ०व्रज्य। तुम्—व्रजितुम्। णिच्—व्राजयति।

व्रश्च् (काटना)—६ प०, वृश्चति। कर्म० वृश्च्यते। क्त—वृक्ण। त्वा—वृष्ट्वा, ०वृश्च्य।

शस् (प्रशसा करना)—१प०, शसति। शशस। लुङ्—अशसीत्। शसिष्यति। कर्म० शस्यते। शस्त। शस्त्वा, ०शस्य। शसितुम्। णिच्—शसयति।

शक् (सकना, समर्थ होना)—५ प०, शक्नोति। लिट्—शशाक, शेकु। लुङ्—अशकत्। लृट्—शक्ष्यति। कर्म० शक्यते। क्त—शक्त, शकित। सन्—शिक्षति।

शप् (शाप देना)—१ उ०, शपति, ०ते। लिट्—शशाप, शेपे। लृट्—शपिष्यते। कर्म० शप्यते। क्त—शप्त। णिच्—शापयति।

शम् (शान्त होना)—४ प०, शाम्यति। लिट्—शशाम, शेमु। क्त—शान्त। णिच—शमयति, शामयति, लुङ्—अशीशमत्।

शास (आज्ञा देना)—२ प०, शास्ति, प्र० ३ शासति, उ० २शिष्व। लङ्—अशात्, अशासु, अशा—अशात्, अशासम्, अशिष्व। लोट्—शास्तु, शिष्टाम्, शासतु। शाधि, शिष्टम्, शिष्ट। शासानि, शासाव, शासाम। विधि० शिष्यात्। लिट्—शशास। लुङ्—अशिषत्। लृट्—शासिष्यति। कर्म० शास्यते, शिष्यते। क्त—शासित, शिष्ट। त्वा—शासित्वा। तुम्—शास्तुम्।

शिष् (छोडना)—७ प०, शिनष्टि, शिषन्ति, शिष्व। लोट्—शिनष्टु, शिड्ढि, शिनषाणि। कर्म० शिष्यते। क्त—शिष्ट। त्वा—शिष्ट्वा, ०शिष्य। णिच्—शेषयति।

शी (सोना)—२ आ०, शेते, शयाते शेरते, । शेषे, शयाथे, शेध्वे । शये, शेवहे, शेमहे । लङ्—अशेत, अशयाताम्, अशेरत । अशेथा अशयाथाम् । अशेध्वम् । अशयि, अशेवहि, अशेमहि । लोट्—शेताम्, शयाताम्, शेरताम् । शेष्व, शयाथाम्, शेध्वम् । शयै, शयावहै, शयामहै । विधि० शयीत । लिट्—शिश्ये । लुङ्—अशयिष्ट । लृट्—शयिष्यते । क्त—शयित । णिच्—शाययति । सन्—शिशयिषते ।

शुच् (शोक करना)—१ प०, शोचति । लिट्—शुशोच । लुङ्—अशुचत् । लृट्—शोचिष्यति । त्वा—शोचित्वा । तुम्—शोचितुम् । णिच्—शोचयति ।

श्रि (जाना)—१ उ०, श्रयति, ०ते । लिट्—शिश्राय, शिश्रिये । लुङ्—अशिश्रियत् । लृट्—श्रयिष्यति, ०ते । कर्म० श्रीयते । क्त—श्रित । त्वा—श्रयित्वा, ०श्रित्य । तुम्—श्रयितुम् ।

श्रु (सुनना)—५ प०, शृणोति, शृणुत, शृण्वन्ति । लिट्—शुश्राव, शुश्रुवु, शुश्रोथ, शुश्राव, शुश्रुव । लुङ्—अश्रौषीत् । श्रोष्यति । श्रोता । कर्म० श्रूयते, लुङ्—अश्रावि । क्त—श्रुत । त्वा—श्रुत्वा, श्रुत्य । तुम्—श्रोतुम् । णिच्—श्रावयति । सन्—शुश्रूषते ।

श्वस् (साँस लेना)—२ प०, श्वसिनि । लिट्—शश्वास । लृट्—श्वसिष्यति । क्त—श्वस्त, श्वसित । ल्यप्—०श्वस्य । तुम्—श्वसितुम् । णिच्—श्वासयति ।

सञ्ज् (लगना)—१प०, सजति । लिट्—ससञ्ज । लुङ्—असाङ्क्षीत् । कम० सज्यते । क्त—सक्त । ल्यप्—०सज्य । तुम्—सक्तुम् । णिच्—सञ्जयति ।

सद् (बैठना)—१ प०, सीदति । लिट्—ससाद, सेदु, सेदिथ—ससत्थ । लुङ्—असदत् । लृट्—सत्स्यति । कर्म० सद्यते । क्त—सन्न । ल्यप्—०सद्य । तुम्—सत्तुम् । णिच्— सादयति ।

सह् (सहन करना)—१आ०, सहते । लृट्—सहिष्यते । सोढा । कम० सह्यते । क्त—सोढ । ल्यप्—०सह्य । तुम्—सोढुम् । णिच्—साहयति ।

सिच् (सीचना)—६ उ०, सिञ्चति, ०ते । लिट्—सिषेच, सिषिचे । लुङ्—असिचत, ०त । लृट्—सेक्ष्यति, ०ते । कर्म० सिच्यते । क्त—सिक्त । त्वा—सिक्त्वा, ०सिच्य । णिच्—सेचयति, ०ते ।

सिध् (रोकना, पीछे हटाना)—१ प०, सेधति । लिट्—सिषेध । लुङ्—असेधीत् । लृट्—सेधिष्यति, सेत्स्यति । कर्म० सिध्यते । सिद्ध । तुम्—सेद्धुम् । णिच्—सेधयति ।

सु (निचोडना, रस निकालना)—५ उ०, सुनोति, सुनुते (१३२, सु धातु) । लिट्—सुषाव, सुषुवे । लृट्—सोष्यति । कर्म० सूयते । क्त—सुत । ल्यप्—०सुत्य । णिच—सावयति ।

सू (जन्म देना)—२ आ०, सूते । लङ्—असूत । लोट्—सूताम्, सूष्व, सुवै । विधि० सुवीत । लिट्—सुषुवे । लृट्—सविष्यते, सोष्यते । कर्म० सूयते । सूत ।

सृ (जाना)—१ प०, सरति । लिट्—ससार, सस्रु, समर्थ, ससार, ससृव । लृट्—सरिष्यति । क्त—सृत । ल्यप्—०सृत्य । तुम्—सर्तुम् । णिच्—सारयति ।

सृज् (बनाना, निकालना)—६ प०, सृजति । लिट्—ससज । लुङ्—अस्राक्षीत् । लृट्—स्रक्ष्यति । कर्म० सृज्यते । त्वा—सृष्ट्वा, ०सृज्य । तुम्—स्रष्टुम् । णिच्—सर्जयति । सन्—सिसृक्षति ।

सृप् (रेंगना)—१ प०, सर्पति । लिट्—ससप, ससृपिव । लृट्—स्रप्स्यति । कर्म० सृप्यते । क्त—सृप्त । णिच्—सर्पयति । सन्—सिसृप्सति ।

स्तम्भ् (अवलम्ब देना)—९ प०, स्तभ्नाति । लोट्—स्तभ्नातु, स्तभान, स्तभ्नानि । लिट्—तस्तम्भ । कर्म०—स्तभ्यते, लुङ्—अस्तम्भि । क्त—स्तब्ध । त्वा—स्तब्ध्वा, ०स्तभ्य । तुम्—स्तब्धुम् । णिच्—स्तम्भयति ।

स्तु (स्तुति करना)—२ प०, स्तौति, स्तवीति । लङ्—अस्तौत्, अस्तवीत् । स्तौतु, स्तवीतु । स्तुयात्, स्तुवीत । लिट्—तुष्टाव । लुङ्—अस्तावीत्—अस्तौषीत्, अस्तोष्ट । लृट्—स्तोष्यति । कर्म०—स्तूयते । क्त—स्तुत । त्वा स्तुत्वा, ०स्तुत्य । तुम्—स्तोतुम् । णिच्—स्तावयति । सन्—तुष्टूषति ।

स्तृ (ढकना)—५ उ०, ९ उ०, स्तृणोति, (स्तृणाति । लिट्—तस्तार, तस्तरे । लृट्—स्तरिष्यति । कर्म० स्तीयते । स्तॄ धातु मानकर यह रूप है, ५८) । क्त—स्तृत । त्वा—स्तृत्वा, ०स्तृत्य । णिच्—स्तारयति ।

स्था (रुकना)—१ प०, तिष्ठति । लिट्—तस्थौ । लुङ्—अस्थात् । लृट् स्थास्यति । कर्म० स्थीयते, लुङ्—अस्थायि । क्त—स्थित । त्वा—स्थित्वा, ०स्थाय । तुम्—स्थातुम् । णिच्—स्थापयति । सन्—तिष्ठासति ।

स्पृश् (छूना)—६ प०, स्पृशति। लिट्—पस्पर्श, पस्पृशु। लुङ्—अस्प्राक्षीत्। लृट्—स्प्रक्ष्यति। कम० स्पृश्यते। क्त—स्पृष्ट। त्वा—स्पृष्ट्वा०, स्पृश्य। तुम्—स्प्रष्टुम्। णिच्—स्पर्शयति। सन्—पिस्पृक्षति।

स्मि (मुस्कराना)—१ आ०, स्मयते। लिट्—सिष्मिये। लुङ्—अस्मयिष्ट। क्त—स्मित। त्वा—स्मित्वा, ०स्मित्य। णिच्—स्मापयति, स्माययति।

स्मृ (स्मरण करना)—१ प०, स्मरति। लिट्—सस्मार। लृट्—स्मरिष्यति। कम० स्मर्यते। क्त—स्मृत। त्वा—स्मृत्वा, ०स्मृत्य। तुम्—स्मर्तुम। णिच्—स्मारयति।

स्यन्द् (टपकना)—१ आ०, स्यन्दते। लिट्—सस्यन्दे। कम० स्यन्द्यते। क्त—स्यन्न। णिच्—स्यन्दयति।

स्रु (बहना)—१ प०, स्रवति। लिट्—सुस्राव। लृट्—स्रविष्यति। क्त—स्रुत।

स्वज् (आलिंगन करना)—१ आ०, स्वजते। सस्वजे। क्त—स्वक्त। स्वक्तुम्।

स्वप् (सोना)—२ प०, स्वपिति। लिट्—सुष्वाप, सुषुपु। लुङ्—अस्वाप्सीत्। लृट्—स्वप्स्यति। कम० सुप्यते। लुङ्—अस्वापि। क्त—सुप्त। त्वा—सुप्त्वा। तुम्—स्वप्तुम्। णिच्—स्वापयति। सन्—सुषुप्सति।

हन् (मारना, हिंसा करना)—२ प०, हन्ति, हत, घ्नन्ति। लङ्—अहन्, अघ्नन्। लोट्—हन्तु, घ्नन्तु, जहि, हनानि। विधि० हन्यात्। लिट्—जघान। लुङ्—अवधीत् लृट्—हनिष्यति। कर्म० हन्यते। क्त—हत। त्वा—हत्वा, ०हत्य। तुम्—हन्तुम्। णिच्—घातयति। सन्—जिघांसति।

हा (छोडना)—३ प०, जहाति, जहति। लोट्—जहातु, जहतु, जहीहि, जहानि। लिट्—जहौ, जहिथ—जहाथ। लुङ्—अहासीत्, अहात्। लृट्—हास्यति। कर्म० हीयते। क्त—हीन। त्वा—हित्वा, ०हाय। तुम्—हातुम्। णिच्—हापयति। सन्—जिहासति।

हिंस् (हिंसा करना, चोट मारना)—७ प०, हिनस्ति। लङ्—अहिनत्, अहिंसन्। लोट्—हिनस्तु, हिन्धि, हिनसानि। विधि०—हिंस्यात्। लिट्—जिहिंस। लुङ्—अहिंसीत्। लृट्—हिंसिष्यति। कर्म—हिंस्यते। हिंसित। णिच्—हिंसयति।

हु (हवन करना)—३ प०, जुहोति (१३२, हु धातु)। लिट्—जुहाव, जुहवाचकार। लुङ्—अहोषीत्। लृट्—होष्यति। कर्म० हूयते। क्त—हुत। त्वा—हुत्वा। तुम्—होतुम्। णिच—हावयति। सन्—जुहूषति। यङ्लुक—जोहवीति।

हृ (लेना, हरना)—१ उ०, हरति, ०ते। लिट्—जहार, जह्र, जहर्थ। लुङ्—अहार्षीत्, अहृत। हरिष्यति। हर्ता। कर्म० ह्रियते, लुङ्—अहारि। क्त—हृत। त्वा—हृत्वा, ०हृत्य। णिच्—हारयति। सन्—जिहीर्षति, ०ते। यङ्लुक्—जरीहर्ति।

ह्री (लज्जित होना)—३ प०, जिह्रेति, जिह्रीत, जिह्रियति। लङ्—अजिह्रेत्। लोट्—जिह्रेतु। विधि० जिह्रीयात्। लिट्—जिह्राय, जिह्रियु। क्त—ह्रीण, ह्रीत। णिच्—ह्रेपयति। यङ्—जेह्रीयते।

ह्वे (पुकारना)—१ उ०, ह्वयति, ०ते। लिट्—जुहाव, जुहुवु। लृट्—ह्वास्यते। कर्म० हूयते। क्त—हूत। त्वा—हूत्वा, ०हूय। तुम्—ह्वातुम्। णिच्—ह्वाययति। यङ्लुक्—जोहवीति।

———

परिशिष्ट—२

लौकिक संस्कृत मे प्रयुक्त छन्द

(Metre in Classical Sanskrit)

श्रेण्य सस्कृत का पद्य-बन्ध वैदिक मन्त्रो के पद्य-बन्ध से बहुत अधिक भिन्न है। लौकिक छन्द अधिक कृत्रिम, अधिक नियमाधीन और सख्या मे बहुत अधिक हो गए है।

लौकिक छन्द दो भागो मे विभक्त हैं—

१ वर्णवृत्त (इनमे वर्णों की सख्या गिनी जाती है)।

२ मात्रिक छन्द (इनमे प्रत्येक चरण मे मात्राएँ गिनी जाती हैं)।

लगभग सारा सस्कृत-काव्य पद्यो मे लिखा गया है। इनमे प्रत्येक पद्य मे चार पाद या चरण (पाद=पैर—¼ भाग) होते हैं। प्रत्येक श्लोक दो भागो मे विभक्त होता है—पूर्वार्ध और उत्तरार्ध (२ श्लोकार्ध)।

लेटिन और ग्रीक के तुल्य ही पद्यो का परिमाण गिना जाता है। स्वर स्वभावानुसार या स्थान की दृष्टि से दीर्घ (गुरु) गिना जाता है। सयुक्त वर्ण, अनुस्वार और विसर्ग बाद मे होने पर पूर्ववर्ती लघु (ह्रस्व) स्वर गुरु माना जाता है। यह स्थान की दृष्टि से लघु का गुरुत्व है। अनुस्वार और विसर्ग को पूर्ण व्यजन का स्थान दिया जाता है। लघु स्वर की एक मात्रा गिनी जाती है और गुरु स्वर की (स्वाभाविक या स्थान की दृष्टि से) दो मात्रा।

१. अक्षर-छन्द या वर्णवृत्त

(Metres measured by Syllables)

इसमे दो प्रकार के वृत्त (छन्द) होते हैं—

(अ) जिनका पूर्वार्ध और उत्तरार्ध रचना की दृष्टि से समान होता है। इनमे १ और ३ पाद, २ और ४ पाद से कुछ भिन्न होता है।

(आ) जिनके चारो पाद समान होते हैं।

(अ) श्लोक

श्लोक ('गीत', श्रु-सुनना-धातु से बना हुआ) छन्द वेद के अनुष्टुभ्' छन्द का ही विकसित रूप है। यह रामायण और महाभारत का प्रिय छन्द है। इसको भारतीय पद्य का सर्वोत्तम छन्द मानना चाहिए, क्योकि सस्कृत के काव्यो मे अन्य छन्दो की अपेक्षा यह सबसे अधिक प्रयुक्त हुआ है। इसमे १६ वर्णों वाले दो श्लोकार्ध (पूर्वार्ध और उत्तरार्ध) होते है तथा ८ वर्णों वाले ४ पाद होते है।

यदि एक श्लोकार्ध को ४, ४ वर्णों वाले ४ भागो मे बाँटा जाए, तो ज्ञात होता है कि केवल दूसरे और चतुथ भाग मे ही मात्राओ का विचार होता है। इनमे से चतुर्थ भाग नियमित रूप से Iambic (लघु, गुरु, लघु, गुरु, ˘ – ˘ ˘̄) है और द्वितीय भाग के चार विभिन्न रूप है। प्रथम और तृतीय भाग मे गुरु-लघु का विचार नही होता है, केवल ˘̄ ˘ ˘ ˘̄ का क्रम सर्वथा वर्जित है। द्वितीय भाग का सबसे प्रसिद्ध क्रम है ˘ – – ˘̄ (लघु, गुरु, गुरु, गुरु / लघु)। (नलोपाख्यान के १७३२ श्लोकार्धो मे १४४२ मे यह क्रम है)।

अत श्लोक का निम्नलिखित रूप बनता है —

। ˘ – – ˘̄ । । ˘ – ˘ ˘̄ ॥

जैसे—आ सीद् रा जा न लो ना म । वी र से न सु तो ब ली।
उ प प न्नो गु णै रि ष्टै । रू प वा न श्व को वि द ॥

जब द्वितीय अश का स्वरूप ˘ – – ˘̄ होता है, तब प्रथम अश का स्वरूप कुछ भी हो सकता है। जब द्वितीय अश का स्वरूप अन्य तीन प्रकार के रूपो मे से कोई भी होता है तो प्रथम अश भी पूर्ण स्वतन्त्र नही रहता है, जैसा कि नीचे की सारणी मे दिखाया गया है —

	१	२	३ ४
१	।	˘ – ॥	। ˘ ˘ ॥
२	˘ ˘ – ।	˘ ˘ ˘ ॥	
	।	– ˘ ˘	
३	˘ –	˘ ॥	
४	˘ – ।	, – ॥	

इनमे से प्रथम (स० १) को **'पथ्या'** छन्द कहते है और शेष तीन (स० २ से ४) को **'विपुला'** कहते है। उपर्युक्त सारणी मे जो क्रम अधिक प्रयुक्त हुआ है, वह पहले है और जो उससे कम प्रयुक्त हुआ है, वह क्रमश २, ३ या ४ स्थान पर है। उदाहरण के लिए कालिदास (रघुवश और कुमारसभव), माघ, भारवि और बिल्हण के २५७९ श्लोकार्धो मे गणना करने पर उपर्युक्त चार वर्गो को क्रमश निम्नलिखित अक प्राप्त हुए है —(१) २२८९, (२) ११६, (३) ८९, (४) ८५=२५७९।

उपर्युक्त सारणी मे बिन्दु यह सूचित करता हे कि उस स्थान का वर्ण अनिश्चित है, अर्थात् वह लघु या गुरु कोई भी हो सकता है। अध विराम का अर्थ हे कि वहाँ पर यति (अल्पविराम, Caesura) होती है।

पाद के अन्त के साथ ही शब्द का अन्त भी होना है (कभी-कभी पाद का अन्तिम शब्द समस्त पद का अश भी होना है) और पूरा श्लोक एक पूर्ण वाक्य होना है। एक श्लोकार्ध की रचना दूसरे श्लोकार्ध मे अविच्छिन्न नही जाती हे। कुछ स्थानो पर तीन श्लोकार्ध मिल कर वाक्य को पूर्ण करते है।

(आ) समवृत्त

(All four Padas identical in form)

(१) वेद के **त्रिष्टुभ्** (प्रत्येक पाद मे ११ वर्ण) छन्द से जो अनेक छन्द विकसित हुए है उनमे से अधिक प्रचलित छन्द निम्नलिखित है —

(क) **इन्द्रवज्रा** — ⏑ । — ⏑ । ⏑ ⏑ । — ॥

(ख) **उपेन्द्रवज्रा** ⏑ — ⏑ । — ⏑ । ⏑ ⏑ । — ॥

(ग) **उपजाति** (उपर्युक्त दोनो का मिश्रण)

⏑ । — — ⏑ । ⏑ — ⏑ । — ॥

(घ) **शालिनी** — । , ⏑ । — ⏑ । ॥

(ङ) **रथोद्धता** ⏑ । ⏑ ⏑ ⏑ । ⏑ । ⏑ ॥

(२) **जगती** (१२ वर्ण प्रत्येक पाद मे) के अधिक प्रचलित रूप ये है —

(क) **वशस्थ** ⏑ ⏑ । ⏑ । ⏑ — ⏑ । ⏑ — ॥

(ख) **द्रुतविलम्बित** ⏑ ⏑ ⏑ । — ⏑ ⏑ । ⏑ ⏑ । ⏑ ॥

(३) शक्वरी (१४ वर्ण प्रत्येक पाद मे) का अधिक प्रचलित रूप यह है —

वसन्ततिलका ˘ । ˘ ˘ । ˘ ˘ । ˘ ˘ । ˘̄ ॥

(४) अतिशक्वरी (१५ वर्ण प्रत्येक पाद मे) का अधिक प्रचलित रूप यह है —

मालिनी ˘ ˘ ˘ । ˘ ˘ ˘ । , । ˘ । ˘ – ˘̄ ॥

(५) अत्यष्टि (१७ वर्ण प्रत्येक पाद मे) के अधिक प्रचलित रूप ये है —

(क) शिखरिणी ˘ । , । ˘ ˘ ˘ । ˘ ˘ । – ˘ ˘ । ˘ ॥

(ख) हरिणी ˘ ˘ ˘ । ˘ ˘ , । – । , ˘ । ˘ ˘ – । ˘ ॥

(ग) मन्दाक्रान्ता । , ˘ ˘ । ˘ ˘ ˘ । , ˘ । ˘ । – ˘̄ ॥

(६) अतिधृति (१९ वर्ण प्रत्येक पाद मे) का अधिक प्रचलित रूप यह है —

शार्दूलविक्रीडित —

– – – । ˘ ˘ – । ˘ – ˘ । ˘ ˘ , । ˘ । – ˘ । ˘̄ ॥

(७) प्रकृति (२१ वर्ण प्रत्येक पाद मे) का अधिक प्रचलित रूप यह है —

स्रग्धरा —

- - - । - ˘ - । - , ˘ ˘ । ˘ ˘ ˘ । ˘ - , - । ˘ - - । ˘ - - ॥

२. मात्रा-छन्द या जाति

(Metres measured by Morae)

(अ) मात्रा—छन्द जिनमे केवल मात्राओ की सख्या निर्धारित है —

वैतालीय—इसमे एक श्लोकार्ध मे ३० मात्राएँ होती हैं, प्रथमपाद मे १४ और द्वितीयपाद मे १६। प्रत्येक पाद को तीन भागो मे बाँट सकते है। द्वितीय भाग का क्रम choriambus(– ˘ ˘) होगा, तृतीय भाग मे दो iambic अर्थात् ˘ – ˘ ˘̄) होंगे, प्रथम पाद के प्रथम भाग मे pyrrhic (˘ ˘) होगा और द्वितीय पाद के प्रथम भाग मे anapaest (˘ ˘) होगा। इस प्रकार एक श्लोकार्ध मे २१ वर्ण होगे। श्लोकार्ध का रूप यह होगा —

˘ ˘ । - ˘ ˘ - । ˘ - ˘ ˘̄ ॥ ˘ ˘ - । - ˘ ˘ - । ˘ - ˘ ˘̄ ॥

(आ) **गण-छन्द**—इसमे प्रत्येक गण (अश) मे मात्राएँ निर्धारित होती है।

आर्या या गाथा—मे श्लोकाध मे ७½ गण होते है और प्रत्येक गण मे ४ मात्रा होती है, अत कुल ३० मात्राएँ होती हैं। ४ मात्राएँ निम्नलिखित रूप से किसी भी प्रकार हो सकती है — ˘ ˘ ˘ ˘, - -, - ˘ ˘, ˘ ˘ -। दूसरे और चौथे अश मे वे ˘ - ˘ इस रूप मे भी रह सकती है, षष्ठ अश मे वे ˘ ˘ ˘ ˘ या ˘ - ˘ इस रूप मे मिलती हैं। आठवाँ गण एक वण का होता है। उत्तरार्ध के षष्ठ अश मे केवल एक ह्रस्व वर्ण होता है। अत उत्तराध मे केवल २७ मात्राएँ होती है।

———

परिशिष्ट—३

वैदिक व्याकरण की मुख्य विशेषताएँ

(Chief peculiarities of Vedic Grammar)

१ वैदिक भाषा के विकास के कई स्वर देखने को मिलते हैं, परन्तु नीचे जो कुछ वर्णन किया गया है, उसका साक्षात् सबन्ध ऋग्वेद से है, क्योकि वही वैदिक साहित्य का सब से प्राचीन और सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है।

वर्णमाला

२ सस्कृत के तुल्य ही वैदिक ध्वनियाँ भी है। वैदिक भाषा मे दो वर्ण अधिक है। दो स्वरो के मध्यगत मूर्धन्य ड् और ढ अनिवाय रूप से क्रमश मूर्धन्य ळ् और ळ्ह् हो जाते है। जैसे—ईळे=ईडे) (मैं स्तुति करता हूँ)। मीळ्हुषे=मीढुषे (दानी के लिए)।

सन्धि

३ (अ)—**स्वर-सन्धि**—एक एक शब्द मे, समस्त (समासयुक्त) पदो के विभिन्न शब्दो मे और वाक्य के विभिन्न शब्दो मे प्रगृह्य (सधि का अभाव, Hiatus) निषिद्ध नही है, अर्थात् इन स्थानो पर सधि नही भी की जा सकती है। विशेषत ए और ओ(२१ क) के बाद अ को पूर्वरूप (अ का अभाव या लोप) बहुत कम स्थानो पर होता है। जैसे—सूर्यस्य का सूरि अस्य (सूर्य का), स्वश्वियम् का सु—अश्विअम् (अश्व-सबन्धी समृद्धि), वरुणस्य अग्ने (वरुण और अग्नि का), अभ्येति का अभि एति (उस ओर जाता है), विप्रो अक्षरत् (पुरोहित ने डाला)।

(क) स्वर बाद मे होने पर निम्नलिखित सर्वनामो के ए (चतुर्थी, सप्तमी) मे सन्धि-कार्य नही होता है—त्वे (तुझको, तुझ मे), अस्मे (हमे, हममे), युष्मे

(तुम्हे, तुममे)। इसी प्रकार शब्द के अन्तिम अ और निपात उ की सधि म जो ओ होता है, उसमे भी सधि-कार्य नही होता है। जैसे—इनके साथ सधि-कार्य नही होगा—अथो (अथ+उ), मो (मा+उ), नो (न+उ)।

(आ) **व्यजन-सन्धि**—पद के अन्तिम आन् को आँ होता है (लेट् प्र० पु० ३ के आन् को छोडकर, क्योकि वह मूलत आन्त् माना जाता है) और ईन् को ईर्, ऊन् को ऊँर् और ऋन् को ऋँर होता है। जैसे—महाँ असि (तुम महान् हो), किन्तु, आ गच्छान् उत्तरा युगानि—(बाद के युग आएगे) मे लेट् के कारण आँ नही हुआ। रश्मीँरिव (लगामो के तुल्य)।

(क) सस्कृत मे कुछ नियम जो एक पद के अन्दर ही लगते है, वे अन्य शब्दो के प्रथम वर्ण मे भी लगते है। जैसे—सहो षु ण (नि० ६७)।

शब्द-रूप (Declension)

४. (अ) अन्तिम अवयव, एकवचन। (क) तृतीया —

अकारान्त शब्दो मे तृतीया एक० मे कुछ स्थानो पर 'आ' लगता है, स्त्रीलिग आकारान्त शब्दो मे भी कुछ स्थानो पर 'आ' लगता है। जैसे—यज्ञ (पु०, यज्ञ) का तृ० १—यज्ञेन, यज्ञा। मनीषा (स्त्री०, बुद्धि) का तृ० १—मनीषया, मनीषा। 'एन' के अ को भी प्राय दीर्घ हो जाता है।

'मन्' अन्त वाले शब्दो मे कभी-कभी भ स्थानो पर मन् के अ का लोप नही होता और जब अ का लोप होता है तो कभी कभी म् या न् का भी लोप हो जाना है। जैसे—भूमन् का तृ० १ भूमना, भूना (भूम्ना के स्थान पर)। द्राघ्मा (द्राघमना के स्थान पर)।

(ख) **सप्तमी**—इकारान्त शब्दो के स० १ मे 'औ' की अपेक्षा कुछ कम स्थानो पर 'आ' भी लगता है। जैसे—अग्नि (पु०, आग) >स०१—अग्नौ, अग्ना।

अन्-अन्त वाले शब्दो मे स०१ अन्तिम इ का प्राय लोप होता है। जैसे—ब्रह्मन् >स० १ ब्रह्मणि, ब्रह्मन्। इनमे उपधा (अन्तिम से पूर्व वर्ण) के अ का लोप नही होता जैसे—राजन् >राजनि ही रूप होगा (देखो नि० ९०)।

(ग) **सबोधन**—मत्, वत्, वस्, यस् अन्त वाले शब्दो को स० १ मे अस् (अ) हो जाता है। जैसे—भानुमत् >प्र० १ भानुमान्, स० १ भानुमः। हरिवत् >प्र० १ हरिवान्, स० १ हरिव । चक्रवस् >प्र० १ चक्रवान्, स० १ चक्रव । कनीयस् >प्र० १ कनीयान्, स० १ कनीय ।

द्विवचन। (क) प्रथमा, द्वितीया और सबोधन के द्विवचन मे 'औ' की अपेक्षा 'आ' अधिक लगता है। जैसे—अश्विना (दो अश्विनीकुमार), द्वारा (स्त्री०, दो दरवाजे), नद्या (दो नदियाँ)। ई-प्रत्ययान्त स्त्रीलिंग शब्दो की ई मे परिवतन नही होता। जैसे—देवी (दो देवियाँ)।

(ख) युष्मद् और अस्मद् सवनामो मे ५ स्थानो पर अन्तर होता है —जैसे, प्र० २ युवम्, द्वि० २ युवाम्, तृ० २—युवाभ्याम्, युवभ्याम्, प० २—युवत्, स० २—युवो ।

बहुवचन। प्रथमा। (क) अकारान्त पु० शब्दो के प्रथमा बहु० मे (आकारान्त स्त्री० मे बहुत कम) 'आ' के साथही 'आस' वाले रूप भी बनते है। जैसे—मर्त्यास, मर्त्या (मनुष्य)।

(ख) ई—प्रत्ययान्त स्त्रीलिग शब्दो मे केवल विसग और जुडता है। जैसे—देवी (देवियाँ)।

(ग) नपुसकलिग मे आनि, ईनि, ऊनि के साथ ही आ, ई, ऊ (कभी कभी अ, इ, उ भी) वाले रूप भी बनते है। जैसे—युगानि, युगा (जुए) (लेटिन—juga)।

तृतीया—अकारान्त शब्दो मे तृ० ३ मे जितने स्थानो पर 'ऐ' लगता है, प्राय उतने ही स्थानो पर 'एभि' भी लगता है। जैसे—देवै, देवेभि ।

(आ) प्रत्ययान्त शब्द (Inflexional Type)

इस प्रकार के शब्दो मे मुख्य अन्तर अनेकाच् (अनेक स्वर वाले) ईकारान्त और आकारान्त शब्दो के रूपो मे है (जो कि अधिकाशत स्त्रीलिंग है और कुछ पुलिग भी है)। इनमे से अधिकाश के रूप एकाच् (एक स्वर वाले) धी और भू (१००) शब्दो के तुल्य चलते है, केवल षष्ठी बहु० मे इनमे नाम् लगता है। (अन्यत्र ई-प्रत्ययान्त शब्दो के रूप प्राय नदी के तुल्य चलते है और ऊकारान्त के रूप वधू के तुल्य, १००)। जैसे—

रथी (पु०, सारथी)				नदी (स्त्री०)		
रथी	रथ्या	रथ्य	प्र०	नदी	नद्या	नद्य
रथ्यम्	,,	,,	द्वि०	नद्यम्	,,	,,
रथ्या	रथीभ्याम्	रथीभि	तृ०	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभि
रथ्ये	,,	रथीभ्य	च०	नद्ये	,,	नदीभ्य
रथ्य	,,	,,	प०	नद्य	,,	,,
,,	रथ्यो	रथीनाम्	ष०	,,	नद्यो	नदीनाम्
—	,,	रथीषु	म०	—	,,	नदीषु
रथि	रथ्या	रथ्य	स०	—	नद्या	नद्य

तनू (स्त्री०, शरीर)

तनू	तन्वा	तन्व	प्र०
तन्वम्	,,	,,	द्वि०
तन्वा	तनूभ्याम्	तनूभि	तृ०
तन्वे	,,	तनूभ्य	च०
तन्व	,,	,,	प०
,,	तन्वो	तनूनाम्	ष०
तन्वि	,,	तनूषु	स०
तनु	तन्वा	तन्व	स०

धातुरूप (Conjugation)

५ **अडागम (Augment)** (क) यह अट् (अ) कुछ स्थानो पर स्थायी रूप से दीर्घ आ है, और कुछ स्थानो पर छन्द की दृष्टि से दीर्घ है। जैसे—वृ (ढकना) > लुङ् प्र० १ आव (उसने ढका)। रिच् (छोडना) > लुङ् प्र० १ आरैक् (उसने छोडा)।

(ख) यह 'अ' सवत्र हटाया जा सकता है और इससे अर्थ मे अन्तर नही होता है। 'अ' रहित रूपो को प्राय Injunctive (अडागम-रहित रूप) के रूप मे प्रयोग किया जाता है। संस्कृत मे ऐसा प्रयोग निषेधार्थक निपात 'मा' के साथ अभी तक शेष है (१२८ क)।

६ **उपसर्ग** (**Verbal Prefixes**)। उपसर्ग साधारणतया पहले लगते हैं, किन्तु कुछ स्थानो पर धातु के बाद भी आते हैं। धातु और उपसर्ग के बीच मे निपात या अन्य शब्द भी आ सकते हैं। जैसे—आ त्वा विशन्तु (वे तुम्हारे यहाँ आवे)। गमद् वाजेभिरा स न (वह हमारे पास धन के साथ आवे)।

७ **अन्त्यावयव** (**Endings**) (क) कर्तृवाच्य उ० ३ मूल प्रत्यय मस् (म) की अपेक्षा 'मसि' अधिक प्रचलित है। जैसे—इ (जाना) >इम, इमसि (हम जाते हैं)।

(ख) म० पु० ३ मे थ और त के स्थान पर 'थन' और 'तन' प्रयोग भी प्राय मिलते हैं। जैसे—या (जाना) >याथ, याथन (तुम जाते हो), यात, यातन (तुम जाओ)।

(ग) लोट् म० पु० १ मे 'तात्' अन्त वाले प्रयोग भी प्राय मिलते हैं (यह निर्बल अग के साथ लगता है)। यह भविष्यत् मे करने योग्य आदेश को प्रकट करता है। जैसे—रक्षतात् (रक्षा करना), ब्रूतात् (कहना), धत्तात् (रखना) (तु० करो—लेटिन—lege-tod)। यह कभी-कभी प्र० १ और उ० १ तथा म० पु० २, ३ के लिए भी प्रयुक्त होता है।

(घ) आत्मनेपद लट् प्र० पु० १ मे भी (आत्मनेपद लिट् के तुल्य, १३६) प्राय उ० पु० १ वाला रूप बनता है। जैसे—शी (सोना)—लट् प्र० १ शये (=शेते, वह सोता है)।

८ **द्वित्व कार्य** (**Reduplication**)—बहुत सी धातुओ मे लिट् लकार मे द्वित्व होने पर अभ्यास (द्वित्व का पूर्व अश) मे दीर्घ स्वर रहता है। जैसे —धृ (धारण करना) >दाधार, वस् (वस्त्र पहनना) >वावसे, तु (फलना, फूलना) >तूताव।

९ **लकार** (**Tenses**)—(क) वेद Pluperfect के भी कुछ रूप मिलते हैं। इनकी सख्या कम है। यह लिट् लकार वाले अग मे आदि मे 'अ' लगाकर तथा अन्त मे गौण तिङ् प्रत्यय लगाकर बनाए जाते है। जैसे—चित् (प्रकट होना) >प्र० पु० १ अचिकेत्, उ० पु० १ अचिकेतम्।

(ख) लुट् लकार का प्रयोग नही मिलता है। ऋग्वेद मे 'आम्' वाले लिट् (जैसे—गमयाचकार आदि) का सर्वथा अभाव है।

१० **लकार (Moods)**—(क) वेद मे लेट् लकार (Subjunctive) का प्रयोग है। यह विधिलिङ् की अपेक्षा बहुत अधिक प्रयुक्त हुआ है। इसका आज्ञा या काय-समाप्ति अर्थ है। इसका प्राय भविष्यत् अर्थ भी होता है। धातु के बाद 'अ' लगाकर इसका अग (धातु जिससे तिङ् प्रत्यय होता है) बनाया जाता है। अतएव अ-विकरण वाली धातुओ मे यह 'आ' हो जाता है। जैसे—भू > भवा। अ-भिन्न विकरण वाली धातुओ मे सबल अग के बाद यह अ' लगता है, धातु को गुण होता है और यह गुण युक्त अग सवत्र बना रहता है। जैसे—कृ (करना) > कृणव। इसमे तिङ् प्रत्यय कुछ मूलरूप मे और कुछ गौण रूप मे लगते है। इस प्रकार भू (होना) और सु (निचोडना) धातुओ के लेट् के रूप निम्नलिखित होगे—

भू—लेट्—परस्मैपद

भवाति, भवात्	भवात	भवान्	प्र० पु०
भवासि, भवा	भवाथ	भवाथ	म० पु०
भवानि	भवाव	भवाम	उ० पु०

आत्मनेपद

भवाते	भवैते	(भवन्त)	प्र० पु०
भवासे	भवैथे	भवाध्वे	म० पु०
भवै	भवावहै	भवामहै	उ० पु०

सु—लेट्—परस्मैपद

सुनवत्	सुनवत	सुनवन्	प्र० पु०
सुनव	सुनवथ	सुनवथ	म० पु०
सुनवानि	सुनवाव	सुनवाम	उ० पु०

आत्मनेपद

सुनवतै	सुनवैते	सुनवन्त	प्र० पु०
सुनवासे	सुनवैथे	सुनवध्वे	म० पु०
सुनवै	सुनवावहै	सुनवामहै	उ० पु०

(ख) लट् लकार ही नही, अपि तु लिट् और लुङ् के भी तीनो लकार—लेट्, विधिलिङ् और लोट्—होते हैं। जैसे—स्तु (प्रशसा करना) का लिट्-लेट्-

तुष्टवत् । वृत् (चक्कर लगाना) का लिट्-विधि-लिङ् ववृत्यात् । मुच् (छोडना) का लिट्-लोट् मुमुग्धि । भू (होना) का लिट्-लोट् बभूतु । वृत् का लिट्-लोट् आत्मने० म० २-ववृत्स्व ।

लुङ्-लेट् के रूप—नी (ले जाना) >प्र० १ नेषति, नेषत्, बुध् (जागना) >वोधिषत्, विद् (पाना) >विदात्, कृ (करना) >करति, करत् । लुङ्-विधिलिङ् के रूप—विद् >विदेत्, अश् (पहुँचना) >अश्यात्, भज (बाँटना) >भक्षीष्ट । लुङ्-लोट् के रूप—अव् (रक्षा करना) >म० १ अविड्ढि, म० २ अविष्टम्, म० ३ अविष्टन । प्र० १ अविष्टु । सद् (बैठना) >प्र० पु० सदतु, सदताम्, सदन्तु । श्रु (सुनना) >म० पु० श्रुधि, श्रुतम्, श्रुत, प्र० पु० श्रोतु, श्रुताम्, श्रुवन्तु ।

११ **कालार्थक कृत्-प्रत्यय (Participles)**—संस्कृत मे जो कालार्थक कृत्-प्रत्यय शेष है, उनके अतिरिक्त वेद मे लुङ् के भी कृत् प्रत्यय परस्मैपद और आत्मनेपद मे मिलते है । जैसे—कृ (करना) पर० >क्रन्त् , गम् (जाना) > ग्मन्त् , स्था (रुकना) >स्थान्त् । आत्मने० कृ >क्राण, बुध् >बुधान ।

(क) ऋग्वेद मे तवत्-प्रत्यय का सर्वथा अभाव है ।

१२ **क्त्वा, ल्यप् प्रत्यय (Gerunds)**—वेद मे त्वा के अतिरिक्त 'त्वी' प्रत्यय भी बहुत प्रचलित है । एक 'त्वाय' प्रत्यय भी है, परन्तु यह बहुत कम प्रयुक्त हुआ है । सोपसर्ग धातुओ के साथ जो 'य' या 'त्य' लगता है, वह प्राय दीर्घ होकर 'या' या 'त्या हो जाता है ।

१३ **तुम् प्रत्यय (Infinitive)**—लगभग १ दर्जन तुम् अर्थ वाले प्रत्यय हैं । ये द्वितीया, चतुर्थी, पचमी, षष्ठी और सप्तमी विभक्ति वाले है । अन्त की तीन विभक्तियो वाले तुमर्थक प्रत्यय बहुत कम हैं । अधिकाश तुमर्थक प्रत्यय चतुर्थी विभक्ति वाले है और ये द्वितीयान्त (अम्, तुम्) से लगभग १२ गुना अधिक है ।

(क) **द्वितीयान्त तुमर्थक रूप**—यह शुद्ध धातु से (अम्) प्रत्यय लगाकर बनाया जाता है या धातुज शब्द 'तु' से बने 'तुम्' प्रत्यय को लगाकर बनता है (ऋग्वेद मे तुम्-प्रत्ययान्त रूप बहुत कम है) —जैसे—समिधम् (अम् प्रत्यय, जलाने को), प्रतिधाम् (अम् प्रत्यय, रखने को), प्रतिरम् (अम् प्रत्यय, फैलाने को), कर्तुम् (तुम्, करने को), दातुम्, (तुम्, देने को) ।

(ख) **चतुर्थ्यन्त तुमर्थक रूप**—ये रूप शुद्ध धातु से या अस्, मन्, वन्, तु, धि अन्तवाले धातुज शब्दो से चतुर्थी विभक्ति वाले प्रत्यय लगाकर बनते हैं ।

जैसे—दृशे (ए प्रत्यय, देखने को), श्रद्धे (ए प्र यय, विश्वास करने को), जीवसे (अस्+ए, जीने को), विद्मने (मन्+ए, जानने को), दावने (वन्+ए, देने को), दातवे (तवे, देने को), 'कतवै' (तवै, दो उदात्तस्वरयुक्त, करने को), गमध्यै (ध्यै, जाने को)।

(ग) अन्य विभक्ति वाले तुमर्थक प्रत्ययो के रूप है —अवपद (अस्, पचमी, गिरने को), दातो (तो, षष्ठी, देने को), नेषणि (अन्+इ, सप्तमी, ले जाने को), धातरि (इ, सप्तमी, रखने को)।

उपसर्ग निपात (Prepositions)

१४ वास्तविक उपसर्गो के साथ द्वितीया, सप्तमी या पचमी होती है (कुछ के साथ तृतीया भी होती है)।

(क) द्वितीया विभक्ति वाले—अति (परे, दूर), अधि (की ओर), अनु (पश्चात्), अन्तर (बीच मे), अच्छ, अभि, आ, उप, प्रति (ओर), परि (चारो ओर), तिरस् (पार), पुरस् (सामने)।

(ख) सप्तमी विभक्ति वाले—अधि (पर), अन्तर् (अन्दर), अपि, आ, उप (समीप), पुरस् (सामने)।

(ग) पचमी विभक्ति वाले—अधि (ऊपर से), अन्त (अन्दर से), आ (दूर, तक), परि (चारो ओर से), पुर (सामने)।

स्वर (Accent)

१५ चारो वेदो की सभी सहिताओ मे तथा दो ब्राह्मण-ग्रन्थो मे स्वर-चिह्न लगाए गए हैं। स्वर-चिह्न चार प्रकार से लगाए गए है। इनमे से ऋग्वेद मे जो पद्धति अपनाई गई है वह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमे मुख्य स्वर-चिह्न अर्थात् उदात्त (उन्नत या उन्नतिशील) पर कोई चिह्न नही लगाया जाता है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि यह अनुदात्त (निम्न ध्वनि) जो उससे पहले आता है, और स्वरित (उतरती हुई ध्वनि) जो इसके बाद आता है, उन दोनो के बीच की ध्वनि है तथा उन्नत ध्वनि से अवनत (या ध्वनि-रहित) ध्वनि की ओर सक्रमण को बताता है। उदात्त से पहले वर्ण पर अनुदात्त का चिह्न लगाया जाता है। यह वर्ण के नीचे सीधी पडी लकीर (जैसे—क॒) के रूप मे होता है। उदात्त के बाद स्वरित का चिह्न लगाया जाता है। यह वर्ण के

ऊपर सीधी खडी लकीर के रूप मे होता है (जैसे–कं), अग्निनां। स्वतन्त्र स्वरित पर भी अनुदात्त के स्थान पर होने वाले स्वरित के तुल्य ही चिह्न लगता है। जैसे— (क्वं *kva*) (*kua*)। इससे पूववर्ती स्वर पर अनुदात्त चिह्न लगाया जाता है। जैसे—वीर्यम् (*vīryam*=*vīrīam*)। मूलरूप मे स्वतत्र स्वरित से पूववर्ती स्वर पर उदात्त चिह्न था और वहाँ सधि का अभाव था, किन्तु लिखित सहिता मे उस प्रगृह्य को हटाकर सन्धि करने से उदात्त-स्वर लुप्त हो गया है। प्राय उच्चारण करते समय उस प्रगृह्य को पुन अपनाना पडता है। यदि स्वतन्त्र स्वरित से पहले कोई उदात्त होता है और वह ह्रस्व स्वर है तो स्वतन्त्र स्वरित का सकेत १ अक से किया जाता है और यदि पूर्ववर्ती स्वर दीघ है तो ३ अक से सकेत किया जाता है। उदात्त के बाद स्वतन्त्र स्वरित का अक लिखा जाएगा। उसके ऊपर स्वरित का चिह्न होगा और नीचे अनुदात्त का। इस प्रकार उस अक पर ऊपर नीचे दोनो ओर चिह्न होते हैं। जैसे—अप्स्व १ न्तर् (Apsv antar=Apsú antar), रायो ३ वनिं (rāyó 'vánih=rāyo avanih)। पक्ति के प्रारभ मे यदि कोई उदात्त वर्ण होगा तो उस पर कोई चिह्न नही लगेगा। वाक्य के प्रारम्भ मे उदात्त वर्ण से पहले जितने अनुदात्त वर्ण होगे, उनके नीचे अनुदात्त का चिह्न अवश्य लगेगा। उदात्त के बाद वाले अनुदात्त पर स्वरित का चिह्न लगेगा। उसके बाद वाले अनुदात्त वर्णों पर कोई चिह्न नही लगता है, परन्तु आगे यदि कोई उदात्त या स्वतत्र स्वरित आने वाला होगा तो उससे पूर्ववर्ती अनुदात्त पर अनुदात्त का चिह्न लगेगा। जैसे—नमों युजानम्, करिष्यसिं।

१६ **अनुदात्त निपात** (Enclitics)—निम्नलिखित सदा अनुदात्त हैं — (क) निपात उ, चिद्, स्विद्, इव, घ, ह, च, स्म, वा। (ख) व्यक्तिवाचक सवनामो के एकाक्षर सकेत-पद मे, ते आदि (१०६ क)। (ख) सर्वनाम 'एन' शब्द और ईम्, सीम्। (घ) अनिश्चयवाचक सर्वनाम त्व (अन्य) और सम (कोई)।

१७ **अनुदात्त पद** (**Unaccented Forms**)—(क) इदम् के स्थान पर होने वाला 'अ' जब बलपूवक प्रयुक्त नही होता है और किसी सज्ञावाचक के स्थान पर होता है। जैसे—'**अस्य जनिमानि**'—(उस अग्नि के अनेक

जन्म)। किन्तु 'अस्या उषस' (उस उषा के)।[1]

(ख) सबोधन पद चाहे जितने भी हो, यदि वे वाक्य के प्रारम्भ मे नही है तो अनुदात्त होगे। जैसे—आ राजाना मह ऋतस्य गोपा (विशाल नियम के रक्षक हे दोनो राजाओ इधर आओ)।

१८ शब्दरूपो ओर धातुरूपो के वाक्य प्रयोग मे स्वर के विषय मे कुछ विशेष नियम नीचे दिए जा रहे है।

(क) सबोधन के प्रथम स्वर पर ही उदात्त स्वर रहता है, शेष सभी सबोधन पद अनुदात्त रहते है। जैसे—होतर्यविष्ठ सुक्रतो (हे अतियुवा विद्वान् होता)। ऊर्जो नपात् सहसावन् (प्रथमा—ऊर्जो नपात् सहसावा)।

(ख) **प्रधान क्रिया (Finite Verb)**—मुख्य उपवाक्य की प्रधान क्रिया यदि वह वाक्य के प्रारम्भ मे नही है तो अनुदात्त होती है। जैसे—अग्निम् ईळे (मै अग्नि की स्तुति करता हू)। वाक्य मे सबोधन की गणना नही होती है, अत सम्बोधन के बाद वाली क्रिया मे उदात्त होगा। जैसे—आश्रुत्कर्ण, श्रुधी हवम् (हे सुनने वाले, मेरी पुकार सुनो)। यह माना जाता है कि एक वाक्य मे एक ही क्रिया होती है, अत एक कर्ता से सबद्ध जहाँ अनेक क्रिया होगी, वहाँ पर सभी क्रियाओ को वाक्य की प्रथम क्रिया मानकर उन पर उदात्त स्वर लगेगा। जैसे—तरणिरिज्जयति, क्षेति पुष्यति (सफल वह विजयी होता है, शासन करता है और पुष्ट होता है)।

(ग) गौण उपवाक्यो मे क्रिया पर सदा उदात्त होता है, (यदि उसके प्रारम्भ मे सबन्धवाचक सर्वनाम या उससे बना हुआ कोई शब्द या निपात हि (क्योकि), च, चेद् (यदि), नेत् (नही तो), कुविद् (क्या) हो तो। जैसे—यं यज्ञं परिभूरसि (जिस यज्ञ की तुम रक्षा करते हो)। जहाँ पर दो प्रधान उपवाक्य परस्पर वैषम्य-बोधक रूप मे एकत्र होगे, वहाँ पर प्रथम उपवाक्य को आश्रित उपवाक्य माना जाता है और उसकी क्रिया उदात्त होती है।

(घ) प्रधान उपवाक्यो मे उपसर्ग को क्रिया से पृथक् किया जाता है और वह उदात्त होता है। आश्रित उपवाक्यो मे उपसर्ग क्रिया के साथ समस्त हो जाता है और अनुदात्त हो जाता है। जैसे—आ गच्छति (वह आता है), किन्तु 'यं आगच्छति' (जो आता है)।

सूचना—इस पृष्ठ मे चिन्ह (।) उदात्त स्वर का सूचक है।

संस्कृतपदानुक्रमणी

इस अनुक्रमणी मे सस्कृतव्याकरणप्रवेशिका के सभी व्याकरणसम्बन्धी शब्द और प्रत्यय दिए गए है। केवल नियम १०४-१०८ के अन्तर्गत सख्या शब्दो को नही जोडा गया किन्तु अन्य नियमो के अन्तगत उन्हे भी जोड दिया है। प्रथम परिशिष्ट के धातुरूपो को यहा दुहराया नही और सन्धि एव वाक्य-विन्यास के उदाहरणो मे प्रयुक्त तथा तृतीय परिशिष्ट मे व्यवहृत औपचारिक पद भी नही जोडे गए।

इस अनुक्रमणी मे पृष्ठसख्याङ्को से अतिरिक्त सख्याङ्क अनुच्छेदाङ्को को बोधित करते है।

सङ्केतसारणी

अति० अतिशयार्थ बोधक यडन्त अथवा लुगन्त अभ्यस्त रूप, उप० उपसर्ग, उपसर्गात्मक, क्रि० क्रिया, क्रियात्मक, क्रि० वि० क्रियाविशेषण, क्रिया-विशेषणात्मक, टि० टिप्पणी, तत्पु० तत्पुरुष समास, तुल० तुलनार्थक, नपु० नपुसक लिङ्ग, नि० निपात, निषे० निषेधार्थक, पा० टि० पाद-टिप्पणी, प्रेरणा० प्रेरणार्थक, वि० विशेषण, सम्बो० सम्बोधन।

सामान्य अनुक्रमणी

इस अनुक्रमणी मे प्रयुक्त सकेतो की व्याख्या के लिए दे० प्रथम परिशिष्ट और सस्कृत अनुक्रमणी का आरम्भ। निर्दिष्ट पृष्ठाको से भिन्न अक अनुच्छेदाको को बोधित करते हैं।